डा. श्यामाप्रसाद मुकर्जी

व्यक्तित्व और कृतित्व

डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' : व्यक्तित्व और कृतित्व

संपादक-मंडल

डा० कमल सिंह (संयोजक एवं प्रधान संपादक)

डा० कृष्णचंद्र गुप्त

डा० इंदरराज वैद 'अधीर'

डा० (श्रीमती) शारदा शर्मा

श्री त्रिभुवननाथ शर्मा 'मधु' (प्रबंध संपादक)

सह-संपादक

कु० मधु शर्मा

श्री बिशनकुमार शर्मा
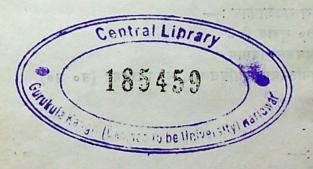
प्रकाशक

डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' : व्यक्तित्व और कृतित्व

ग्रंथ-परिषद्

प्रकाशक :
डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' :
व्यक्तित्व और कृतित्व, ग्रंथ-परिषद्

संस्करण—प्रथम, सन् १९८१ ई०

मूल्य—रुपये ६०·००

ग्रंथ-प्राप्ति-केंद्र :—
(१) डा० (श्रीमती) शारदा शर्मा, डी० लिट्०
ए–८७, विवेक विहार (आवास विकास कालोनी),
दिल्ली रोड, सहारनपुर (उ० प्र०), पिन–२४७००१

(२) डा० कमल सिंह, पी-एच० डी०
हिंदी-विभाग, सनातनधर्म महाविद्यालय
मुजफ्फरनगर (उ० प्र०), पिन–२५१००१

आवरण सज्जाकार :—
प्रो० सुबोध मिश्र
चित्रकला-विभाग,
सनातनधर्म महाविद्यालय, मुजफ्फरनगर (उ० प्र०)

मुद्रक :—
पीयूष प्रिंटर्स,
३२, शिवाजी मार्ग
(ईस्टर्न कचहरी रोड), मेरठ शहर

परामर्शदात्री समिति

- डा० श्रीनारायण चतुर्वेदी, डी० लिट्० (लखनऊ)
- डा० बनारसीदास चतुर्वेदी, डी० लिट्० (फीरोजाबाद)
- आचार्य पं० किशोरीदास वाजपेयी (कनखल)
- प्रो० नगेंद्र, डी० लिट्० (दिल्ली)
- प्रो० देवेंद्रनाथ शर्मा (पटना)
- प्रो० उदयनारायण तिवारी, डी० लिट्० (इलाहाबाद)
- श्री यशपाल जैन (दिल्ली)
- डा० राकेश गुप्त, डी० लिट्० (अलीगढ़)
- प्रो० आनंदप्रकाश दीक्षित (पूना)
- प्रो० विद्यानिवास मिश्र (आगरा)
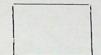
श्री सेठ शांतिलाल जैन,
५, जरमैया रोड़, वेपेरी, मद्रास–६

श्रीमती नीरू सक्सेना द्वारा
श्री उजियारीलाल 'लाठसाहब'
पटेलनगर, आगरा रोड़, अलीगढ़

श्री पूरनसिंह भाकुनी, प्रधानाचार्य,
१ सी० सी० स्टाफ फ्लैट,
सिविल लाइंस, दिल्ली–५४

श्री मुंशीलाल जैन
दैनिक श्रमागार,
पटेलनगर, आगरा रोड़, अलीगढ़
(उ० प्र०)

श्री सेठ हरिशंकर वार्ष्णेय
विकास कारपोरेशन, पटेलनगर,
आगरा रोड़, अलीगढ़
(उ० प्र०)

डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' सन् १९६५ ई०

अध्यक्ष, हिंदी स्नातकोत्तर अध्ययन एवं अनुसंस्थान संस्थान, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास—१७

(आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा डा० नगेंद्र के सुभागमन पर स्नातकोत्तर विभाग के अध्यापकों तथा छात्रों के साथ)

अनुक्रमणिका

३. अलीगढ़ जनपद २५५–२९३

संपादकीय

आचार्य पं० रामचंद्र शुक्ल ने अपने ग्रंथ 'चिंतामणि' के एक लेख 'श्रद्धा-भक्ति' में एक स्थल पर लिखा है कि "सदाचारी के प्रति यदि हम श्रद्धा नहीं रखते, तो समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करते।"

डा० अंबाप्रसाद जी 'सुमन' के प्रति श्रद्धा-ज्ञापन एवं उनके गुणों का प्रकटीकरण ही प्रस्तुत ग्रंथ के प्रणयन का मूलाधार रहा है। फिर भी विद्वान् पाठकों को इस ग्रंथ में परंपरागत अभिनंदन-ग्रंथों से हटकर कतिपय नवीन स्थापनाएँ उपलब्ध हो सकेंगी। डा० सुमन के प्रति श्रद्धा तो रहे, अंध-श्रद्धा न होने पाये अतः कतिपय लेखों के अति भावुक अंशों को निकाल दिया गया है। जहाँ एक ओर डा० 'सुमन' के गुणों का मुक्तकंठ से सात्विक विवेचन किया गया है, वहीं दूसरी ओर पाठकों को कुछ ऐसे लेख भी मिल जाएँगे, जिनमें यथास्थान डा० 'सुमन' की मान्यताओं अथवा स्थापनाओं से असहमति प्रकट की गयी है। हमने दोनों प्रकार की रचनाओं का समान रूप से स्वागत किया है।

डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' एक सुविख्यात लेखक के साथ-साथ एक सुयोग्य एवं कुशल-सफल अध्यापक भी रहे हैं और हैं। अतः उनकी कृतियों में भाषाशास्त्र, साहित्यशास्त्र तथा संस्कृति आदि से संबद्ध जो मान्यताएँ हमें मिली हैं, उन्हें इंगित करने तथा अन्य विद्वानों से प्रार्थना करके इंगित कराने का प्रयास भी किया गया है।

ग्रंथ तीन खंडों में विभाजित है—१. व्यक्तित्व, २. कृतित्व और ३. अलीगढ़ जनपद। डा० 'सुमन' समग्र रूप से साहित्य-सेवी हैं। उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन माँ सरस्वती की अराधना में अर्पित किया है। अतः उनके व्यक्तित्व और कृतित्व को स्पष्टतः विभाजित करना अति दुरूह है। यही कारण है कि उनके व्यक्तित्व वाले लेखों में प्रसंगवश कृतित्व की चर्चा हो गयी है और कृतित्व वाले लेखों में व्यक्तित्व की। इन दोनों खंडों के उपशीर्षकों के विभाजन में भी हमें सोचना पड़ा है और सोचकर भी हम सही विभाजन कर सके हैं—ऐसा नहीं कहेंगे। बस, इस विभाजन से वस्तु के प्रस्तुतीकरण में थोड़ी-सी सुविधा और स्पष्टता अवश्य दीख पड़ेगी।

परामर्शदात्री समिति के वरिष्ठ सदस्य श्रद्धेय डा० बनारसीदास जी चतुर्वेदी ने एक पत्र द्वारा सुझाव दिया था कि "पुरुष के साथ प्रकृति का अभिनंदन भी हम करें।" इस सुझाव के परिपालन का परिणाम ही ग्रंथ का तीसरा खंड है। प्रस्तुत खंड में यथासंभव अलीगढ़ जनपद के इतिहास, भूगोल, लोक संगीत, लोक साहित्य,

साहित्य, कला आदि का समुचित समायोजन किया गया है। इस खंड से ग्रंथ की उपादेयता में कितनी गुणात्मकता आयी है, इसका निर्णय तो सुधी पाठक ही कर सकेंगे। हम इस सुझाव के लिए डा० बनारसीदास जी चतुर्वेदी के प्रति विनम्र आभार व्यक्त करते हैं।

आदरणीय आचार्य पं० किशोरीदास जी वाजपेयी प्रस्तुत ग्रंथ की परामर्श-दात्री समिति के संमान्य सदस्य हैं। संयोजक की ओर से जब उन्हें ग्रंथ-परिषद् के लैटरहेड पर पत्र लिखकर ग्रंथ के लिए एक लेख भेजने का निवेदन किया गया तो उत्तर में उनका निम्न पत्र मिला—

"पाणिनि प्रकाशन, कनखल (उ० प्र०)

पत्र संख्या······ दिनांक—२१ अगस्त ८०

प्रिय कमल,

'सुमन' तो तुम भी हो—'कमल'। परंतु 'कमल' में 'मल' आ गया है। अभिनंदन-ग्रंथ के लिए कुछ पंक्तियाँ जरूर भेजूँगा, परंतु जब यह 'डॉ' का मल साफ कर दोगे। संपादक-मंडल के सभी सदस्य 'डॉक्टर' हैं। इस 'डॉक्टर' से मुझे बहुत चिढ़ है। आप ऐसे प्रपत्र (लेटर पेपर) पर पत्र लिखकर भेजें, जिसमें सब 'डॉक्टर' 'डाक्टर' के रूप में हों। तभी अपने बसंती 'सुमन' की बहार का बखान करूंगा। आपको लेटर पेपर फिर छपाने होंगे—तभी काम चलेगा।

शुभैषी

कि० दा० वाजपेयी"

हमने लैटर पेपर फिर से छपाए और 'डॉक्टर' को 'डाक्टर' के रूप में लिखा। अर्थात् ऐसा (ॅ) उल्टा टोप-सा हटा दिया गया। तब आचार्य जी का 'सुमन-सौरभ' शीर्षक लेख प्राप्त हुआ।

सौभाग्य से ग्रंथ के संयोजक (डा० कमल सिंह) का आचार्य जी से इस उल्टे टोप (ॅ) के संबंध में विचार-विमर्श भी हुआ और डा० अंबाप्रसाद जी 'सुमन' से पत्र-व्यवहार भी। अंत में यह निष्कर्ष निकला कि यह उल्टा टोप (ॅ) हिंदी और देवनागरी की प्रकृति के अनुकूल नहीं है और न इस शब्द के उच्चारण में 'ऑ' ध्वनि को हिंदी में बोला ही जाता है। अतः हमने पूरे ग्रंथ में इसका प्रयोग नहीं किया है। इस सुधार-अनुकंपा के लिए हम आचार्य पं० किशोरीदास जी वाजपेयी के विशेष आभारी हैं और डा० अंबाप्रसाद जी 'सुमन' के भी।

परामर्शदात्री समिति के अन्य सदस्यों ने भी समय-समय पर अपने बहुमूल्य सत् परामर्शों से हमारा मार्ग प्रशस्त किया है। उन सभी के प्रति हम विनत भाव से हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं।

स्थानाभाव से अथवा अन्य विशिष्ट अपरिहार्य कारणों से जिन रचनाओं को हमें छोटा करना पड़ा है, उनके विद्वान् लेखकों से हम नम्रतापूर्वक क्षमायाचना करते हैं।

कु० मधु शर्मा और श्री बिशनकुमार शर्मा से सह-संपादकों के रूप में हमें बहुत सहयोग मिला है। ये दोनों हमारे स्नेहमय धन्यवाद के पात्र हैं। प्रियवर वीरपाल वर्मा, चंद्रवीर, चंदाबाबू तथा कु० अल्पना ने भी रचनाओं की प्रेस-कापियाँ तैयार की हैं। वीणा-पाणि इन सभी का मंगल करें।

ग्रंथ के आवरण की साज-सज्जा का कार्य प्रो० सुबोध मिश्र ने किया है। ग्रंथ की प्रकाशन-प्रक्रिया में भी आपने हमारी बड़ी सहायता की है। इसके लिए हम आपके हृदय से आभारी हैं।

ग्रंथ के विद्वान् लेखकों, संभावित संरक्षकों तथा प्रकाशन-समिति के सस्दयों की महती अनुकंपा से ही यह ग्रंथ पाठकों के सामने आ सका है। उन सभी के प्रति हम साभार हार्दिक धन्यवाद अर्पित करते हैं।

ग्रंथ में जो भी विशेषताएँ हैं, वे डा० अंबाप्रसाद जी 'सुमन' के गुणों के गुणज्ञ पारखियों के कारण एवं सहयोगियों की स्नेहमयी कृपा के कारण हैं; और जो त्रुटियाँ हैं, वे सब हमारे अज्ञान एवं असामर्थ्य के कारण हैं।

आदरणीय डा० अंबाप्रसाद जी 'सुमन' के व्यक्तित्व तथा कृतित्व के माध्यम से प्रस्तुत ग्रंथ में भाषाशास्त्र, हिंदी भाषा, ब्रजलोक-संस्कृति और हिंदी-साहित्यालोचना को देखने-परखने की कुछ दृष्टियाँ देने का भी प्रयास किया गया है। यदि पाठक उनसे कुछ लाभान्वित हो सके तो हमें प्रसंनता होगी।

भूलों और अभावों की अनुभूति के साथ ग्रंथ हिंदी-जगत् के समक्ष प्रस्तुत है।

बसंत पंचमी —संपादक
(९-२-८१ ई०)

डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' एवं श्रीमती बसंती देवी शर्मा
८/७ हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१

डा० नगेंद्र एवं अंबाप्रसाद 'सुमन'
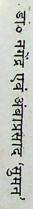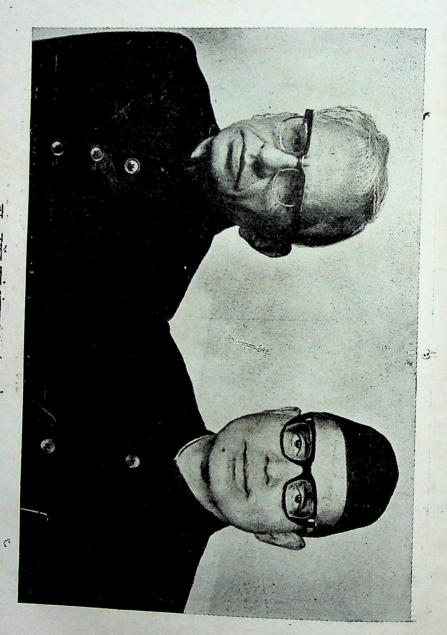
व्यक्तित्व

जीवन-झाँकी

—कु० मधु शर्मा

नाम—जन्म के नक्षत्रानुसार राशि का नाम 'नौरंगी लाल,' दुर्गा के भक्त बाबा का दिया हुआ नाम 'अंबाप्रसाद,' हाईस्कूल की परीक्षा में कविता-रुचि के कारण 'अंबाप्रसाद 'सुमन' बचपन में गाँव के स्त्री-पुरुष प्रायः 'अंबे' कहकर पुकारा करते थे। कवि-सम्मेलनों में 'सुमन-शेखूपुरी' के नाम से पुकारे जाते रहे हैं।

जन्म-तिथि—पंचांग के अनुसार सं० १९७२ वि०, माघ कृष्णा दशमी रविवार, अनुराधा नक्षत्र ५/१७, ध्रुवयोग ३३/४, दिनमान २६/५४, मकरार्क गतांश १६, ज्येष्ठा प्रथम चरण जन्म, वृश्चिक राशि, सिंह लग्न। (५ मं; ६; ७; ८ चं०; ९, १० रा०, सू०, बु०; ११ शु०; १२ वृ०, १; २; ३ श०; ४ के०) हिंदी मिडिल परीक्षा, तथा हाईस्कूल परीक्षा के प्रमाण-पत्र के अनुसार जन्म-तिथि—२१ मार्च, १९१६ ई०।

जन्म-स्थान—गाँव शेखूपुर, तहसील व परगना कोल, जिला—अलीगढ़ (उ० प्र०)।

बंश-परंपरा तथा परिवार—प्रपितामह स्व० पं० गंगाराम (भागवती पंडित), पितामह स्व० पं० राधावल्लभ गौड़ (ब्रजभाषा के कवि)। स्व० पं० राधावल्लभ गौड़ की मैत्री स्व० पं० नाथूरामशंकर शर्मा 'शंकर' (हरदुआगंज) से बड़ी घनिष्ठता थी। दोनों का पत्र-व्यवहार प्रायः कविता में हुआ करता था। पं० राधावल्लभ गौड़ की अनेक ब्रजभाषा—घनाक्षरियाँ आज भी डा० 'सुमन' जी के यहाँ सुरक्षित हैं, जो उन पत्रों के रूप में हैं, जिन्हें पं० राधावल्लभ जी द्वारा पं० नाथूरामशंकर शर्मा 'शंकर' को उत्तर-रूप में लिखे गये थे। पितामही स्व० रामप्यारी (सासनी के पास के गाँव नगला गढ़ू के उच्च ब्राह्मण परिवार की बेटी)

पिता स्व० पं० श्यामसुंदरलाल गौड़, माता स्व० श्रीमती श्यामा देवी (खैर–निवासी स्व० पं० छीतरमल शर्मा की पुत्री, पं० छीतरमल शर्मा के तीन पुत्र—सर्वश्री शिवदत्त गांधी, महेशचंद्र शर्मा और हरीशंकर शर्मा)।

बहन-भाई–सबसे बड़े अंबाप्रसाद 'सुमन,' द्वितीय, बहन स्व० शान्तिदेवी (तहसील अतरौली में गूलापुर में ब्याही थी), तृतीय, भाई श्री ओमप्रकाश गौड़; चतुर्थ, भाई श्री महावीर लाल गौड़ (अर्थात् कुल तीन भाई, एक बहन)।

पत्नी (श्रीमती) बसंती देवी शर्मा (सिकंदराराऊ-निवासी स्व० पं० मिट्ठूलाल शर्मा की द्वितीय पुत्री), डा० सुमन की तीन पुत्री—संतानें—(०) डा० (श्रीमती) शारदा शर्मा, डी० लिट्० (अध्यक्ष, हिंदी-विभाग, मुन्नालाल एवं खेमका महाविद्यालय, सहारनपुर), (०) डा० (श्रीमती) वीणा शर्मा, एम० एस–सी०, पी-एच० डी० (बंबई), (०) कु० मधु शर्मा, एम० ए० (संस्कृत), रिसर्च स्कालर (अलीगढ़)।

डा० सुमन के बड़े जामाता डा० जगदीश चंद्र, एम० एस-सी०, पी-एच० डी० (सहारनपुर), द्वितीय, श्री राजेन्द्रपालशर्मा, इंजीनियर (बंबई)।

धेवते और धेवतियाँ—चि० आशु, बेटी चारु (बड़ी पुत्री शारदा शर्मा से); चि० सत्यं, बेटी पल्लवी (मंझली पुत्री वीणा शर्मा से)।

शिक्षा-स्थलियाँ—प्राइमरी स्कूल बुढ़ाँसी, जिला-अलीगढ़, तहसीली मिडिल स्कूल जलाली, जि० अलीगढ़; सांगवेद महाविद्यालय, नरवर, जि० बुलंदशहर; धर्म-समाज कालेज, अलीगढ़; काशी विश्वविद्यालय, वाराणसी आदि।

सर्वोच्च उत्तीर्ण परीक्षा—डी० लिट्० (हिन्दी) उपाधि-परीक्षा, १९६३ ई० आगरा विश्वविद्यालय, आगरा।

प्रमुख श्रद्धेय विद्या-गुरु—स्व० पं० गोकुलचंद्र शर्मा (अलीगढ़), स्व० डा० वासुदेवशरण अग्रवाल (काशी)।

जीवन में विशिष्ट सहायक महानुभाव—(१) पं० लक्ष्मीनारायण गौड़ (नाना जी, खैर निवासी) (२) श्रीवर स्व० पं० जीवनदत्त की ब्रह्मचारी महाराज जी (संस्थापक-सांगवेद विद्यालय, नरवर, पोस्ट नरौरा, जिला–बुलंदशहर, (३) स्व० पं० गोकुलचंद्र जी शर्मा (धर्मसमाज कालेज, अलीगढ़, (४) डा० नगेन्द्र (दिल्ली) (५) स्व० डा० वासुदेवशरण अग्रवाल (काशी विश्वविद्यालय, वाराणसी)।

जीवन में प्रथम नौकरी-पद—को-आपरेटिव विभाग में टैक्सटाइल इंस्पैक्टर के पद पर नियुक्ति १९४२ ई० में (नजीबाबाद में)। फिर सन् १९४३ ई० में विद्याभवन मिडिल स्कूल, सासनी में प्रधानाध्यापक पद पर नियुक्ति (गुरुवर पं० गोकुलचंद्र शर्मा के आशीर्वाद से।

जीवन में सर्वप्रथम सार्वजनिक साहित्यिक पुरस्कार—अलीगढ़ प्रदर्शनी में, कविता-प्रतियोगिता में प्राप्त—स्वर्ण-पदक (सभापति—पं० रामस्वरूप शास्त्री, संस्कृत—विभागाध्यक्ष, अलीगढ़ मु० विश्वविद्यालय। निर्णायक पं० गोकुलचंद्र शर्मा आदि), सन् १९३७ ई० में। उस कविता-प्रतियोगिता में विद्यार्थी 'सुमन' ने यह समस्या-पूर्ति भी की थी—"धरती तल भूषित इन्दुन ते"।

सर्वप्रथम प्रकाशित साहित्यिक पुस्तक—वाङ्मयी (विभिन्न साहित्यिक विधाओं की विवेचना), प्रकाशक, भारत प्रकाशन मंदिर, सुभाषरोड, अलीगढ़ (उ० प्र०) सन् १९४९ ई०।

जीवन की प्रमुख अभिरुचि—अध्यापन, अध्ययन तथा लेखन।

विशेष अध्ययन के क्षेत्र—भाषाशास्त्र, साहित्यालोचन, तुलसी-साहित्य-शोध-मीमांसा। वर्तमान शोध-कार्य—'तुलसीकृत कवितावली का व्याकरणिक कोश।'

जीवन में अर्जित संपत्ति—शिष्यों से प्राप्त श्रद्धा, आदर और सम्मान।

—द्वारा डा० अंबाप्रसाद 'सुमन'
८/७ हरिनगर, अलीगढ़

आत्म-कथ्य*

[डा० अंबाप्रसाद 'सुमन']

१

जन्म-समय[1] संचित मुद्रा की गाँठ बबा[2] ने खोली,
पा प्रसाद अंबा का, हर्षित हुए लहर थी डोली,
तीन बरस तक ही बाबा की गोदी में सुख पाया,
फिर इस उजड़े जीवन-वन में कभी न कोयल बोली।

२

कुछ ही डाँड़ चली थी नौका शिक्षा की सरिता में,
भारी भीषण भँवर आ गया अगाध-जल-सरिता में,
नाना 'लक्ष्मीनारायण'[3] ने माँ[4] को धैर्य बँधाया—
'अंबे'[5] की अब शिक्षा होगी मेरी ही गृहिता में।

३

विद्या-जीवन पथ पर जिसने पकड़ी उँगली मेरी,
उसी 'ब्रह्मचारी'[6] की यह मन नित्य लगाता फेरी,
गंगा-तट-नरवर[7] में जिसका अनुष्ठान[8] चलता है—
उसी दिव्य आत्मा की पद-रज की मम आत्मा चेरी।

४

नाम 'सुमन'[9] पाया, पर जीवन भर काँटों पर सोया,
लड़ता रहा भाग्य से प्रतिपल ना पाया, ना खोया,

---

*. रचनाकार का जीवन-परिचय,
१. २१ (इक्कीस) मार्च, १९१६ ई०, (रचनाकार की जन्म-तिथि)
२. स्व० पं० राधा बल्लभ शर्मा (रचनाकार के पितामह)
३. श्री लक्ष्मी नारायण गौड़, खैर (अलीगढ़) (रचनाकार के नाना जी)
४. स्व० श्रीमती श्यामा देवी (रचनाकार की माता)
५. रचनाकार का बचपन का प्यार का नाम।
६. स्व० महाराज जीवन दत्त जी ब्रह्मचारी, संस्थापक, साङ्गवेद महाविद्यालय, नरवर, पो० नरौरा (बुलन्दशहर)
७. साङ्गवेद संस्कृत महाविद्यालय का स्थान।
८. साङ्गवेद संस्कृत महाविद्यालय, नरवर (बुलन्दशहर)
९. रचनाकार का उपनाम।

दाम्पत्य जीवन में जो जीवन-संगिनि[१०] बन आई—
उसने भी निज नयन-नीर से अंचल पल-पल धोया।

५

कब मैं युवा हुआ जीवन में, मैंने कभी न जाना,
लू की लपटें सहीं, न शीतल मंद पवन पहिचाना,
काक—उलूकों की कर्कश ध्वनि सुनता रहा सदा ही,
उजड़ा यौवन बना न उपवन, सुना न कोकिल-गाना।

६

देही एक, देह दो धर कर वरदायी जो आये,
पहले 'गोकुलचंद्र'[११], दूसरे 'वासुदेव'[१२] कहलाये,
उनकी चरण-सरोज-रजों से मेरा मानस-दर्पण—
स्वच्छ हुआ, नव ज्योति मिली, ऐसे वे गुरुवर पाये।

७

पेंतिस वर्ष गये जीवन के वज्रपात एक भारी,
मेरी छोटी बहन[१३] यक्ष्मा में परलोक सिधारी,
उसकी कृशतम और क्षीण आंखों में वाक्य पढ़े ये—
"भैया जी ! भानजा गया, अब तो बस मेरी बारी।"

८

श्वशुरालय[१४] में बनी रोगिणी अंतिम दिन गिनती थी,
पिता[१५] संग मैंने भी देखा, साँस मात्र चलती थी,
तन–रेखा–सी शान्त, प्राण की शान्ति-पाठ पढ़ते थे,
आँखों में था, प्रेम 'अरे निर्मोही' ! कह लड़ती थी।

९

पीटा बाल्यकाल में मैंने कई बार था उसको,
चुगली खाकर तभी पिता जी से पिटवाया मुझको,

---

१०. सिकन्दराराऊ (अलीगढ़) निवासी स्व० मिट्ठनलाल शर्मा की द्वितीय पुत्री बसंती देवी शर्मा (रचनाकार की पत्नी)

११. हिन्दी के प्रसिद्ध कवि एवं लेखक स्वर्गीय पं० गोकुल चंद्र शर्मा (रचनाकार के पूज्य गुरुवर)

१२. संस्कृत-हिंदी के विश्व-विख्यात विद्वान् स्व० डा० वासुदेव शरण अग्रवाल (रचनाकार के शोध-निर्देशक)

१३. स्व० श्रीमती शान्ति देवी (रचनाकार की एक मात्र छोटी बहन)

१४. अलीगढ़ जिले की तहसील अतरौली का गाँव गूलापुर।

१५. स्व० पं० श्याम सुंदरलाल शर्मा, वैद्य, शेखूपुर, जि० अलीगढ़ (रचनाकार के पिता जी)

मैं पिटता, वह रोती कहती—"दादा जी[१६] ! मत मारो,
भैया जी[१७] के लग जायेगी"—यह थी पीड़ा उसको।

१०

उसके प्राणों ने तन त्यागा, भाई बना अभागा,
क्या बतलाऊँ मेरा कब का, क्या कुकर्म था जागा।
मुझ पर जिस छोटी भगिनी ने बरसाये थे मोती,
'कहाँ गई वह' पूछ रहा मैं पागल भागा-भागा।

११

अध्यापन करते-रहते ही शोध-कार्य करता था,
उच्च शोध का लक्ष्य लिये मैं तन-मन से लगता था,
रोग हो गया, धन-तन खोया, प्राणों के लाले थे,
किसे बताऊँ, तब मेरा जीवन कैसे चलता था।

१२

भला करे भगवान्, 'गणेशीलाल'[१८] बने हितकारी,
नाम मात्र के अध्यापन पर नौका पार उतारी,
वे प्राचार्य विशाल हृदय के, धैर्य बँधाया मुझको,
उन कृपालु का 'सुमन' ऋणी है, वे मानव गुणधारी।

१३

एक कृपालु मिले, जिनके उपकार मेरी सुस्मृति पर,
सदा रहेंगे, नहीं भुलाये भी भूलेंगे क्षण भर,
एक इष्ट, पर शत अनिष्ट कर, आये दिन पीड़ा दी,
हो अपकर्ष सदा मेरा, उत्कर्ष न होवे तिल भर।

१४

व्यथा भरे उन दिवसों ने था 'द्वापर' याद दिलाया,
कुरुक्षेत्र में जब 'रविसुत'[१९] से 'अर्जुन'[२०] लड़ने आया,

---

१६. बहन शान्ति देवी का अपने पिता के लिए सम्बोधन।

१७. रचनाकार की छोटी बहन शान्ति देवी का रचनाकार के लिए संबोधन।

१८. श्री गणेशीलाल माहेश्वरी (भूतपूर्व, प्राचार्य, माहेश्वरी कालेज अलीगढ़)
सन् १९५५ ई० में डा० सुमन को भीषण रोग का शिकार बनना पड़ा, स्थिति मरणासन्न दशा को प्राप्त हो गयी थी, रोग ने लगभग छह महीने सताया, श्री गणेशी लाल माहेश्वरी की कृपा और स्नेह के लिए इन पंक्तियों का रचयिता सदा आभारी रहेगा, तब उस रोग से मुक्ति डा० डी पी० शर्मा (तत्कालीन सिविल सर्जन, अलीगढ़) के उपचार से मिली थी।

१९. 'कर्ण' का पर्यायवाची शब्द।

२०. महाभारत संग्राम का प्रमुख योद्धा तथा कुंती का तीसरा पुत्र,

कर्ण अकेला, अर्जुन-रथ पर हनूमान्, अखिलेश्वर ।
फिर भी कर्ण महान् रथी ने अद्भुत शौर्य दिखाया ।

१५

कर्ण-बाण से अर्जुन का रथ तीन हाथ हटता है,
पर अर्जुन-शर से उसका रथ सात हाथ हटता है,
देने लगे कर्ण को तब गीतेश्वर कृष्ण बधाई,
"धन्य कर्ण ! तेरा शर जो इस क्षण विजयी बनता है ।"

१६

कहने लगे 'परंतप'[२१] "विभुवर ! मुझको मिले बड़ाई,
घुरी कर्ण के रथ की मैंने सात हाथ खिसकाई,"
"अरे बावले ! तेरे रथ पर भार त्रिलोक-गिरों का,
इतने पर भी तीन हाथ तेरी रथ-नेमि हटाई ।"

१७

जग ने कुछ का कुछ समझा तो क्षमा-याचना कर ली,
फिर भी उसने दुष्ट-भावना सदा-सदा को भर ली,
बनता रहा ईर्ष्या-भाजन, कारण कभी न समझा,
ऐसी क्यों अहैतुकी ईर्ष्या जग ने मन में धरली ।

१८

मैंने नर को नर समझा, समझा न देवता, ईश्वर,
कहा साँप को सदा साँप ही, कहा न कभी फणीश्वर,
मैं श्रद्धालु रहा गुणियों का, छूंछ छूंछ ही मानी,
मेरे स्वाभिमान का मस्तक झुका न सका महीश्वर ।

१९

'विनय-भाव' का नाम लोग 'बब्बूपन' रख देते हैं,
'स्वाभिमान' को दुनियावाले 'घमंड' कह देते हैं,
इस युग में कभी कुछ अधिकारी साथी सहयोगी को
पशु से हीन समझ जब-तब दुत्कार मार देते हैं ।

२०

शब्द 'नौकरी' है बस संज्ञा 'संस्था-अनुशासन' की
नहीं गुलामी वह कर सकती नर के निज शासन की,
'संस्था-सेवा,' 'व्यक्ति-गुलामी' दोनों अलग-अलग हैं,
घूरे को क्या मिली कभी है महिमा सिंहासन की ?

---

२१. 'अर्जुन' का पर्यायवाची शब्द,

२१

जिसने मेरी कुटी जलाई प्रभो ! रहे घर उसका,
मैं ऊपर से झुलसा, पर वह दाह बना अंतस् का,
'हम चाहें कल्याण सभी का'—यह ऋषियों की वाणी,
'कर्म-भोग सब भोगेंगे ही, जो है जितना जिसका।'

२२

यह शरीर आया था एक दिन बाँस-फूंस के घर में,
जिला अलीगढ़ बसे गाँव छोटे-से शेखूपुर[22] में,
जब तक घर पर बाँस-फूंस है, टोटा मुझे नहीं है,
जीवन बीते यों ही मेरा, ममता नहीं अपर में।

२३

जीवन यह जीवन है तब, आधार जीविका जिसकी,
बिना जीविका के चमकी है जीवन-रेखा किसकी ?
नाम 'नगेन्द्र'[23] दयालु हृदय के, अग्रज तुल्य पूज्यवर।
दया—वारि से तृषा बुझाई, जो न कभी थी वस की।

२४

सहे पछैया के ही झोंके, पल न मिली पुरवाई,
पतझड़ के मौसम ही झेले, मधु ऋतु कभी न पाई,
कृष्ण पक्ष ही बदा भाग्य में, शुक्ल पक्ष ना देखा,
राहु, केतु, शनि रहे केन्द्र में, शुभ गुरु—दशा न पाई।

२५

मिली न ऊषा की वह लाली, नयनों के आँगन को,
मिली न शीतल मंद फुहारें, जीवन के सावन को,
शिशिर-तुहिन ने हृदय-कंज की पंखड़ियों को मेटा,
मिली न शान्ति कभी क्षण भर को, मेरे पीड़ित मन को।

२६

ऊपर विद्युत्, घन, उपलों ने, नीचे पाषाणों ने,
इधर-उधर से प्रबल प्रभंजन के भीषण बाणों ने,
वेध दिया, तब शक्तिहीन हो बैठ गया क्षणभर को,
क्षत-विक्षत शरीर लख सोचा, त्याग चलें प्राणों ने।

---

२२. रचनाकार की जन्म-भूमि (जिला अलीगढ़ की तहसील कोल में एक गाँव)
२३. डा० नगेन्द्र (हिन्दी के मूर्धन्य आलोचक एवं साहित्यकार), जिनके सहज स्नेह और कृपा-दया भाव सदा रचनाकार पर छाया करते रहे।

२७

आत्मा तब बोली प्राणों से, शक्तिहीन इस तन से,
"तुम 'कणाद'[२४] के वंशज हो, निज को धारो कण-कण से,
जग रूठा, विधि वाम हुआ, परवाह करो मत इसकी,
निशिदिन तुम ऋषियों से बातें करो ध्यान धर मन से।"

२८

जग से कैसे बातें करते, मैंने कभी न जाना,
दुनिया का भीतर-बाहर मैंने न कभी पहिचाना,
मैं ऋषियों के संग रहा हूँ, मेरी निश्छल वाणी,
उसको 'अहंकार' बतलाया, मैंने बुरा न माना।

२९

मेरा शिष्य शिष्य तो है ही, पुत्र रूप पर पहले,
मेरे पूत अनेक, भले कोई मुझे निपूता कहले,
मेरा शिष्य बना घट मेरा, मैं कुम्हार उसका हूँ,
चोटें मार सुघड़ घट गढ़ता, यदि घट चोटें सहले।

३०

मेरी 'करुणा' कुछ लोगों ने 'निष्ठुरता' बतलाई,
मेरी 'अमृतधारा' जग में, 'कालकूट' कहलाई,
कब समझा है सत्य 'सत्य' को दुनिया की आँखों ने,
जग ने उसे बुराई दी है, जिसने भरी भलाई।

३१

उसने जब-तक को भेजा है, तब तक यहाँ रहूँगा,
तब-तक सुख हो, अथवा दुख हो, सब कुछ यहाँ सहूँगा,
कर्म प्रधान रहा धरणी पर, प्रभु हैं सब के द्रष्टा,
"जैसा बोवे वैसा काटे" यह सिद्धान्त कहूँगा।

३२

अध्यापन करते जीवन के तीस बरस बीते हैं[२५]
रोटी खाई, तन ढँक पाया, अब तो कर रीते हैं
एक किराये की कुटिया में काट रहा दिन अब भी,
'कहाँ गया धन ?" सभी पूछते, प्राण मेरे पीते हैं।

---

२४. वैशेषिक दर्शन के सुप्रसिद्ध आद्य दर्शनाचार्य कणाद ऋषि ने खेतों में पड़े सिले के अन्न-कणों से जीवन-यापन किया था।

२५. रचनाकार की विश्वविद्यालय-सेवा से निवृत्ति-तिथि, १६ अगस्त, १९७६ ई०।

३३

जो कुछ था उससे बिटियों के पीले हाथ किये हैं,
गला घोंट कर विप्रवरों ने कन्यादान लिये हैं,
"झूठ सफेद बोलते," हो "हे विप्र! सत्य मम वाणी
लक्ष्मी रूँठी रही, शारदा-सेवी बने जिये हैं।"

३४

'खड़े'[२६]-निवासी 'रामचरण'[२७] उपमा दूँ उनको किनकी ?
अलंकार वे बने अनन्वय, उनको उपमा उनकी,
उनके सुत 'जगदीशचन्द्र'[२८] को ब्याही सुता शारदा,[२९]
घर ऐसे मिलते उनको, तकदीर भली हो जिनकी।

३५

पढ़ विज्ञानाचार्य[३०] हुई जब वीणा[३१] बेटी मेरी,
योग्य मिले उसको वर कोई हुई समय में देरी,
इस भीषण चिन्ता से, मैं था रुग्ण हो गया भारी,
पत्नी मारी-मारी डोली, महा आधि ने घेरी।

३६

इधर उसे चिन्ता बेटी की, उधर मेरे प्राणों की,[३२]
"खर्च करो तो वर अनेक,......कंजूस......"वाक्य-बाणों की,
कुछ बेटेवाले बोले, "कर दो विवाह मेरे को,
दसवीं कर दुकान करता है, वह सुतली-बानों की।

---

२६ तहसील खैर (अलीगढ़) का एक गांव,
२७. श्री रामचरणलाल शर्मा (रचनाकार के बड़े समधी)
२८. डा० जगदीशचंद्र शर्मा (प्रवक्ता, रसायन-विभाग, महाराजसिंह कालेज, सहारनपुर) (रचनाकार के बड़े जामाता)
२९. डा० (श्रीमती) शारदाशर्मा डी० लिट्० अध्यक्ष हिन्दी-विभाग, मुन्नालाल-खेमका कन्या महा विद्यालय, सहारनपुर (रचनाकार की बड़ी पुत्री)
३०. रसायन-शास्त्र में पी-एच० डी०
३१. रचनाकार की द्वितीय पुत्री का नाम,
३२. सन् १९७४–७५ ई० में रचनाकार को भीषण मानसिक रोग ने दबा लिया था, शरीर सूखकर काँटा हो गया था, प्राणों के बचने की कोई आशा न रही थी, तब लगभग पन्द्रह हजार रुपये इलाज में खर्च हो चुके थे, इसी समय बेटी बीणा के विवाह की भी चिन्ता रचनाकार को सता रही थी डा० एस वी० माथुर (दरियागंज, नयी दिल्ली) के इलाज से रचनाकार रोग से मुक्त हुए थे रचनाकार सदा ही डा० माथुर के ऋणी और आभारी हैं और रहेंगे डा० माथुर के लिए रचनाकार के ये शब्द है—
"प्रभु से प्रर्थना है कि डा० एस० वी० माथुर सपरिवार फूलें-फलें, उन जैसा सच्चा, नेक और ईमानदार डाक्टर मैंने जीवन में नहीं देखा यदि भारत में ऐसे डाक्टर समाज को मिल जाएँ तो भारत की जनता पृथ्वी पर दूसरे ईश्वरों के दर्शन करेंगी—ऐसा मेरा विश्वास है

३७

मारा-मारा फिरा बिचारा 'उदय'[३३] भतीजा मेरा,
'पंडित धर्मजीत'[३४] के बेटे 'सोनपाल'[३५] को प्रेरा,
जो राजेन्द्र[३६] अनुज उनके सँग ब्याही वीणा बेटी,
पंडित धर्मजीत शर्मा का 'सुमन बन गया चेरा।

३८

अब चिन्ता रहती है मुझको एक मात्र 'ममता'[३७] की,
किसी भले घर के सपूत की, जोड़ी में समता की,
फिर मैं और संगिनी[३८] मेरी दो प्राणी ही होंगे,
जैसे होगा दिन काटेंगे कर सेवा जनता की।

—८/७ हरिनगर, अलीगढ़
—(रचना तिथि ३१-५-१९७७ ई०)

---

३३. श्री उदयराम शर्मा, सहायक कृषि-निरीक्षक,
३४. रचनाकार के दूसरे समधी (महमूद गढ़ी के निवासी)
३५. पं० धर्मजीत शर्मा के बड़े पुत्र
३६. पं० धर्मजीत शर्मा के छोटे पुत्र (रचनाकार के दूसरे जामाता) पूरा नाम राजेन्द्रपाल शर्मा बंबई में इंजीनियर),
३७. कु० ममता (मधुशर्मा)—रचनाकार की तीसरी पुत्री,
३८ श्रीमती बसंतीदेवी शर्मा (रचनाकार की पत्नी)

शुभाशिषः

—डा० मुंशीरामशर्मा 'सोम'

अम्बाप्रसादतः प्राप्तं सौमनस्यं च सौहृदम् ।
वैदुष्यं येन कौलीन्यं तस्मै मेऽपि शुभाशिषः ॥१

लब्धप्रतिष्ठवर्येषु तस्याभिनन्दनं वरम् ।
शुक्ले यजुषि मोदन्तं, कर्तृत्वं चास्य कीर्तिदम् ॥२

सारस्वतप्रयाजेऽस्मिन् आहुतिः मंगलप्रदा ।
समिधो वैं सहायार्थं सर्वैः देया विधानतः ॥३

अम्बाप्रसादसुमनः सुमनीकरोति ।
वाचा चकास्ति विनयं विजयं विधत्ते ।
चारित्र्यचारुरुचिता रुचमातनोति ।
आत्मैव भूः स्वगमने चितिचन्द्रिकाच ॥४

पार्श्वे न ते विकथनं न च मूढ़माया ।
मा मायुमायुकरणी विरजाह्यजा च ।
अम्बा ददाति वरिवो वदन प्रसादम् ।
स्वस्थो निषीद सदने नितरां प्रसीद ॥५

—६/७० आर्यनगर,
कानपुर

फैले चहुँ दिशि सुरभि 'सुमन' की

—सुकवि श्री नवाबसिंह चौहान 'कंज'

स्नेह सुधा से भरे अंग हैं,
कविता-कानन के कदंब हैं।
विद्या के वारिधि विशाल हैं,
प्रतिभा, चिन्तन और मनन की ॥ फैले......

जीवन शुद्ध स्वभाव सरल है,
मद से मुक्त हृदय निर्मल है।
रीति नीति के प्रबल पुजारी,
कभी न व्यापी चिन्ता धन की ॥ फैले......

पड़ी आपदा इन पर भारी,
फिर भी कभी न हिम्मत हारी।
बहती रही सतत निर्भय हो,
धवल धार इनके जीवन की ॥ फैले......

सरस शारदा के वरदानी,
भरी स्वरों में सुगति सुहानी।
धूमिल कभी न होगी ऐसी,
आभा है साहित्य-गगन की ॥ फैले......

शिक्षा-विद शिष्यों के प्यारे,
लिखते-लिखते कभी न हारे।
वृद्धावस्था का विवेक है,
सबल शक्ति उठते जीवन की ॥ फैले......

मृदुभाषी हैं मन हर लेते,
मुसका कर वश में कर लेते।
पवि को भी पिघला देते हैं,
डाल मोहिनी अपनेपन की ॥ फैले......

पाकर इनको हिन्दी हुलसी,
विहंसे सूर स्वर्ग में तुलसी।
विकसित किया समृद्ध बनाई,
है ब्रज-बोली ब्रज-मोहन की ॥ फैले......

रहे गूंजती इन की वाणी,
झूम उठें सुन-सुन कर, प्राणी।
चमके सदा सुकीर्ति कलाधर,
यही कामना है जन-जन की ॥ फैले......

—भूतपूर्व सांसद,
मथुरा नगर, अलीगढ़

एक ईमानदार साहित्य सेवी

—डा० बनारसीदास चतुर्वेदी, डी० लिट्०

बंधुवर श्री अंबाप्रसाद जी 'सुमन' स्वर्गीय डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के एक प्रतिष्ठित शिष्य रह चुके हैं और इस प्रकार मेरे गुरुभाई हैं, क्योंकि मैं भी स्व० अग्रवाल जी को गुरु-तुल्य पूज्य ही मानता हूँ।

भाई सुमन जी के शुभनाम तथा महत्वपूर्ण काम से मैं बहुत पहले से ही परिचित था। उनके दर्शन निकटभूत में कुछ क्षणों के लिये आगरे की एक मीटिंग में भी हुए थे।

उनका वृहद् ग्रन्थ **'संस्कृति, साहित्य और भाषा'** मुझे समीक्षा के लिये मिला था, पर ८८वीं वर्ष में मैं अधिक लिख-पढ़ नहीं सकता, फिर भी मैंने उसे यत्र-तत्र देख लिया था और मैं सुमन जी की परिश्रम-शीलता तथा स्पष्टवादिता और गंभीर अध्ययन से प्रभावित भी हुआ था। वे एक ईमानदार शिक्षक रह चुके हैं—जो आजकल अत्यन्त दुर्लभ हैं—और अपने शिष्यों तथा समकालीनों को उन्होंने जो कुछ भी लिखा है, उसमें उनकी ईमानदारी तथा परिश्रमशीलता स्पष्ट झलकती है। भाषा और शैली पर उनके विचार मुझे बहुत सुलझे हुए दीख पड़े और मैं भी उनका समर्थक हूँ। उनका ग्रंथ यदि पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जा सके, तो अत्युत्तम हो।

वे अपने जनपद अलीगढ़ के अनन्य भक्त हैं और महाकवि शंकर जी तथा भाई हरिशंकर जी की परंपरा को कायम रखे हुए हैं।

क्या ही अच्छा हो, यदि वे आचार्य वासुदेवशरण जी का एक विस्तृत जीवन-चरित्र भी लिखें।

मोहल्ला चोबान,
स्थान व पो० फिरोजाबाद (उ० प्र०)

'सुमन'-सौरभ

—आचार्य पं० किशोरीदास बाजपेयी

अलीगढ़ के 'सुमन' का सौरभ सम्पूर्ण हिन्दी-जगत् को प्राप्त हो चुका है; यह सौभाग्य की बात है। हिन्दी में एम० ए० पास कर लेने के बाद लोग अपने आप को विद्वान् समझने लगते हैं और फिर 'स्वाध्याय' से प्रमाद करने लगते हैं। ऋषियों ने कहा है—'स्वाध्यायान्मा प्रमदः।' स्नातक हो जाने के बाद यह गुरूजनों की चेतावनी होती थी—'स्वाध्यायेऽहरहः प्रवर्तव्यः।' स्वाध्याय से कभी प्रमाद न करना। अपने विषय का अध्ययन जारी रखना; प्रतिदिन स्वाध्याय करना—अपने विषय का अध्ययन करते रहना। परन्तु आज तो 'स्नातक' बन जाने पर लोग समझते हैं कि हम अपने विषय के 'मास्टर' हो गए। अब आगे हमें कुछ पढ़ने की जरूरत नहीं। इस का परिणाम यह हुआ है कि हिन्दी की सम्पदा बढ़ नहीं रही है—छीजती जा रही है। एक हाथ की अंगुलियों पर ही ऐसे लोग गिने जा सकते हैं, जो (हिन्दी में एम० ए० पास करने के बाद) स्वाध्याय में प्रवृत्त रहे। उन में प्रमुख हैं, डा० नगेन्द्र, डा० उदय नारायण तिवारी और डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन'। डा० 'सुमन' ने हिन्दी को अनेक शब्दशास्त्रीय ग्रन्थ दिए हैं, जो अपना विशेष महत्त्व रखते हैं।

अभी पिछले दिनों एक ग्रन्थ निकला है—'संस्कृति, साहित्य और भाषा'। इस में 'सुमन' जी के लिखे वे महत्त्वपूर्ण पत्र हैं, जिन में उन्हों ने जिज्ञासुओं को उपर्युक्त विषयों पर विस्तार से अपने विचार प्रकट किए हैं। हिन्दी में अपने ढंग का यह पहला ही ग्रन्थ है।

'सुमन' जी ने इस ग्रन्थ पर (छापने के लिए) मेरी सम्मति माँगी। मैं ने लिख भेजा—"सुनिए, आप ही एक हिन्दी—एम० ए० ऐसे निकले, जिन्हों ने मेरे साहित्यिक, सांस्कृतिक तथा भाषा संबन्धी विचारों को इस ग्रन्थ में इतनी जगह और इतना महत्त्व दिया है कि चित्त प्रसन्न हो गया। मेरे और आपके विचार एक जैसे हैं और इसीलिए आपने पसन्द किए। 'समान शील व्यसनेषु सख्यम्'। परन्तु सम्मति देने में आपकी यही उदारता बाधक है। मैं जो सम्मति दूँगा, उसे पढ़कर लोग कहेंगे कि "यह 'परस्पर प्रशंसन्ति' स्पष्ट है। एक दूसरे की प्रशंसा कर रहे हैं।" इस से मेरी सम्मति का मूल्य बना रहेगा ? मैं डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या तथा महा-पण्डित राहुल सांस्कृत्यायन पर भी इसी शालीनता—संकोच से कुछ नहीं लिख सका। हाँ, इतना ही कह सकता हूँ कि ग्रन्थ मुझे अच्छा लगा है।"

वे चुप हो गए; परन्तु फिर मैंने सोचा कि अति की शालीनता तथा संकोच भी ठीक नहीं। मेरा ही एक दोहा है—अति की भली न बात कोउ, कैसी हू संसार। होत तुरत 'आचार' हू 'अति' सों 'अत्याचार'। वह शालीनता—संकोच किस काम

का, जो सच्ची बात कहने में बाधक बने ! उस ग्रन्थ पर मैं ने विस्तृत सम्मति भेजना तो अस्वीकार कर ही दिया था, परन्तु वह चीज मेरी सम्मति की वैसी मुहताज नहीं। उसका आदर बराबर बढ़ रहा है। कोई जौहरी किसी हीरे का मूल्याङ्कन न करे, तो उसका मूल्य कम न हो जाए गा।

'सुमन' का सौरभ इतना मोहक है कि इस के लिए कसम खाकर बतलाने की जरूरत नहीं। 'नहि कस्तूरिकामोदः शपथेन विभाव्यते'।

'सुमन' सदा ही सुमन है; परन्तु यदि उसे बसन्ती—सहयोग मिल जाए, तो क्या कहना। डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' को भगवान ने 'बसन्ती'—सहयोग देकर सोने में सुगन्ध पैदा कर दी है।

—पाणिनि प्रकाशन
कनखल, (उ० प्र०)

शुभाशंसन

—आचार्य पं० सीताराम चतुर्वेदी

अत्यन्त हर्ष की बात है कि डा० अंबाप्रसाद 'सुमन जी' की साहित्य-सेवाओं के प्रति सात्विक कृतज्ञता प्रकट करने और उनके व्यापक पांडित्य तथा उदार स्वभाव का परिचय देने के लिये उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर महा-ग्रन्थ प्रकाशित करने की साधु योजना बनायी गयी है।

श्रीयुत सुमन जी से मेरा परिचय पिछले बहुत वर्षों से है और उनसे निरन्तर पत्राचार और साक्षात्कार होता ही रहता है। श्री सुमन जी ने अपने मसृण, मृदु तथा स्नेहशील स्वभाव के कारण अनेक सद्भावयुक्त सुहृद् और शिष्य अर्जित कर लिये हैं। किसी भी अध्यापक का यही सबसे बड़ा गुण और यही उसकी विराट् विभूति है। सौजन्य, स्नेह और सदाशयता की तो वे साक्षात् मूर्ति हैं। उन्होंने जहां अनेक शिष्यों को वत्सलतापूर्वक ज्ञान-दान किया है वहीं उन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना करके हिन्दी साहित्य की भी श्री-वृद्धि की है। 'यावज्जीवमधीते विप्रः' के सिद्धान्त के अनुसार वे अनवरत स्वाध्याय में निरत रहते हैं और निरालस होकर विद्यादान करते रहते हैं। इस युग में जब नवीन विद्वान् सदा समयाभाव से त्रस्त रहने का रूपक बनाये रखते हैं उस युग में सुमनजी के समान सौमनस्यपूर्वक सबको तृप्त किए रखने की भावना निश्चय ही परम स्तुत्य और श्लाघनीय है।

मैं यही मंगल कामना करता हूँ कि ईश्वर इन्हें सदा स्वस्थ और सुखी रक्खे और कर्मठ जीवन के लिये इनके आयुष्य की वृद्धि करे।

—वेदपाठी भवन,
मुजफ्फरनगर (उ० प्र०)

सारस्वत कर्मठता का जीवन

—डा० नगेन्द्र

डा० अंबाप्रसाद सुमन से मेरा परिचय सन् ३२-३३ में हुआ था। आज यह घटना लगभग आधी शताब्दी पुरानी हो चुकी है लेकिन उनके साथ मेरा स्नेह-संबंध यथापूर्व बना हुआ है और उसका मूल कारण यह है कि हम दोनों अपनी-अपनी शक्ति और सीमा के अनुसार निरन्तर एक ही पथ के पथिक रहे हैं। उन्होंने मेरी अपेक्षा अपने जीवन में संघर्ष अधिक किया है इसलिए उनकी साहित्य-साधना अपेक्षाकृत अधिक श्लाघ्य है। सुमनजी की यह सारस्वत कर्मठता मुझे आरम्भ से ही प्रभावित करती रही है। अनुकूल परिस्थितियों में रचनात्मक कार्य करते रहना निश्चय ही सरल होता है, किन्तु प्रतिकूल स्थितियों में अपने लक्ष्य से विचलित न होना सच्चे साधक का अनिवार्य लक्षण है।

सुमनजी का मूल विषय भाषाविज्ञान है और अपने क्षेत्र में उनकी उपलब्धि बहुमान्य रही है। उनके शोधप्रबन्धों की देश-विदेश के मूर्धन्य विद्वानों ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। शब्द-विज्ञान में उनकी गहरी पैंठ है। विषय के प्रति अटूट श्रद्धा के कारण उनमें सहज आत्म-विश्वास आ गया है, जो पंडित का वास्तविक धर्म है। वे अत्यन्त निर्भीकता पूर्वक बड़े-से-बड़े अधिकारी विद्वान् से भिन्न अपना स्वतंत्र मत व्यक्त करने का साहस रखते हैं।

व्याकरण-जिज्ञासा और काव्यास्वाद में प्रायः सौहार्द नहीं रहा; सहृदय-समाज में वैयाकरण को प्रायः शास्त्राभ्यास जड़ माना गया है। किन्तु सुमन जी इस कोटि में नहीं आते। भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में अनवरत शोध-साधना ने उनकी विदग्धता को कुंठित नहीं किया वरन् प्रकारान्तर से उसमें योग ही दिया है। तुलसी आदि कवियों के वाग्वैभव का मार्मिक विवेचन इसका प्रमाण है। वास्तव में, काव्य-शास्त्र और व्याकरण में किसी प्रकार का मौलिक वैमनस्य नहीं है, अनुभूति के स्तर पर दर्शन तथा अभिव्यक्ति के स्तर पर व्याकरण का साहित्यविद्या ने आरम्भ से ही पूरा लाभ उठाया है। सुमनजी इस तथ्य से पूर्णतः अवगत रहे हैं और इसीलिए वे एक ओर अपनी भाषिक प्रतिपत्तियों के लिए काव्य का और दूसरी ओर काव्य के विवेचन-विश्लेषण में अपने भाषिक ज्ञान का यथाप्रसंग उपयोग करते हैं।

व्यक्ति के रूप में वे ब्राह्मणत्व के अनेक गुणों से संपंन हैं। सरस्वती की अनवरत उपासना से स्वाभिमान का जो वरदान प्राप्त हुआ है, उसकी रक्षा के लिए

उन्हें काफी त्याग करना पड़ा है और वे अपना प्राप्य अर्जित नहीं कर सके। लेकिन इस प्रकार की सामान्य विफलताओं से उनकी आत्मा कभी मलिन नहीं हुई और सरस्वती की कृपा से उनका ब्रह्म सदा जागरुक रहा है। मैं इसे उनका या किसी भी अध्यापक अथवा विद्वान् का अनिवार्य गुण मानता हूँ। उनकी ज्ञान-साधना में आज भी किसी प्रकार शैथिल्य लक्षित नहीं होता और मुझे विश्वास है कि वह अन्त तक इसी प्रकार सार्थक एवं फलवती बनी रहेगी।

मैं उनके सुख-स्वास्थ्य एवं सौभाग्य के लिए मंगलकामना करता हूँ।

—ई ४/१८ माडल टाउन, दिल्ली—९

जिज्ञासु अध्येता

—डा० उदयनारायण तिवारी, डी० लिट्०

डा० अंबाप्रसाद 'सुमन से सर्वप्रथम मेरा कब साक्षात्कार हुआ, यह स्मरण नहीं है किन्तु उनसे घनिष्ठता प्राप्त करने का सुअवसर हाथरस में मिला। आज से कई वर्ष पूर्व हाथरस में एक वृहत् साहित्यिक संगोष्ठी हुई थी जिसमें लोक-साहित्य के सम्बन्ध में चिन्तन एवं विचार हुआ था। इसमें राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद जी सम्मानित अतिथि के रूप में सम्मिलित हुए थे। इस संगोष्ठी में उस युग के प्रायः सभी विशिष्ट साहित्यिक–पं० रामनरेश त्रिपाठी, पं० बनारसी दास चतुर्वेदी, पं० श्री नारायण चतुर्वेदी पं० हजारी प्रसाद द्विवेद्वी, डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, डा० नगेन्द्र, पं० गोकुलचन्द शर्मा आदि—सम्मिलित हुए थे। आस-पास के हिन्दी के विद्वान् एवं प्रेमी भी इस ज्ञान-यज्ञ में भाग लेने के लिये समुपस्थित हुए थे। श्री अंबाप्रसाद 'सुमन' भी इस समारोह में भाग लेने के लिये अलीगढ़ से आये थे। संयोग से 'सुमन' जी को उसी कमरे में ठहरने का स्थान मिला था जिसमें डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, प० हजारीप्रसाद द्विवेदी एवं श्री देवेन्द्र सत्यार्थी के साथ मैं ठहरा था।

तीन दिनों तक हम लोग लोक-साहित्य के विविध पक्षों पर विचार एवं चिन्तन करते रहे। वास्तव में चिन्तन की यह परम्परा हमारे देश में बहुत पुरानी है। हमारे देश के ऋषि 'तप-स्वाध्याय' में 'निरत' होकर ज्ञान-विज्ञान प्राप्त करते थे तथा उन्मुक्त होकर उसका प्रचार-प्रसार करते थे। उन दिनों, प्रयाग विश्वविद्यालय में लोक-साहित्य के अध्यापन का भार मेरे ही ऊपर था अतः वाद-विवाद में, मुझे विशेष आनन्द मिल रहा था। 'सुमन' तथा 'सत्यार्थी' दोनों हम लोगों के कविष्ट थे किन्तु इन दोनों में कौन ज्येष्ठ तथा कनिष्ठ था, यह मुझे आज भी ज्ञात नहीं है। मुझे स्पष्ट स्मरण है कि उस कमरे में सुमनजी सब से अधिक मुखर थे। वे लोक-साहित्य के सम्बन्ध में, अनेक सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक प्रश्न पूछते थे। उन प्रश्नों के विनोद पूर्ण ढंग से उत्तर देते हुए द्विवेदी जी तथा अग्रवाल जी इतने जोर का ठहाका लगाते थे कि कमरा काँप उठता था। सुमन जी निर्भीक होकर प्रश्न पूछते जाते थे। इसमें अवस्था बाधक न थी क्योंकि सभी लोग समान भाव-भूमि पर थे—'खेलत में, को काको गोसैंया'।

यहाँ से प्रेरणा प्राप्त कर सुमन जी ने ब्रज की कृषि-शब्दावली का वैज्ञानिक अध्ययन किया। यह अध्ययन आपने स्वर्गीय वासुदेव शरण अग्रवाल के तत्वावधान में सम्पन्न किया था। इस अधिनिबन्ध पर सुमन जी को आगरा विश्व-विद्यालय की पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई थी। डा० हरिहर प्रसाद गुप्त के बाद इस विषय का यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण अधिनिबन्ध था। इसके आदर्श पर हिन्दी में अनेक महत्वपूर्ण अधिनिबन्ध लिखे गये।

इसके बाद सुमन जी भाषा-विज्ञान के अध्ययन में प्रवृत्त हुए और आपने भाषा-विश्लेषण की अधुनातन वर्णनात्मक पद्धति पर अधिकार प्राप्त किया। चूँकि आप संस्कृत व्याकरण की पाणिनीय पद्धति से परिचित थे अतः आप को यह समझने में देर न लगी कि पाणिनि कृत वर्णिम ही आज के वर्णनात्मक भाषा-विज्ञान का स्वनिम या ध्वनिग्राम या फोनीम है। जिस प्रकार पाणिनि व्याकरण का आरम्भ माहेश्वर सूत्र के वर्णिम से होता है उसी प्रकार वर्णनात्मक भाषा-विज्ञान में भाषा का अध्ययन स्वनिम या फोनीम से आरम्भ होता है। डा० सुमन ने अपने डी० लिट्० के अध्ययन के लिये वर्णनात्मक पद्धति को ही अपनाया तथा इसी पद्धति से अपना ब्रजभाषा का अध्ययन संपंन किया।

डा० सुमन के तप-स्वाध्याय का निरंतर विकास एवं विस्तार होता गया। आप लोक-साहित्य के अध्ययन से भाषा विज्ञान के क्षेत्र में आये तथा इसमें कई पुस्तकों का प्रणयन किया। इस संदर्भ में आप के "रामचरित-मानस भाषा रहस्य" के अध्ययन का स्थान सर्वोपरि है। इसमें, आपके ऐतिहासिक एवं वर्णनात्मकभाषा-विज्ञान के ज्ञान का मणि-काञ्चन योग है।

डा० सुमन के सहयोगी मित्र, छात्र एवं प्रेमी यह सहज धारणा बना सकते हैं कि अवकाश ग्रहण करने तथा अभिनंदन ग्रंथ के प्रकाशन के साथ वे प्रगति के शिखर पर पहुँच गये किन्तु यह उन लोगों की भ्रान्त धारणा होगी। वास्तव में मानव-जीवन का अंतिम सोपान है अध्यात्म। पुरुषार्थ चतुष्टय में सबसे ऊँचा स्थान मोक्ष एवं निर्वाण का है। चाहे इसकी उपलब्धि निर्विकल्प समाधि द्वारा हो अथवा भक्ति-मार्ग से या दोनों के स्वर्णिम सम्मिश्रण से, किन्तु मानव के लिये यह है परमावश्यक। डा० सुमन की पत्रों वाली जो पुस्तक प्रकाशित हुई है उसके पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह जाग्रत व्यक्ति हैं और अध्यात्म की ओर उन्मुख हैं। डा० सुमन से मेरा शिष्यवत् व्यवहार है। मेरी हार्दिक कामना है कि वे शतजीवी हों तथा चारों ओर अपने शुभ कर्मों तथा सत्याचरण की सुगंधि, बिखेरते रहें।

६, अलोपीबाग, इलाहाबाद–६

सहृदय मित्र

—डा० राकेश गुप्त

अलीगढ़ मेरा घर था, डा० 'सुमन' का कार्यक्षेत्र। समानधर्मा होने के नाते मैं जब भी अलीगढ़ आता, डा० 'सुमन' से भेंट अवश्य करता। धीरे-धीरे सामान्य परिचय मित्रता में बदलने लगा। मैं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में अध्यापक था। डा० 'सुमन' हिन्दी, संस्कृत एवं पुरातत्त्व के प्रसिद्ध विद्वान् स्व० डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के निर्देशन में अपना शोध-कार्य कर रहे थे। काशी में भेंट होने पर अलीगढ़ की मित्रता घनिष्ठता में परिवर्तित होने लगी। डा० 'सुमन' की क्षमताओं से मैं कुछ-कुछ परिचित तो अवश्य था, पर उनके अध्ययन की गंभीरता और उनके मौलिक चिंतन की गरिमा का आभास मुझे उनके गुरु डा० अग्रवाल के माध्यम से मिला। डा० अग्रवाल की गणना काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के परिसर में रहने वाले इने-गिने विद्वानों में थी; पढ़ने-लिखने से दूर रहने वाले तथाकथित प्रोफेसर उनसे बात करने में भी डरते थे। किसी की थोड़ी प्रशंसा भी वे अच्छी तरह ठोक-बजा कर ही करते थे। ऐसे डा० अग्रवाल ने जब 'सुमन' जी के कार्य और विद्वत्ता की भूरि-भूरि प्रशंसा की, तो 'सुमन' जी के प्रति मेरा प्रशंसा और आदर का भाव और भी बढ़ गया। इसके पश्चात् मैं जहाँ भी रहा, डा० सुमन से मेरा संपर्क बराबर बना रहा तथा हमारी मित्रता की परिणति अभिन्नता में हो चली। नैनीताल रहते हुए मैंने कई बार उन्हें वहाँ बुलाना चाहा, किंतु अपनी तत्कालीन अस्वस्थता के कारण वे मेरा निमंत्रण स्वीकार न कर सके।

डा० 'सुमन' के स्वभाव में 'दिखावा' जैसी कोई चीज नहीं है। सामान्य पर सुरुचिपूर्ण वेशभूषा में वे विशिष्ट व्यक्ति से प्रतीत नहीं होते। उनकी महनीयता उनकी वाणी के मुखर होने पर ही अभिव्यक्त होती है। तथाकथित विद्वद् समाज के परजीवी शोषकों ने उन्हें उनके उपयुक्त पद नहीं मिलने दिया। पर वे न पद-लोलुप हैं, न अर्थ-लोलुप। उनकी विद्वत्ता के प्रकाश को चतुर्दिक् विस्तीर्ण होने से कोई नहीं रोक सका। ऊँची कुर्सियों पर बैठने का अवसर मिल जाने मात्र से जिन लोगों ने स्वयं को महान् समझने की भूल की है, समय की तराजू पर वे नितांत नगण्य ही दिखाई देंगे।

डा० 'सुमव' में एक बड़ा दोष है : वे स्पष्ट वक्ता हैं। अप्रिय सत्य भी बोलने में संकोच नहीं करते। इससे उनके कुछ मित्र और साथी कभी-कभी अप्रसन्न भी हो जाते हैं। पर यह साफगोई उनके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बन चुकी है।

वैसे उनके प्रशंसकों की भी कमी नहीं है। गुरुवर श्रद्धेय पं० जगन्नाथ तिवारी जी से विगत २५ सितंबर को मैंने आगरा में भेंट की थी। उन्होंने डा० 'सुमन' की विद्वत्ता की मुक्तकंठ से सराहना की। उनके कृतज्ञ विद्यार्थियों की संख्या अपरिमित है, जो केवल उनकी ज्ञान-गरिमा से ही लाभान्वित और प्रभावित नहीं हुए, उनके सहज वात्सल्य भाव से भी आप्यायित हुए हैं।

परम पिता से प्रार्थना है कि हिंदी का यह एकनिष्ठ सेवक स्वस्थ रहते हुए दीर्घायु हो, जिससे माँ भारती का कोष अधिकाधिक समृद्ध हो सके।

२५४, सर्वोदय, सासनी गेट
आगरा रोड, अलीगढ़

जैसे मुझे लगे

—डा० आनंदप्रकाश दीक्षित

१९४० के आसपास की बात। हिन्दी साहित्य के मच पर कई 'सुमन' उदित हैं। रामनाथ सब में ज्येष्ठ, किन्तु शिवमंगल, क्षेमचन्द्र और शेखूपुरी समवयसी। कविता-प्रेमी वर्ग उस समय, जहाँ तक मुझे याद पड़ता है, अंबाप्रसाद को नहीं जानता था, जानता था और जानने लगा था 'सुमन' शेखूपुरी' को। कह नहीं सकता कि अब भी लोग किसी ऐसे नाम से परिचित हैं कि नहीं, लेकिन इनता विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि ज्ञानियों के बीच जिस एक नाम की गरिमा निरंतर वृद्धिगत होती गयी है, वह नाम है अंबाप्रसाद 'सुमन'। गद्य-लेखन में वे शेखूपुरी से अलग हटकर हमेशा अंबाप्रसाद ही रहे, लेकिन 'सूमन' के साथ उनकी अभिन्नता और अंतरंगता अशिथिल भाव से बनी रही।

ऐसा नहीं है कि 'सुमन' की भावुकता ने कभी उनके कैशोर क्षणों में कविता में साँस ली हो और आयु के विकास के साथ भावुकता की चिनगारी बुझ गयी हो। अंबाप्रसाद की भावुकता ने, उनका साथ कभी नहीं छोड़ा, बल्कि आज भी वे आद्यंत एक भावुक व्यक्तित्व ही हैं; लेकिन उनकी ज्ञाननिष्ठा ने उन्हें कविता के कल्पना-लोक से हटाकर स्वाध्याय-तप के लिए विशेष भावुक बना दिया है। भावुकता उनकी आत्मसंमान की रक्षा के क्षणों में, मित्रों और परिजनों के बीच, मनुष्य-धर्म के निर्वाह के अवसरों पर नानावर्णी होकर उपस्थित होती रहती है, कविता की पंक्तियों में सिमटकर बँधी नहीं रह जाती।

सासनी, खुर्जा, अलीगढ़ और मद्रास में ही नहीं, इन स्थानों के अतिरिक्त भी, स्थानगत दूरियों के बावजूद में श्री अंबाप्रसाद 'सुमन' शेखूपुरी का पीछा करता रहा हूँ। ४० वर्षों की दीर्घ कालावधि में अनिरुद्ध भाव से उनसे मेरा मानसिक संपर्क बना रहा है, उनके जीवन के ऊँच-नीच क्षणों से परिचित रहा हूँ, कभी-कभी उनके वैदुष्य से अपनी ही किसी गलती के कारण आतंकित और राहत हो जाने वाले मित्रों के बीच उनके विवादग्रस्त व्यक्तित्व को अंकित होते देखता आया हूँ, लेकिन अनातंकित और निर्मल भाव से उनके अंतरंग का जब कभी भरपूर समझने का अवसर मिला, मुझे उनमें एक सहज, निश्छल आत्मीय ही दिखाई पड़ा।

'सुमन' जी व्यसनी हैं, लेकिन विद्या-व्यसनी। और किसी व्यसन की बात उनके विषय में नहीं उठती। व्यापक ज्ञान की चाह और गहरे उतरने का उत्साह उनमें निरंतर बना रहता है। भाषा उनके विचार का केन्द्रीय विषय है, आस्था

और धर्म उनके आचरण के अंग हैं। इसी से वे केवल भाषाशास्त्रीय नहीं है, उसके माध्यम से और उसके अतिरिक्त उनकी पैठ संस्कृति में भी है, और साहित्य में भी। अभी पिछले दिनों उनके पत्र-व्यवहार को लेकर **'संस्कृति, साहित्य और भाषा'** नाम से जो संकलन प्रकाशित हुआ है, वह उनके ज्ञान के इस पक्ष को ही उद्‌घाटित नहीं करता, उनके अन्तरंग को भी सामने लाता है।

'संस्कृति, साहित्य और भाषा' किसी बंधे प्रश्न के उत्तर की सधी खोज नहीं है। बृहद् आयास में इन तीनों से संबंधित अनेकानेक विषयों के अंतर्गत उठाये गये प्रश्नों के समाधान का वृहत् प्रयत्न है। मित्रों, शिष्यों, स्वजनों और सामान्य जिज्ञासुओं द्वारा उठाये गये प्रश्नों का उत्तर सतही तौर पर चाहे जितना सरल कार्य दिखाई पड़ता हो, उत्तरदाता से सततशोध और आत्मपरीक्षण या आत्म-साक्षात्कार करते रहने की अपेक्षा रखता है। दूसरे पक्ष से आया हुआ प्रश्न जब तक उत्तरदाता का अपना प्रश्न नहीं बन जाता और स्वयं उसकी जिज्ञासा का समाधान जब तक नहीं हो जाता, तथ्य और तार्किकता की तुला पर तौल कर जब तक वह स्वयं अपने उत्तर से संतुष्ट नहीं हो जाता, तब तक दिये गये उत्तर का कोई मूल्य नहीं होता। सजग उत्तरदाता ऊपर से दीखने में मात्र उत्तरदाता होता है, किन्तु उत्तरदायी के रूप में वह स्वयं अपने सामने एक प्रश्नकर्त्ता बनकर खड़ा रहता है। अपने आप से निरंतर संघर्ष की स्थिति में होता है। यही कारण है कि डा० सुमन के पत्रोत्तर-साहित्य में कुछ ऐसे पत्र भी सम्मिलित हैं, जो किसी प्रश्न के तत्काल उत्तर नहीं हैं। सहयोगियों, मित्रों, सभ्यों के साथ उठते-बैठते, वार्तालाप करते कभी-कभी जिन प्रश्नों से उनका साक्षात् टकराव हुआ है, उन्हें उन्होंने सम्यक् विचार के लिए अपने मन में संजो लिया है और कुछ समय उपरांत जिस समाधान तक वे पहुँचे हैं, उससे उन्होंने संबंधित व्यक्ति को अपनी ओर से ही अवगत करा दिया है। कई बार वे दूसरों के द्वारा प्रस्तुत समाधान पर मुग्ध हुए हैं, और उसे सहज भाव से उन्होंने व्यक्त भी कर दिया है। १९५५ से १९७९ के बीच अनेक विषयों पर उन्होंने अपने समाधान प्रस्तुत किये हैं। स्वाभाविक है कि इस अवधि में कुछ जिज्ञासाएँ पुनरावृत्त भी हुई हैं, लेकिन एक ही व्यक्ति के द्वारा नहीं, अलग-अलग व्यक्तियों के द्वारा। ऐसे स्थलों पर 'सुमन' जी की स्थिर मति ने एक ही निश्चित उत्तर दिया है, कभी कुछ और कभी कुछ नहीं। पुनरावृत्त प्रश्नों और उनके उत्तरों के साथ-साथ यदि इस संग्रह में कुछ परिवर्तित प्रश्न भी होते, समाधान के बीच से किसी सूत्र को पकड़कर फिर कोई प्रश्न लौटकर 'सुमन' जी तक आता और उसके साथ प्रश्नकर्त्ता का जिज्ञासु-भाव ही नहीं, उत्तरदायी का चिन्तक स्वरूप भी जुड़ा होता, तो मुझे और भी अधिक प्रसन्नता होती।

निस्संदेह, इन पत्रों की अपनी एक सीमा है। ये मुख्यत: मध्यकाल की सीमा पर आकर ठहर और ठिठक नहीं जाते हैं। ऐसा नहीं है कि उसके उत्तरवर्ती काल को ये अपनी परिधि में नहीं समेटते। आधुनिकता, समकालीनता, आचरण,

नागरिकता, आधुनिक भाषा और ऐसे ही अनेक विषयों से संबंधित प्रश्न भी यहाँ हैं और उनके समाधान भी; किन्तु उनकी एक तो संख्या कम है और दूसरे साहित्य के घेरे में वे कविता से अधिक और साहित्य की दूसरी विधाओं से कम संबद्ध हैं। 'सुमन' जी का अपना रूप तो वस्तुतः शब्दों की गहरी पकड़, गोस्वामी तुलसीदास के 'मानस' के आन्दोलन और संस्कृति के स्वरूप-चिंतन में खिलता और खुलता है। वही उनके अध्ययन, चिंतन और मनन के विषय भी हैं। तिथि-क्रम में लगे इन पत्रों में 'सुमन' कहीं-कहीं व्यक्ति-रूप में भी बोलते हैं, सहज से अति सहज हो जाते हैं और आत्मीयता, स्पष्टता और संक्षिप्तता तो इन पत्रों के सद्गुण ही हैं। ये ज्ञान की चकाचौंध पैदा नहीं करते, उसकी चेतना जगाते और स्फुरित करते हैं। डा० 'सुमन' इनके बीच से 'सुमनस्' होकर उभरते हैं।

प्रोफेसर तथा अध्यक्ष,
हिन्दी—विभाग
पुणे विद्यापीठ, पुणे,
पूना (महाराष्ट्र)

बहुदिशीय अध्येता

—डा० विद्यानिवास मिश्र

श्री डा० अंबा प्रसाद 'सुमन' के मिलने पर पहला प्रभाव यह पड़ता कि वे विद्या-व्यसनी व्यक्ति हैं और हिन्दी भाषा और ब्रजभाषा की बारीकियों के लिए निरन्तर चिंतनशील रहते हैं। ब्रजभाषा की शब्द-शक्ति के सर्वेक्षण क्षेत्र में उनका कार्य कृषक जीवन संबंधी शब्दावली तथा ब्रज भाषा शब्दावली अत्यन्त विशिष्ट महत्व का कार्य है। ग्रियर्सन की विहार प्लीसेन्ट लाइफ के बाद किसी क्षेत्र की सांस्कृतिक और व्यावसायिक शब्दावली का सांगोपांग विवेचन के रूप में इसी पुस्तक को मैं स्थान देता हूँ। ये पुस्तक सुमन जी की सूझबूझ के लिए अपने आप में पर्याप्त प्रमाण है।

सुमन जी का अध्ययन बहुदिशीय है और संस्कृति एवं साहित्य के अनेक प्रश्नों पर उन्होंने निरंतर मौलिक विचार प्रतिपादित किये हैं किन्तु उनके समस्त चिन्तन के केन्द्र की अभिव्यक्ति की स्पष्टता और प्रखरता रहती है। इसलिए उनके विचार भी बड़े सुलझे होते है। वे अपने शिष्यों को तो प्रेरणा देते ही होंगे, अपने मित्रों और स्नेहियों को भी अपने चिन्तन से निरन्तर नया कुछ सोचने और नया कुछ रचने की प्रेरणा देते हैं।

सबसे बड़ी आश्चर्यजनक बात यह है कि वे अनर्थक काम कर सकते हैं और सार्थक चर्चा भी।

मुझे उनके साहचर्य का जब-जब सौभाग्य प्राप्त होता है उनकी इस विद्या व्यसनिता के लिए स्पृहा करता हूँ। सुमन जी जैसे समर्पित अध्येता हिन्दी में बहुत इने गिने हैं। मैं उनके व्यक्तित्व को एक प्रकाश का नाभिकेन्द्र मानता हूं।

—निदेशक,
क० मुं० हिन्दी तथा भाषा-विज्ञान
विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय
आगरा

'सुमन'-स्तवन

—डा० जगदीश वाजपेयी

सुमन-सुरभि सम दिश-दिश फैले—
सारस्वत साधना तुम्हारी ।

मनन, सार-संग्रह, प्रणयन, फिर मुक्त-हस्त वितरण, संप्रेषण;
सफल-पत्र-लेखन, संपादन, शिक्षण, शोध-कार्य संभाषण;
सोने में सुगंध-सी लगती प्रज्ञामय कल्पना तुम्हारी ।

सुमन-सुरभि सम.........

काव्य-शास्त्र के निरुपम पंडित, शब्द-शास्त्र के अनुपम ज्ञाता;
सत्रह के लगभग ग्रंथों के लोक-प्रशंसित कृती विधाता;
पावन करे विज्ञ-जन-मन को वाङ्मयी वंदना तुम्हारी ।

सुमन-सुरभि सम.........

अक्षर-अक्षर लिखा तुम्हारा, सत्यं, शिवं, सुंदरम युत है;
पंक्ति-पंक्ति तव तथ्य-कथ्य-दोनों ही रूपों में अद्‌भुत है;
प्रेरक बने असंख्य जनों हित शब्द ब्रह्म-अर्चना तुम्हारी ।

सुमन-सुरभि सम.........

रहकर नगरों में भी तुमने गांवों की मृदु-बान न छोड़ी;
आश्रमवासी निस्पृह गुरु-सी ज्ञान-दान की आन न तोड़ी;
उत्तर-दक्षिण मध्य सेतु-सी बनी रहे भावना तुम्हारी ।

सुमन सुरभि सम.........

अध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिन्दी-विभाग,
एस० डी० कालेज, मुजफ्फरनगर ।

अभिनंदन

—सुकवि श्री त्रिभुवननाथ शर्मा 'मधु'

जिनके सद्गुण सौम्य सहज ही सबके मन भाये हैं,
जो अपने सौजन्य शील से जन-मन अपनाये हैं,
दीप-शिखा की भाँति जल रही जिनकी स्नेह साधना,
मन में वे **अंबाप्रसाद जी 'सुमन'** याद आये हैं।

स्पदित लोक-चेतना जिनमें साहित्यिक रुचि लाती,
अंतः सलिला धारा जिनकी कविता कृति दर्शाती,
कुशल निबंधकार, संपादक सफल, समीक्षक सच्चे,
ऐसे प्रांजल प्राध्यापक की क्यों न भला सुधि आती।

श्यामा माता **श्याम** पिता, जीवन-संगिनी **बसंती**,
मधु-वीणा-शारदा सुकन्या किये कांति छविवंती,
विभव विभूति भवन अनुकूला वंश-वेलि फबि फूली,
बिखर रही अंबा-प्रसाद की अविरल हँस हसंती।

उनके द्वारा मिला मुझे अग्रज का स्नेह सृजन है,
नित मेरा अनुजत्व उन्हें करता विनीत वंदन है,
स्मृति मात्र से ही जिसकी सुरभित मन की फूलवारी;
श्लाघनीय वर वंदनीय वह अपना सुहृद् **'सुमन'** है।

समय-समय पर मिलता रहता उनसे सुंदर हित है,
जिनमें विद्या व्याकरण की अंकित है अंतरहित है,
दीर्घ आयु की किये कामना **'मधु'**-मानस में, उनको,
यह छ्यासठवीं वर्षगाँठ पर अभिनंदन अर्पित है।

—बाराबंकी (उ०प्र०)

अर्पण

—श्री आनंदपाल सिंह 'एकलव्य'

"मुझ में वह सामर्थ्य नहीं; जो गुरु-गौरव लिख सकती हो;
उस प्रतिभा का लेश नहीं: जो गुरु-गाथा रच सकती हो।
करुणा मिली, मिली अनुकंपा; कविता-रचना-भक्ति मिली;
मिले अंध को नेत्र, नेत्र की पुतली; पुतली-ज्योति मिली।

मुझें मिल गये कविता-गुरुवर; करुणा-कर्मठता के पुंज।
माता वीणापाणि-चरण में जिनके प्रतिफल शब्द-सुकंज ॥
शिक्षकवर मैं कहूँ, उन्हें या लेखकवर या व्यास प्रवीण;
मूर्धन्यभाषाविद् कह दूँ, या भावुक वक्तृत्व-धुरीण।

अपने गुरुवर के 'विराट्' को कैसे कह दे यह 'अणु' आज;
श्रद्धा-सुमन कर रहा अर्पित 'एकलव्य' का भाव-समाज ॥"

—गाँव-इनायतपुर बझेड़ा,
डा० अहमपुर, जि० अलीगढ़
(उ० प्र०)

विनत भाव से कुंकुम-चंदन

—श्री दुर्गादास

डगमग-डगमग पाँव पड़ रहे अंधकार में भटक गया था।
ऊबड़-खाबड़ धरती पर चलते-चलते जब अटक गया था॥

जीवन की सरिता धारा में प्रबल भँवर जब पड़े हुए थे।
गुरु ने अपनी भुजा पसारी देखा गोदी लिये हुए थे॥

अपनी ज्ञान-ज्योति से मेरी हृत्-कलिका को खिला दिया था।
उन श्रीचरणों में मेरे हैं शत-शत नमन, कोटिशः वंदन।
गुरु-पद-रज हूँ शीश चढ़ाता, विनत भाव से कुंकुम-चंदन॥

—प्रधानाचार्य,
आदर्श भारती इंटर कालेज, कलवा,
जि० अलीगढ़ (उ० प्र०)

मेरे लंगोटिया यार सहपाठी भैया

—श्री जयप्रकाश चंद्रा, एम० ए०

विद्यार्थी जीवन की कुछ यादें बड़ी मधुर होती हैं और उन मधुर यादों के मधुरतम आधार कुछ सहपाठी मित्र होते हैं, जो अपने मधुर स्वभाव और सुन्दर व्यवहार से मन को मोह ही नहीं लेते; अपितु मानस-पटल पर सदा के लिए अंकित हो जाते हैं। ऐसे ही अंकित होने वाले मित्रों में भैया 'सुमन' का चित्र परम मनोरम और आकर्षक है। वह चित्र है सरल, मधुर और हँसता हुआ।

मेरा सर्वप्रथम परिचय भाई अंबाप्रसाद 'सुमन' (प्यार का नाम अम्बे) से सन् १९३२ में हुआ था। तब भैया सुमन और मैं अलीगढ़ के कटरा मोहल्ले में रहा करते थे। भाई अंबाप्रसाद तब अपने एक रिश्तेदार श्री पं० हरीशंकर शर्मा (पोस्ट मास्टर) के यहाँ रहते थे। दैव के दुर्विपाक से पं० हरीशंकर जी का देहावसान हृदय-गति रुक जाने से हो गया था। उसके उपरांत भैया सुमन और मैं साथ-साथ रहने लगे थे। मेरी माता जी और पिता जी भैया सुमन से बड़ा प्यार करते थे। हम दोनों साथ ही साथ पढ़ा करते थे और खेला करते थे। भैया 'सुमन' की योग्यता और मेधा से मेरे विद्यार्थी-जीवन को भी बड़ा लाभ हुआ था। अवस्था में मैं उनसे कुछ छोटा था। भैया सुमन का प्यार मुझे सदा मिला, घर में, बाहर और कक्षाओं में भी। अपनी योग्यता के कारण वे प्रायः कक्षाओं में मानीटर भी बनाये जाते थे। कक्षा ७ से लेकर कक्षा १० तक प्रायः हर कक्षा में वे मानीटर बने। कक्षा ७ और ८ में तो वे कुछ घंटों में अध्यापकों की उपस्थिति और अनुपस्थिति में वे कुछ विषय भी कभी-कभी पढ़ाया करते थे। धर्मसमाज इण्टर कालेज, अलीगढ़ (अब डिग्री कालेज) की सातवीं तथा आठवीं कक्षाओं में हिन्दी, भूगोल तथा इतिहास हमें अध्यापक श्री कालीचरन गुप्त और श्री बलरामदास पढ़ाया करते थे। वे दोनों अध्यापक भाई अंबाप्रसाद 'सुमन' को ही प्रायः विषय पढ़ाने तथा पिछला पाठ सुनने के लिए नियुक्त कर दिया करते थे। आठवीं कक्षा में गणित के अध्यापक श्री दुर्गाप्रसाद माथुर थे। उनके घंटे में अंकगणित और ज्योमेट्री तो एक प्रकार से भैया सुमन ही पढ़ाते थे। परीक्षाओं में भैया सुमन प्रथम स्थान पाते थे। सातवीं और आठवीं कक्षाओं में सुमन भैया प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान के साथ उत्तीर्ण हुए थे। इतना ही नहीं, नाटक, कविता, निबंध आदि की प्रतियोगिताओं में भी उनका स्थान सर्वोपरि ही रहता था। आठवीं कक्षा से ही सहपाठी छात्रों में तथा पूरे धर्मसमाज कालिज के विद्यार्थियों में उनकी लोकप्रियता दिनों-दिन बढ़ती

गयी थी। हाईस्कूल परीक्षा (सन् १९३६ ई०) भैया सुमन ने प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की थी। हिंदी-साहित्य के योग्यतम छात्र होने के नाते हिंदी के प्रोफेसर तथा प्रसिद्ध हिंदी-साहित्यकार पं० गोकुलचंद्रशर्मा अंबाप्रसाद 'सुमन' को बड़ा स्नेह प्रदान करते थे। इंटर कक्षाओं में 'सुमन' हिंदी साहित्य परिषद् के मंत्री भी सर्व सम्मति से चुने गये थे। उस वर्ष अर्थात् १९३७–३८ ई० में भाई अंबाप्रसाद 'सुमन' के विरोध में कोई विद्यार्थी चुनाव में खड़ा नहीं हुआ था। उनकी लोकप्रियता विद्यार्थी-समाज में गजब की थी। वे कालेज-मैगजीन के हिंदी-विभाग के छात्र-संपादक भी रहे थे। उन दिनों भैया सुमन की कविताओं की घूम थी। उनकी मंचीय काव्य-पाठ शैली और स्वर की मधुरता कवि सम्मेलनों में समा बाँध देती थी। अलीगढ़-प्रदर्शनी के कवि-सम्मेलन (१९३७ ई०) में भैया सुमन को कविता-पाठ-प्रतियोगिता में समस्या-पूर्ति-पर स्वर्ण पदक भी मिला था। तब कवि-सम्मेलन के निर्णायक पं० गोकुलचन्द्रशर्मा और अध्यक्ष पं० रामस्वरूपशास्त्री (संस्कृत विभाग, अलीगढ़ मु० विश्वविद्यालय) थे।

जिस समय भाई अंबाप्रसाद 'सुमन' कवि संमेलन में कविता-पाठ के लिए मंच पर आते थे, तब छात्रों में एक लहर-सी दौड़ जाती थी और तालियों की गड़गड़ाहट के बीच सुमन का कवितापाठ चलता था। 'वंस मोर' की ध्वनि से पंडाल गूँज जाता था। पंडित गोकुलचंद्रशर्मा 'सुमन' भैया के बड़े प्रशंसक थे और उन्हें प्रोत्साहित करते रहते थे। उन दिनों (१९३७–३८ ई०) में इंटर कक्षाओं में हिंदी के कोर्स में मैथिलीशरण गुप्त की 'पंचवटी' पढ़ाई जाती थी। पं० गोकुलचंद्रशर्मा 'पंचवटी' पढ़ाते थे। वे प्रायः कविता अंशों की सूक्ष्म और गहरी समीक्षात्मक व्याख्या किया करते थे पढ़ाते समय। कोई छात्र शब्दार्थ पूछता था, तो कोश देखने की बात कह देते थे। वे कहा करते थे कि "मैं काव्यात्मा के दर्शन कराता हूँ। शब्द का कोशीय अर्थ तुम कोशों से मालूम किया करो।" ऐसी स्थिति में कक्षा के हिंदी छात्र सुमन भैया से ही पंचवटी के कुछ छंदों का अर्थ समझा करते थे। भैया सुमन के हिंदी ज्ञान के प्रति सभी सहपाठियों में श्रद्धा और विश्वास था। वे छोटे गोकुलचंद्रशर्मा पुकारे जाते थे।

भैया 'सुमन' का एक स्वरूप हमारे घर में और भी रहा है। वह कथा कीर्तनकार का था। वे तुलसी के मानस की कथा भी कहते थे। मेरी अंमा प्रतिमास भैया सुमन से सत्यनारायण की कथा भी सुना करती थीं। कीर्तन में भैया सुमन की स्वर लहरी का मिठास सबको आकर्षित करता था। कीर्तन के बाद कभी-कभी हम लोग उनकी कविताएँ भी सुना करते थे। उनकी कई कविताएँ मुझे कंठाग्र हो गयी थीं। हास्य, वीर, करुण और शृंगार रस उनकी कविताओं के प्रधान रस थे। 'बचपन' शीर्षक कविता की कुछ पंक्तियाँ तो मुझे अब भी याद हैं—

"तुम्हारा धूल धूसरित गात्र, सुभग सुंदर दाँतों का रंग।
बात में तुतलाने की टेव, बिना कारण के हास-प्रसंग॥
धूल में पले मधुर जीवन, अरे भोले-भाले बचपन।
छलों से दूर महान मगन, अरे प्यारे अल्हड़ बचपन॥"

इंटर परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद मैं इलाहाबाद विश्वविद्यालय में पढ़ने चला गया और भैया सुमन अपने जीवन का अपना मार्ग खोजने में लग गये। फिर बहुत दिनों बाद पता लगा कि वह एम० ए०, पी-एच० डी० और डी० लिट्० हो गये हैं। मैं ट्रांसपोर्ट विभाग में नौकरी करता था। इलाहाबाद और आगरा भी रहा। तब फिर भैया सुमन से मुलाकातें होने लगीं। सन् १९५१ के बाद सिलसिला शुरू हुआ और होता रहा।

एक बार बंधुवर डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' इलाहाबाद आये मेरे घर। आते ही घर में चौल हो गयी। खंभे हँसने लगे, आँगन नाचने लगा। अंमा ने भैया को गोद से चिपटा लिया और कहा, "भैया अंबे ! तू अब कहा हैगो ऐ ? जयप्रकास कइ रयौ ओ, कै अंमा, भैया सुमन अब बड़े विद्वानन मैं है गयौ ऐ।"

भैया सुमन अंमा से बोले, "अंमा ! बकत्वै जयप्रकास। तेरौ अंबे बुई अंबे है, जब तोइ सत्यनारायन की कथा सुनावतो और कीर्तन करतो।"

दूसरे दिन हम दोनों श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी के आश्रम झूसी में गये। पहले दिन त्रिवेणी स्नान के समय हम दोनों श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी महाराज के दर्शन कर चुके थे। तब मैंने अपने गुरुवर श्री ब्रह्मचारी जी महाराज को प्यारे मित्र सुमन का परिचय दिया था और कहा था कि मेरे लँगोटिया मित्र 'सुमन' 'रामचरितमानस' में बड़ी रुचि रखते हैं। ब्रह्मचारी जी महाराज ने मानस कथा के लिए तुरंत निमंत्रण दे दिया। उसी आदेश का पालन करने हम दोनों दूसरे दिन झूसी पहुँचे थे। वहाँ झूसी आश्रम में भैया का कथा-प्रवचन हुआ। राजा जनक की पुष्पवाटिका का प्रसंग चला था। उस कथा-प्रवचन में राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन जी भी पधारे थे। उन दिनों श्री टंडन जी गंगा-तट-वास झूसी में ही किया करते थे।

भैया सुमन के सद्य: प्रकाशित ग्रंथ 'संस्कृति, साहित्य और भाषा' में मेरे नाम भी एक पत्र है। उस पत्र को पढ़कर मुझे उनके साथ बिताये हुए संपूर्ण विद्यार्थी-जीवन की याद ताजा हो जाती है। भगवान् से प्रार्थना है कि वे भैया सुमन को दीर्घायु करें। वे मेरे चिरस्मरणीय एवं अविस्मरणीय मित्र हैं। उनकी मित्रता मेरी स्मृति की चिरसंगिनी है और भविष्य में रहेगी। अंमा उनके लिए आशीर्वाद लिखा रही हैं।

—डिप्टी ट्रांसपोर्ट कमिश्नर
(सेवानिवृत्त)
२१–स्टेशन रोड, लखनऊ
(उ० प्र०)

मानवता और विद्वत्ता का मणिकांचन योग

—डा० भोलानाथ तिवारी

डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' का स्मरण करते ही आंखों के सामने एक ऐसे व्यक्ति का बिंब उभर आता है, जो पढ़ने-लिखने की साकार प्रतिमा है तथा भाषा और साहित्य का विश्लेषण जिसके जीवन का जैसे एकमात्र उद्देश्य है। उनके पास बैठ जाइए, उनके मुंह पर कोई दूसरा विषय आएगा ही नहीं, और न उनके पास बैठकर भाषा और साहित्य के अतिरिक्त आपकी ही किसी अन्य विषय पर बात करने की हिम्मत पड़ेगी।

डा० 'सुमन' बहुत ही ईमानदार लेखक हैं। उनका कुछ भी आप पढ़िए, आप उनसे सहमत हों या न हों, किंतु यह आप बार-बार अनुभव करेंगे कि लेखक जो कुछ भी कह रहा है, जो भी लिख रहा है, पूरी निष्ठा के साथ। वस्तुतः आज लेखक तो बहुत मिलेंगे किंतु यह ईमानदारी, यह निष्ठा बिरले लोगों में मिलेगी।

मुझे इस अवसर पर किसी का एक शेर याद आ रहा है—

आदमियत और शै है,
इल्म है कुछ और चीज।
कितना तोते को पढ़ाया,
पर वो हैवाँ ही रहा।

सचमुच मानवता और विद्वत्ता एक नहीं है। इसीलिए कुछ लोगों में मानवता तो होती है पर विद्वत्ता नहीं, कुछ लोगों में विद्वत्ता होती है, किंतु मानवता नहीं। सुमन जी उन अपवादों में हैं, जिनमें मानवता और विद्वत्ता का मणिकांचन योग मिलता है।

मैं डा० सुमन के सुदीर्घ जीवन की कामना करता हूँ।

—ई ४/२३, माडल टाऊन
दिल्ली—९

एक विशुद्ध विद्याप्रेमी

—डा० रमेशचंद्र महरोत्रा

डा० 'सुमन' मेरी दृष्टि में क्या हैं ?—सीधे-सीधे 'आदरणीय' हैं। वे हिंदी भाषा के सेवी हैं—हिंदी के मानक रूप के भी तथा हिंदी की बोलियों के भी। हिंदी सेवियों के दो वर्ग हैं, और दोनों वर्गों के दो-दो उपवर्ग हैं। प्रथम वर्ग के अनुसार एक तो संस्कृत की धारा वाले व्यक्ति हैं, और दूसरे, आधुनिक धारा वाले व्यक्ति हैं। इस प्रकार, द्वितीय वर्ग के अनुसार पहले भाषाविज्ञान-समाज से प्राथमिकता पाने वाले व्यक्ति हैं, और दूसरे हिंदीभाषा-समाज में अवगाहन करने वाले व्यक्ति हैं। 'सुमन' जी प्रमुखतः प्रथम वर्ग के पहले और द्वितीय वर्ग के दूसरे उपवर्ग को सुशोभित करते हैं।

'सुमन' जी को अपनी लेखनी की साधना का फल उन सभी दृष्टियों से प्राप्त हुआ है, जिस की एक आत्म-संतोषी लेखक को लालसा हुआ करती है। प्रतिष्ठा, मान्यता और पारितोषिक सभी से वे अलंकृत और विभूषित हुए हैं। उनकी 'कृषक-जीवन संबंधी ब्रजभाषा शब्दावली' बीसियों शोध-छात्रों का मार्ग-दर्शन करती चली आ रही है और किसी भी परवर्ती कार्य से अभी तक नहीं पिछड़ी है। उनकी कृति 'हिंदी और उसकी उपभाषाओं का स्वरूप' हिंदी की बोलियों के अध्येताओं में और उनकी पुस्तक 'भाषाविज्ञान : सिद्धांत और प्रयोग' भाषाविज्ञान के शिक्षार्थियों में समान रूप से समादृत हैं। उनके रामचरित मानस से संबंधित प्रकाशनों ने गोस्वामी तुलसीदास जी के कितने ही पृष्ठों की सील को तोड़ा है।

एक विशुद्ध विद्या-प्रेमी 'अर्थ' और 'राजनीति' को महत्व नहीं दिया करता, जिसके कारण उसे इन दोनों क्षेत्रों में हानि भी उठानी पड़ती है। ऐसी हानि की 'सुमन' जी ने कभी चिंता नहीं की, अन्यथा उनकी कर्मठता तथा 'प्रसूतियों' में विचलन आ जाता। उनके पत्रों में प्रायः पढ़ाई-लिखाई की ही बातें मिलेंगी, रोटी-दाल का भाव नहीं। उनके साढ़े पाँच सौ पृष्ठों के 'संस्कृति, साहित्य और भाषा' (१९७९) नामक ग्रंथ से मेरी 'सुमन' जी के प्रति उपर्युक्त धारणा का प्रत्येक कोण प्रमाणित होता है।

—भाषाविज्ञान-विभाग
रविशंकर विश्वविद्यालय
रायपुर (म० प्र०)

डा० अंबाप्रसाद सुमन : मेरी दृष्टि में

—श्री हरिश्चन्द्र

सुमन शेखूपुरी। जी हाँ। आज से लगभग चालीस वर्ष पूर्व ये स्वनामधन्य भाषाशास्त्री इसी नाम से एक नवोदित कवि के रूप में उभरे थे। एक शेखूपुर बदायूँ जिले में है जिससे होकर कार्तिक पूर्णिमा पर गंगा-स्नानार्थियों के काफिले ककोड़ा पहुंचने के लिए गुजरते थे। पड़ाव-स्थल के रूप में उसकी प्रसिद्धि थी। परंतु जिस शेखूपुर की धरती पर यह फूल खिला वह अलीगढ़ जनपद का ग्राम है। उसी अलीगढ़ का जिसके विषय में पं० बनारसीदास चतुर्वेदी को कभी लिखना पड़ा, "ऐसा प्रतीत होता है कि अलीगढ़ अपने साहित्य सेवियों की कीर्ति-रक्षा में बहुत पिछड़ा हुआ है। स्वर्गीय महाकवि नाथूराम शंकर शर्मा के स्मारक के लिए अलीगढ़ वालों ने क्या किया और सत्यनारायण कविरत्न के लिए जिनका जन्म अलीगढ़ में ही हुआ था। बंधुवर हरिशंकर जी के लिए भी वे लोग कुछ भी नहीं कर रहे हैं?" आश्चर्य की बात है कि ये अलीगढ़ी अनेक वर्षों तक बाहर रहकर फिर उसी कृतघ्न नगरी में आकर बस गये हैं। उद्भव-स्थली से बेहद प्यार है। क्यों न हो? "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।"

बसंत ऋतु में जब दिवा-रात्रिमान समान होता है, आज से चौंसठ वर्ष पूर्व २१ मार्च १९१६ को इस सहृदय साधक का आविर्भाव, पराशर शुक्ल यजुर्वेदीय गौड़ ब्राह्मण परिवार में हुआ। सनातन संस्कार उत्तराधिकार में मिले। उन्हीं के अनुरूप शिक्षा-दीक्षा हुई। फिर परंपरागत मूल्यों और आगम-निगम-आधारित संस्कृति के प्रति उपेक्षा का भाव कैसे उत्पन्न हो सकता हैं? नयी पद्धति से अध्ययन का सुयोग विलंब ने आया। इतनी देर से कि जब इंटरमीडिएट किया तब आयु बाईस साल की हो चुकी थी। किन्तु वाह री लग्न! जब एक बार मन में ठान ली तब साहित्य की सर्वोच्च उपाधि प्राप्त करके ही संतोष की साँस ली। बाधाओं की प्रकृति है अवाहूत पधारना, और कर्मवीरों का स्वभाव होता है उनसे विचलित न होकर संकल्पित अनुष्ठान की पूर्ति में तल्लीन रहना। सफलता के लिए भगवद्-कृपा और गुरुजनों के आशीर्वाद की जो आवश्यकता होती है वह ऐसे अध्यवसायियों के समीप स्वयं चलकर आ जाती है।

अपने व्यक्तित्व के निर्माण में अंबाप्रसाद जी ने पं० जीवनदत्त जी ब्रह्मचारी, पं० गोकुलचंद्र जी शर्मा, डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल, डा० हरवंशलाल जी शर्मा और डा० नगेंद्र जी के योगदान का बारंबार श्रद्धापूर्वक स्मरण किया है। वैसे उन पर डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल का प्रभाव सर्वाधिक द्योतित होता है।

डा० अंबाप्रसाद ने लंबी अवधि तक अध्यापन-कार्य किया और एक शिक्षण

संस्था में न रहकर, कई विद्यापीठों में जाकर। शिक्षक धर्म का निर्वाह उन्होंने व्यावसायिक दृष्टि से न करके मिशनरी जील के साथ किया। उन्होंने अपने शिष्यों के बहुमुखी विकास की ओर ध्यान दिया और उन्हें मानबीय गुणों से सुसंपंन करने का उद्योग किया। आज भी वे उनकी हित-चिंता में डूबे रहते हैं। इस अध्यापकीय मनोवृत्ति से उनका सारा रचना-संसार प्रभावित है। वे मात्र कहते नहीं, समझाकर कहते हैं, और तब तक कहते रहते हैं जब तक उन्हें विश्वास नहीं हो जाता कि सामाजिक के दिमाग में उनकी कही बात अच्छी तरह बैठ गयी।

व्यक्तित्व का आभास कृतित्व में मिलता है और कृतित्व के अनुशीलन से व्यक्तित्व की जानकारी की जा सकती है। किसी के द्वारा लिखे गए पत्र उसके व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों को उजाकर करने का सामर्थ्य रखते हैं। अभी हाल में अंबाप्रसाद जी के चुने हुए पत्रों का संकलन 'संस्कृति, साहित्य और भाषा' के नाम से प्रकाशित हुआ है। वैसे तो उन्होंने लगभग एक दर्जन उच्च कोटि के ग्रंथ और ढाई सौ से अधिक लेख लिखे हैं लेकिन अकेले उक्त पुस्तक के आद्योपांत पारायण से पता चल जाता है कि वे क्या हैं और उनकी सेवाएँ क्या रही हैं।

ज्ञानी होना बहुत मुश्किल नहीं है पर संवेदनशील बनना एक दुर्लभ कार्य है। अंबाप्रसाद जी में सहृदयता, संवेदनशीलता, सामाजिकता कूट-कूट कर भरी हुई हैं। उनके मित्रों ने विश्वासघात किया पर उन्हें इसका मलाल नहीं, अफसोस नहीं। वे उसे एक अनुभूति, नियति का वरदान मानकर स्वीकार करते हैं। अच्छे तार्किक होकर भी उन्हें भक्ति का मार्ग पसंद है क्योंकि समग्र दृष्टि डालने पर उन्हें वही कल्याण-पथ नजर आता है। किसी धर्म, जाति, वर्ग से वे विद्वेष नहीं रखते परंतु अपनी संस्कृति में उनकी परम निष्ठा है। वे सर्वज्ञ होने का दावा नहीं करते। जैन धर्म के स्यादवाद के अनुयायी से दीखते हैं। नये विचारों को ग्रहण करने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं।

जनपदीय बोलियों के शब्दों के संकलन और उनके अर्थ ढूँढ़ने में अंबाप्रसाद जी ने अथक परिश्रम किया है। वे हिंदी-सेवी हैं और जिसने सच्चे हृदय से हिंदी की सेवा करने का व्रत लिया है उसे ग्रामीण अंचलों में बिखरी शब्द-धरोहर को समेट कर अपनी भाषा को समृद्ध करने की स्वाभाविक लालसा होगी। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल इस यज्ञ के पुरोधा थे। उनके परमप्रिय शिष्य होने के नाते डा० अंबाप्रसाद का उनके पद-चिह्नों पर चलना निश्चय ही एक आदर्श परंपरा का सूत्रपात है।

हिंदी की साहित्य-बाटिका फूलों की घाटी की भाँति है, जिसमें विविध रंग, रूप और गंध के पुष्प सदैव खिलते रहे हैं। कुछ तो मात्र सुमन के नाम से ही विख्यात हो गए हैं यथा रामनाथ, शिवमंगलसिंह, क्षेमचंद्र और हमारे अंबाप्रसाद। भगवान हिंदी-वाङ्मय को हमेशा सुमनसुवासित रक्खे।

—निदेशक

उत्तरप्रदेश हिंदी-संस्थान, लखनऊ।

जैसे वे मेरे हृदय-पटल पर हैं

—डा० मलखान सिंह सिसौदिया

बात लगभग बीस बरस पहले की है।

एक प्रातः दैनिक 'नवभारत टाइम्स' में हिंदी-कविता पर एक वैदुष्यपूर्ण लेख मेरी नजर से गुजरा। उसमें कतिपय आधुनिक हिंदी-कवियों के काव्य का समीक्षात्मक विवेचन था। मैं लेखक के विषय-विश्लेषण और काव्य-मर्म की पहचान से अत्यंत प्रभावित हुआ। यद्यपि लेखक का नाम मेरे लिए सुपरिचित था; किंतु लेख पढ़ने के बाद मेरे मन में उससे व्यक्तिगत संपर्क की लालसा प्रबल हो उठी, लेकिन इसका अवसर बरसों बाद तब मिल सका, जब मैं एक बार आकाशवाणी मथुरा के आमंत्रण पर प्रसारण के लिए अपनी कविताओं का रिकार्डिंग कराने गया हुआ था और लौटते समय बाबू वृंदावन दास जी के निवास पर उनसे भेंट करने के लिए पहुँचा। बाबू जी की सुसज्जित बैठक में बैठे और उनसे बात करते हुए कुछ ही क्षण बीते होंगे कि मैंने स्नान के बाद फैलायी गयी धोती सूखने पर हाथ में सँभाले एक चश्माधारी वैदुष्यपूर्ण मुखाकृति वाले स्वस्थ शरीर प्रौढ़वय व्यक्ति को आँगन में बैठक से प्रवेश करते देखा। वह खद्दर के निहायत अनौपचारिक वस्त्रों में था और ऐसा लगता था कि वहाँ पहले से ठहरा हुआ था। बाबू जी ने जैसे ही उससे मेरा परिचय कराया कि मेरी उत्सुकता उसके प्रति संमान में बदल गयी और प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा। वे व्यक्ति थे प्रख्यात भाषा-शास्त्री और प्रसिद्ध विद्वान् डा० अंबाप्रसाद 'सुमन'।

फिर तो उनसे कुछ क्षणों के वार्तालाप में जैसे आत्मीयता का निर्झर अजस झरने लगा हो। उनसे हिंदी भाषा और साहित्य एवं साहित्कारों पर बात-चीत में मैंने पाया कि उनका चिंतन और अध्ययन गहन तथा उनके विचार बड़े प्रखर और स्पष्ट थे। वह अपनी बात बिना किसी लाग-लपेट के बड़ी सशक्त और तर्क-पूर्ण शैली में प्रतिपादित करते थे। कुल मिलाकर उनकी स्पष्टवादिता, प्रखरता और विद्वत्ता की मेरे मन पर एक अमिट छाप पड़ी। चूंकि मुझे उसी दिन एटा लौटना था, इसलिए थोड़ी देर बाद उनसे विदा लेकर और आगे पत्र-संपर्क रखने का वायदा कर मैं वहाँ से चल दिया।

इस भेंट के कई मास बाद मद्रास के डा० इंद्रराज वैद 'अधीर' का कविता-संकलन एक पत्र के साथ मुझे डाक से मिला। पत्र में डा० अधीर ने लिखा था कि, "डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' के निर्देश पर पुस्तक मुझे भेजी गयी थी।" मेरे लिए यह एक सुखद आश्चर्य था, और श्रद्धेय बनारसीदास जी के शब्दों में, "'सुमन' जी का यह कार्य 'साहित्यिक सगाई' कराने जैसा था।" कुछ समय बाद गाँव इनायतपुर

अझेड़ा, जिला अलीगढ़ के एक कवि 'एकलव्य' जी अपने महाकाव्य 'गोरा बादल' की आंडुलिपि 'सुमन' जी के परामर्श से मुझे दिखलाने और मेरी संमति लेने के लिए एटा पधारे। यद्यपि नेत्रों में मोतियाबिंद के कारण मैं उनका महाकाव्य नहीं पढ़ सका, किन्तु साहित्यकारों में व्यापक आधार पर परस्पर संपर्क बनाने वाले 'सुमन' जी के व्यक्तित्व का यह पक्ष एक बार फिर मेरे मन को छू गया। मैं सोचने लगा कि 'सुमन' जी साहित्य-सेवियों के पुष्पों को संपर्क के धागे से साहित्य की माला में अधिकाधिक संख्या में पिरोने में भी पटु हैं। वह अपने तक ही सीमित न रहकर साहित्यकारों के विशाल समुदाय को पारस्परिकता में बाँध कर सह-जीवन की ऊष्मा से प्राणवान् रखते है।

इन सुयोगों के बाद समय बीतता गया। लंबे अंतराल के बाद एक दिन मुझे 'सुमन' जी का पत्र मिला, जिसमें उन्होंने हिंदी मासिक 'धर्म-मार्ग' (जम्मू-कश्मीर) में प्रकाशित मेरी कविता **"ओ ज्योति-देश"** के अंतिम चरण में प्रयुक्त एक शब्द के परिवर्तन के लिए सुझाव दिया था। मैंने उस पर विचार कर उसे स्वीकार कर लिया और 'सुमन' जी को धन्यवाद-पत्र लिख दिया। मैं सोचता रहा कि अपने संपर्क में आने वाले कवियों-लेखकों की रचनाएँ ध्यान से पढ़कर उनके विषय में अपनी प्रतिक्रिया लिखने और रचनात्मक सुझाव देने का कष्ट कितने आलोचक उठाते हैं। हिन्दी-सेवियों में यह कमी बहुत खलती है और निश्चय ही इससे सत्साहित्य का सर्जन कमोवेश प्रभावित तो होता ही है। हाँ, 'सुमन' जी के समान ही श्रद्धेय बनारसीदास जी चतुर्वेदी और बाबू वृंदावन दास जी में यह गुण पाया जाता है। मेरे विचार में अच्छे साहित्य लेखन के लिए लेखकों, कवियों और आलोचकों के बीच पारस्परिक संवाद की यह स्थिति आज की परिस्थिति में अत्यंत आवश्यक है।

ये तो 'सुमन' जी के साहित्यिक संबंधों के कुछ संस्मरण हुए। वैयक्तिक संबंधों में वे इससे भी दो पग आगे हैं। मेरे विचार में विद्वान् और अच्छा साहित्यकार होने के साथ-साथ अच्छा आदमी होना भी आवश्यक है। 'सुमन' जी इस कसौटी पर भी खरे उतरते हैं। मेरे छोटे बेटे संजीव को अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के विज्ञान-संकाय में प्रवेश लेना था और छात्रावास में स्थान के लिए भी प्रयास करना था। मैंने डा० 'सुमन' जी के लिए पत्र देकर उनसे मिलने के लिए उसे निर्देशित कर दिया। लौट कर उसने मुझे बताया कि किस प्रकार 'सुमन' जी ने घर पर उसके साथ अत्यन्त स्नेहपूर्ण व्यवहार किया और प्रवेश में भी यथा-शक्ति सहायता की। ऐसे ही जब मेरे पुत्र के द्वारा उन्हें मेरी आँखों में मोतियाबिंद की बात ज्ञात हुई, तो नेत्र चिकित्सालय अलीगढ़ में मेरे ठहरने की व्यवस्था के संबंध में उन्होंने संबद्ध व्यक्तियों और वहाँ के विभिन वार्डों के विषय में मुझे विस्तार से लिखा। यही नहीं, शल्य-चिकित्सा के दौरान वह दो बार मुझे देखने के लिए पधारे और मेरे परिवारी जनों को तीमारदारी के बारे में निर्देश दिये। यद्यपि उन्होंने अनेक बार अलीगढ़ आने और अपने निवास पर ठहरने के लिए मुझे आमंत्रित किया है, किन्तु मेरी

व्यस्तता और अस्वस्थता उनके सामीप्य-लाभ में बाधक रही है। मेरी शल्य-चिकित्सा से पहले उन्होंने अपने निवास पर मेरे लिए एक कवि-गोष्ठी भी आयोजित करनी चाही थी, पर तब मेरी मनःस्थिति उसके अनुकूल नहीं थी। उनसे जो अपनापन मुझे मिला है, वह मेरे लिए सदा को सँजोकर रखने की वस्तु है।

वर्तमान हिन्दी साहित्य साहित्योद्यान में तीन 'सुमन' महमहा रहे हैं—डा० शिवमंगलसिंह 'सुमन', श्री क्षेमचंद्र 'सुमन' और डा० अंबाप्रसाद 'सुमन'। तीनों सुमनों का अपना-अपना विशिष्ट रंग है, अपनी-अपनी विशिष्ट गंध है और अपना-अपना विशिष्ट क्षेत्र है। तीनों ही हिन्दी-साहित्य के समर्पित साधक हैं, तीनों से ही मुझे अपनापन मिला है। इन 'अपनेपनों' का भी अपना-अपना अनूठापन है, जिनका सुख-माधुर्य शब्दों की अभिव्यक्ति से परे केवल अनुभव करने की वस्तु है। किन्तु डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' से मिला हुआ अपनापन इन अनूठेपनों में भी अनूठा है।

—प्राचार्य, अनिवाशी सहाय इण्टर कालिज,
कल्पनापुरी, एटा (उ० प्र०)।

सच्चे अनुसंधाता

—डा० विश्वनाथ शुक्ल

बंधुवर सुमन जी मुझसे १२ वर्ष बड़े हैं। मैंने सदैव उन्हें अग्रज का संमान दिया है। अनेक कवि संमेलनों में मैं उनके साथ गया हूँ और उन्होंने मुझ जैसे अकवि को भी वहाँ मंच पर जमाया है। हम लोग अब वर्षों से अलीगढ़ विश्वविद्यालय में हिंदी-विभाग में सहयोगी हैं।

सुमन जी से जब भी मिलना हुआ है, स्मितपूर्ण भाषण से कुशल-प्रश्न के उपरान्त हम लोग किसी न किसी सारस्वत चर्चा में निमग्न हो गये हैं। या तो हम लोग किसी तथ्य की मूल उत्स तक पहुँचने में प्रयत्नशील हुए हैं या किसी शब्द की व्युत्पत्ति तक पूरे मन से एकाग्र हो गये हैं और जब तक उस तथ्य की वास्तविकता और शब्द के इतिहास एवं अवयव संस्थान का संतोषजनक ज्ञान नहीं हो गया है, तब तक उसका आवेश (उन्माद की सीमा तक) बना रहा है। किसी सत्य का दर्शन हो जाने पर जो परम निबृत्ति की आभा एक सच्चे जिज्ञासु के चेहरे पर आ जाती है, उसकी झलक मैंने अनेक बार की सारस्वत चर्चा परिचर्चाओं पें बंधुवर सुमन जी के मुख पर देखी है। उस आभा का विकिरण फिर मैंने उनके उन्मुक्त हास (अट्टाहस तक) में देखा है। मैंने अनेक बार अनुभव किया है कि शायद ऐसे स्फीत और निर्व्याज हास्य-निर्झर आगे देखने-सुनने को नहीं मिलेंगे।

सुमन जी की शोध-दृष्टि-सम्पुष्ट-जिज्ञासा की एक घटना सुनाना चाहूँगा। बीसेक वर्ष पूर्व सुमन जी हिंदी-विभाग अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की शोध-पत्रिका 'अभिनव भारती' १९५८ के संपादक-मंडल में थे। पत्रिका की सामग्री का संकलन, निरीक्षण-परीक्षण वे ही करते रहे थे।

मैंने अपनी संगीत-रुचि और कृष्ण-भक्ति-काव्य के अध्ययन को ध्यान में रखते हुए 'अभिनव-भारती' में एक लेख दिया था, "वंश, वंशी, मुरली, वेणु और वेणु माधुर्य"। उन दिनों मेरे शोध का केंद्र-बिंदु पुराण मूर्धन्य श्रीमद् भागवत् था। मैंने लक्ष्य किया था कि श्रीमद् भागवत् में कहीं भी 'वंशी' और 'मुरली' शब्द नहीं आया है। मेरे लेख में यह वक्तव्य पढ़कर सुमन जी के कान खड़े हो गये। मुझसे तो उन्होंने कुछ नहीं कहा, घर जाकर श्रीमद् भागवत पर चिपट पड़े। श्रीमद् भागवत १२ स्कन्धों में विभक्त १८,००० श्लोकों का महाग्रंथ है। आप स्वयं अनुमान करें कि उसमें 'वंशी' और 'मुरली' शब्द की उपस्थिति या अनुपस्थिति के तथ्य का पता लगाने में सुमन जी ने कितना मनोयोग और समय दिया होगा। पूरी

खोज और छानबीन के बाद मेरे कमरे में आये, मुझे हृदय से लगाया और बोले, "हाँ भाई विश्वनाथ लेख में तुम्हारा वक्तव्य सत्य है। श्रीमद् भागवत् में कहीं भी 'वंशी' और 'मुरली' शब्द नहीं आया। मैं तुम्हारी प्रामाणिकता पर बधाई देता हूँ। आज मेरे ज्ञान में वृद्धि हुई।" 'बलादपि सुभाषितं ग्राह्यम्' की महत्ता को आज हमारे कितने साहित्यिक स्वीकार करते हैं। किंतु सुमन जी की यह सारस्वत जिज्ञासा और ईमानदारी निश्चय ही अनुकरणीय है।

—रीडर, अलीगढ़ मु० विश्वविद्यालय
अलीगढ़
श्रीवत्स ३/४५ भारतीनगर
मैरिस रोड़, अलीगढ़।

हिंदी को समर्पित व्यक्तित्व

—डा० भगवान सहाय पचौरी

शब्द वस्तुओं, क्रियाओं, कामकाज, घटनाओं, व्यक्तियों को यहाँ तक सभी कुछ को कितना बदलकर रख देते हैं, सारस्वत साधना के भुक्तभोगी इसे भली-भाँति जानते हैं। सटीक शब्दों की तलाश में सिद्ध लेखकों को भी पसीना आ जाया करता है। एक-एक शब्द के लिए कभी जूझना पड़ता है। अर्नेस्ट हैमिग्वे जैसे चोटी के कथाकार को "फेयरवैल टू आर्म्स" के अंतिम पृष्ठ को 29वीं बार लिखना पड़ा था और इस उपन्यास का शीर्षक उन्तीस शीर्षकों में से एक था। शब्दों की सारस्वत तपस्या में डा० "सुमन" ने अपना पूरा जीवन जिया है, जिया क्या है समर्पित किया है और हिंदी-जगत् को बहुमूल्य देन प्रदान की है। वे आचार्य पं० किशोरीदास वाजपेयी की शब्दानुशासनी जीवट के सटीक उत्तराधिकारी हैं। आचार्य वाजपेयी की दुर्दम्य जिजीविषा का मूल्यांकन करना जितना कठिन है, उतना ही दुरुह डा० 'सुमन' की अध्ययन की व्यापकता, शब्दानुसंधानी गरिमापूत तपश्चर्या का लेखा-जोखा है। शब्दों के भ्रांत प्रयोगों पर सदैव तनी रहने वाली उनकी प्रत्यंचा से भाषा विज्ञान के पैने बाण निरंतर बरसते रहते हैं। विशेषता यह है कि यह मार मधुर शैली में होती है। पर मार तो अंततः मार ही है। सन् 1962 के मार्च की बात है, अध्यक्ष जिला परिषद्, मथुरा श्री चकलेश्वर सिंह साहित्यिक सुरुचि संपन्न हैं। उन्होंने छाता में एक अच्छा कवि संमेलन कराया था। मेरे कंधों पर संयोजन का भार था। डा० सुमन को मैंने कवि-संमेलन में पधार कर अपनी रचनाओं का पाठ करने को आमंत्रित किया। "रचना" शब्द से पूर्व न जाने किस झोंक में मैंने 'रसवंतिनी' विशेषण लगा दिया था। डा० सुमन ने पत्र पाते ही मुझे 'रसवंतिनी' के अशुद्ध प्रयोग पर एक पत्र लिख डाला। आमंत्रण स्वीकार नहीं हुआ। तभी से वे मेरे भाषा गुरु बन गये। सुयोग अच्छा ही रहा हिंदी-साहित्य में राष्ट्रीय चेतना की प्रमुख धारा के यशस्वी कवि पं० गोकुलचंद्रशर्मा मेरे साहित्यिक गुरु थे, उनके शिष्य डा० सुमन मेरे भाषा-गुरु बने। हिंदी-साहित्य के अप्रतिम दिग्गज डा० नगेंद्र भी पं० गोकुलचंद्र शर्मा के शिष्य रहे थे। इस बात की अधिक लोगों को जानकारी नहीं है। स्व० शर्मा जी की शिष्य परंपरा में डा० सुमन का नाम राष्ट्रीय स्तर पर गर्व के साथ लिया जाता है। कारयित्री सर्जना के क्षेत्र में डा० सुमन का नाम अकेला चमकता है। अर्नेस्ट हैमिग्वे की मान्यता है कि लेखन में व्यक्ति जितना आगे जाएगा, वह अकेला पड़ जाएगा। डा० सुमन भी इसके अपवाद नहीं। इतने विशाल हिंदी-क्षेत्र में संभवतः अपना उदाहरण वे आप ही हैं। अपना शैक्षिक निर्माण उन्होंने स्वयमेव किया है और साहित्यिक क्षेत्र में भाषाकार विभूतियों में उन्होंने अपना

शीर्षस्थ स्थान स्वयं निर्माण किया है। किसी बैसाखी या जैक की अपेक्षा उन्हें कभी नहीं हुई। वस्तुतः सार्त्र की मान्यतानुसार प्रतिभा एक ऋण है जो अपार कष्टसाध्य साधना, अध्यवसाय और तपश्चर्या में खपकर खोकर चुकाया जाता है। डा० सुमन अपनी कुशाग्र प्रतिभा के ऋण को सूफी संत सुलभ ज्ञानाग्नि में तपकर चुका रहे हैं।

एक शैक्षिक खेल होता है "रैले रेस"। इसमें एक खिलाड़ी डंडा लेकर दौड़ता है और एक दूरी पर खड़े दूसरे साथी को थमाता है, दूसरा तीसरे को, और तीसरा चौथे को और इस प्रकार गंतव्य पर डंडा पहुँचता है। यह डंडा जीवन में एक "मिशन" का प्रतीक है, जो एक हाथ से दूसरे हाथ होता हुआ डा० सुमन के हाथों आया है और यह संभवतः उनको स्व० डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने थमाया था। डा० सुमन उसे श्री रामचंद्र वर्मा और आचार्य वाजपेयी की परम्परा में लेकर भरपूर दौड़ते रहे हैं, दौड़ रहे हैं। अभी उनको कदाचित थकान नहीं व्याप रही। विश्वविद्यालयीय सेवा में रहकर उन्होंने अपने "मिशन" को देश के चारों ओर छोर तक फैलाया है उनके शिष्यों की संख्या की कम नहीं है। किन्तु देखना है इस डंडे को अब कौन संकल्पवान् पकड़ता है। विश्वास है यह दौड़ आगे भी जारी रहेगी और प्रज्ञा की यह मशाल हिंदी में निरंतर प्रज्वलित रहेगी 'यावच्चन्द्रदिवाकरौ'।

डा० सुमन वास्तव में सुमन हैं। उनके प्रौढ़ परिपक्व व्यक्तित्व में वैयाकरण भाषाविद् के भीतर एक भावुक सुमन समासीन है। इससे उनका बौद्धिक संतुलन बना हुआ है। निरंतर संघर्षों से जूझते-जूझते कई बार बौद्धिकता खंड-खंड होती देखी गयी है, परन्तु डा० सुमन का जुझारु बौद्धिक संदेह निष्काम्य और अखंड रूप से विवेक और धैर्य की पटरियों-पगदंडियों पर सक्रिय रहा है। मस्तिष्क और हृदय के साथ-साथ संतुलन रखता हुआ। कुछ नयाकर गुजरने की उद्दाम कामना की लौ उनके सारस्वत मन में सदैव जलतो रही है और हर्ष है वे निरंतर हिंदी जगत को शिवसाहित्य देते रहे हैं। "मानस" का भाषा तत्व और "भाषा रहस्य" इसके साक्षी हैं। उनका अध्ययन-क्षेत्र व्यापक रहा है। वैदिक साहित्य से लेकर अद्यतन साहित्य का उन्होंने तारग्राही गहन अध्ययन किया है। इसके सार्वभौम उदात्त उद्धरण उनके मुखाग्र पर रहते हैं। बौद्धिक विमर्शन और प्रवचनों में प्रतिपाद्य को सुग्राह्य बनाने की दिशा में यह गहन अध्ययन उनको एक सफल व्याख्याता बनाता है। कहना न होगा कि डा० सुमन साहित्य के एक सिद्ध प्राध्यापक तो हैं ही, उनकी वक्तृत्व-कला शीर्षस्थ कोटि की है। अध्यात्म और संस्कृति के क्षेत्र में स्वामी अखंडानंद सरस्वती के प्रवचन सामान्य श्रोता भी सराहते हैं और चोटी के विद्वान् भी। आचार्य रजनीश कितने ही विवादास्पद माने जाते हों, किंतु जिन महानुभावों ने अष्टावक्र की महा गीता, श्रीमद्भगवतगीता, भगवान महावीर, भगवान बुद्ध, कबीर, सहजोबाई तथा अन्यान्य दर्शनों पर उनके टेपरिकार्ड सुने हैं, वे मानते हैं आचार्य रजनीश वर्तमान समय के सर्वोत्कृष्ट व्याख्याता हैं। मैं अतिरंजना नहीं कर रहा यह कहने में कि डा० सुमन भी अपने विषय के साथ उसी कोटि का न्याय करते देखे गये हैं। उनकी यह

कला विश्वविद्यालय विश्रुत है। साहित्यिक और सांस्कृतिक सभाओं में जिस सहज आत्मविश्वास और पांडित्य के साथ वे जमते हैं, वैसे व्याख्याता प्रवचनकर्त्ता हिंदी-जगत् में उँगलियों पर गिने जाने योग्य हैं। यह प्रकाश-स्तम्भ डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के नाम का है। उनको शत शत नमन।

डा० सुमन का रहन-सहन और स्वभाव सूफियाना है। एक सतत मुसकान उनके होठों की अभिन्न मित्र है। विनोद उनका चिर सहचर है। क्लांत मानसिकता से वे कोसों दूर हैं। वे दूसरे होते हैं, जो थोपी हुई गम्भीरता के उत्तरीय को ग्रीवा-भार बनाये हुए यत्र-तत्र-सर्वत्र संमान हार डलवाने को ग्रीवा लंबायमान किये रहते हैं।

कोई ईर्ष्यालु विद्वान् डा० सुमन के शब्द-निष्पत्ति-ज्ञान की परीक्षा लेने को जब प्रश्न करता है, तो डा० सुमन को उसका मंतव्य जानने में विलंब नहीं होता वे प्रश्नगत शब्द की निष्पत्ति ऐसी शैली में करते हैं कि भाषा की बँधी गाठें एक-एक कर खुलती जाती हैं। साथ ही प्रश्नकर्त्ता के कुंठित मन की सुमन को हिंदी-जगत् की कृतघ्नता के प्रति कोई शिकायत करते नहीं देखा गया। इसे वे स्वभावगत निर्बलता मानते हैं। क्योंकि जिनकी पूँजी सारस्वत साधना है, वे इस विषय को हेय समझते हैं। कौन क्या कर रहा है, इसकी चिंता क्यों की जाय ? आप गंतव्य की ओर बढ़ते जाइये, लोग पीछे रह जाएँगे।

डा० सुमन से अभी और भी अपेक्षाएँ हैं।

—जिला विद्यालय निरीक्षक, गाजीपुर
(उ० प्र०)

एक तल्लीन साधक

—डा० बी० एल० उपाध्याय

डा० सुमन से मेरा परिचय उस समय से है जब से उनका सारस्वत जीवन एक कली के रूप में अविकसित था। किन्तु जिस प्रकार कली अपने भावी कुसुम जीवन के समस्त अंकुर छिपाए रहती है, उसी प्रकार २५, २६ वर्ष की अवस्था में भी उनके भावी प्रख्यात अद्वितीय साहित्यकार के समस्त चिह्न विद्यमान थे, किंतु सहकारी वस्त्रनिर्माता समितियों के पर्यवेक्षक रूप में उन्हें परिलक्षित करना प्रत्येक का कार्य नहीं था। यह सन् १९४२ की बात है मैं गवर्नमैंट हाईस्कूल नजीबाबाद में एक अध्यापक था और वहीं सुमनजी सहकारी वस्त्र-निर्माण समिति के पर्यवेक्षक थे। प्रथम मिलन से ही हम दोनों एक दूसरे से घुलमिल गये। मुझे उनका सहज आनंद-मय स्वरूप, कली के समान सदा मुस्कराते रहना एवं माधुर्य के साथ मधुर कंठ अत्यंत विलक्षण लगता था, जिसके प्रति आकर्षित होना स्वाभाविक था। श्रीकृष्ण और उद्धव के रूप में हम दोनों का मित्र-जीवन प्रारम्भ हो गया।

आइए उनके मित्र जीवन की एक झाँकी लें। दिन के उत्तर-मध्याह्न काल की छाया की भाँति उन्होंने इस जीवन को सदा अपने स्नेह से सिंचित करके बढ़ाया है। जीवन के जिस क्षण मुझे उनकी आवश्यकता पड़ी वह सदैव उसकी पूर्ति के लिए उद्यत मिले। विशिष्टता यह थी कि दिखावा बिल्कुल नहीं, प्रत्युपकार की भावना से रहित एवं प्रत्येक प्रकार का उत्सर्ग करने को तत्पर थे। वर्षों हम लोगों का मिलन हुआ, किंतु जब हुआ तो उसमें कालगत कोई परिवर्तन नहीं था। प्रकृतियों में इतना साम्य है कि तथाकथित ढोंगी पंडित दुश्चरित्र विद्वानों से दोनों को सहज घृणा है। इसी साम्य के कारण रात बातें ही करते बीत जाती है और सोने का नाम ही नहीं लेते।

मैंने उनके सारस्वत जीवन की भी झांकी ली है, उसको भी प्रस्तुत किए बिना नही रह सकता। सरस्वती की उपासना में अहर्निश इतने लने रहते हैं कि अपने तन-मन की सुध भी भूल जाते हैं। मैंने कई बार उन्हें समझाया कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का मूल स्वास्थ्य है। किन्तु हाँ-हाँ कह देने पर भी सरस्वती की आराधना में अपने प्राणों की आहुति देते देखा। मुझे उनके प्राणों से मोह था, किंतु उन्हें नहीं। इसी कारण रोग से जरा-सी मुक्ति मिली फिर अहर्निश रिसर्चस्कालरों में व्यस्त हो जाते थे। और उनसे समय मिलने पर साहित्य-सेवा में डूब जाते थे।

फलतः बड़ी घनघोर बीमारी का सामना करना पड़ता था, किंतु सुमन साहब आज भी जैसे के तैसे ही हैं। सारस्वत-यज्ञ के लिए सदा तत्पर रहते है। रिसर्च स्कालर दाढ़ी बीडिका न्याय से निरंतर चले आते है और सुमन जी उनके मार्ग को सदैव प्रशस्त करते रहते है। साहित्य-सेवा ही उनका जीवन हैं। इस जीवन को सार्थक करने में अपने गुरु के समान अद्वितीय सफलता मिली है। यदि सहायता दी है तो केवल उनकी धर्मपरायण पत्नी ने, जो सदा उनके स्वास्थ्य को संजोए रखती हैं।

—डी ८६ विवेक विहार,
दिल्ली

एक चिर साधक

डा० दर्शन सिंह

हिंदी संसार के सभी साहित्य-सेवी और प्रेमी डा० अंबाप्रसाद जी 'सुमन' से परिचित हैं। 'सुमन' जी सब के सहृदय हैं और सभी उनके सुमण्डल के सदस्य हैं। वे सदस्य धन्य हैं, जो सीधे उनकी संगति और सम्पर्क में हैं। उन्हें दुहरा लाभ है; वे सुमन जी को सुनते भी हैं और पढ़ते भी। मैंने अभी तक सुमन जी को पढ़ा ही है, सुना नहीं। वैसे मेरी उनकी 'प्रीत पुरानी' है; सन् उन्नीस सौ सड़सठ की—कोई पिछले तेरह वर्ष की। मैं उन दिनों 'हिंदी-पंजाबी अर्थ-विज्ञान' विषय पर रिसर्च कर रहा था। मेरी स्थिति भी सामान्य शोध-छात्रों की सी थी। अँधियारे पथ आलोकित हों, इस प्रयास में था। इसी प्रयोजन-वश कई प्रकाशित-अप्रकाशित थीसिस देख चुका था। एक दिन इसी प्रक्रिया में डा० सुमन जी की लोहू-पसीने की कमाई 'कृषक-जीवन-सम्बन्धी ब्रजभाषा शब्दावली' ग्रन्थ हाथ लग गया। ग्रन्थ के दोनों भागों को पूरे मनोयोग से पढ़ गया। प्रतिक्रिया हुई—'यह' भी थीसिस है और 'वे' भी हैं। बस, शोध-स्तर सम्बन्धी धारणा, न केवल स्पष्ट ही हुई, अपितु पुष्ट भी हो गई। इसे कहते हैं—'रिसर्च'। कोरे पी-एच० डी० धारी बनने से क्या लाभ। लोक के न परलोक के। आत्मबल नाम को नहीं। आत्मबल की प्राप्ति तपोबल से। हाँ, कठोर तप से—वाङ्मय तप से। इस तप के लिए चाहिए—शुद्ध, सहज और सु-मन। डा० सुमन ऐसे तप के फलस्वरूप ही तो निखरे-चमके हैं। उनका एक अपना 'स्तर' है—परिश्रम का, और प्राप्ति का। उनका यह 'सुमन-स्तर' सैकड़ों को प्रेरित करता चला आ रहा है। मुझे भी प्रेरणा मिली—परिश्रम ही परमेश्वर है। तब से शब्द-पारखी सुमन जी के सभी उपलब्ध ग्रन्थों निबन्धों का मनन-गुनन चलता रहा। इनके प्रति मेरी आस्था बढ़ती रही। इनकी ज्ञान-गहराई और सुलझाने-समझाने की शैली ने मुझे भी इनकी 'शिष्य-मित्र-मंडली' में भर्ती कर लिया।

गत कुछ वर्षों से डा० सुमन मुझे अपने अधिक समीप ले आए हैं। संयोग-वशात् हमारे बीच खूब पत्र-व्यवहार हुआ है। मैंने इस अवसर का पूरा लाभ उठाया है। पत्र व्यावहारिक हो, अथवा निजी, उनमें उनकी सहृदयता समाविष्ट होती है। आत्मीयता में आप्लावित पत्र को पढ़कर कुछ संबल-सहारे की-सी अनुभूति होती है। बुद्धि ससीम होती है और हृदय असीम। हृदय की विशालता में सबका समागम।

इसीलिए सुमन जी का सबके प्रति स्नेह है और सबका उनके प्रति श्रद्धा-भाव। मित्रों के वे हितचिंतक और शिष्यों के उत्कर्षाकांक्षी। मित्रों के लिए मंगलकामनाएँ और शिष्यों के लिए आशीर्वचन। उनकी आशीर्वादात्मक वाणी से सब को सबल मिलता है। वस्तुतः सुमन जी को सु मन मिला है, फलतः वे मेल-मिलाप के गुण से मंडित हैं। उनका संसार 'सहृदयता' का संसार है। सहृदयता उनकी शक्ति है, जिससे सब 'सुमन' की ओर खिंचे चले जाते हैं।

डा० सुमन एक सुधी लेखक हैं। विविध विषयक विस्तृत एवं गंभीर अध्ययन के फलस्वरूप वे उच्च अध्यापक और वरिष्ठ व्याख्याता हैं। उनकी दृष्टि में 'स्वाध्याय' एक तप है। स्वाध्यायी गहरे अध्ययन द्वारा ज्ञान-गरिमा को प्राप्त होता है। पल्लवग्राहिता से नहीं; मूल रस से मन मुदित होता है। सुमन जी मूल-रस के रसिया हैं। ध्वनि से प्रकरण तक उनका ध्यान ऐसा लगता-जमता है कि वे वाणीकार के अन्तर्मन तक का साक्षात्कार कर लेते हैं। इसीलिए वे कहने-लिखने में स्पष्ट हैं; उनकी समझाव-बुझाव-शैली इसका प्रमाण है। वस्तुतः जो समझेगा नहीं, वह समझाएगा क्या। उलझाना बहुत जानते हैं, मगर सुलझाना कोई-कोई। लेखक वह है जिसे पढ़ते समय गुत्थियाँ सुलझती चली जाएँ और परतें खुलती चली जाएँ। किसी पुस्तक की कोई पंक्ति-प्रकरण उठा लें, कैसे सुमन जी पाठक को, शब्द क्या, ध्वनि की आत्मा तक पहुँचा देते हैं। संकल्पनाओं का स्वरूप ऐसा स्पष्ट करते हैं कि पाठक के मस्तिष्क में पच्चीकारी हो जाती है। मैं तो उन विद्यार्थी-जिज्ञासुओं को सौभाग्यशाली मानता हूँ, जिन्होंने बराबर कक्षा में बैठकर सुमन जी से पढ़ा है अथवा उनके पास बैठकर सही ज्ञान प्राप्त किया है।

ज्ञान की गति बड़ी धीमी होती है। कोई एक दिन में ज्ञानवान् नहीं बन जाता; एतदर्थ चिर साधना अपेक्षित होती है। कोरा ज्ञान भी व्यक्ति को अभिमानी बना देता है। विनम्रता संग 'ज्ञान' ही 'विद्वत्ता' की संज्ञा से विभूषित होता है। ऐसी विद्वत्ता के दर्शन सहृदय सुमन जी में होते हैं। उनकी यह उपलब्धि उनकी सतत सारस्वत साधना का फल है। वे अपने पाठकों के लिए पढ़ते हैं और उनके पाठक उनकी पुस्तकों और पातियों में अपनी शंकाओं का समाधान पाते हैं। सुमन जी तो काव्यशास्त्र के व्यावहारिक पंडित हैं। काव्य शास्त्र को उन्होंने भोगा है; उन्होंने आत्मसात् किया है। उनके द्वारा प्रस्तुत पुस्तक व्याख्याओं को पढ़कर पाठक को काव्यांगों का सटीक ज्ञान हो जाता है। ऐसा ज्ञान, जो केवल काव्यशास्त्र के ग्रन्थों के अध्ययन से दुर्लभ होता है।

प्रायः यह कहा जाता है कि भाषाशास्त्र एक नीरस और कठिन विषय है। वस्तुतः यह विषय के प्रस्तुतीकरण पर निर्भर करता है। सुमन जी ने अपने भाषा और भाषाशास्त्र सम्बन्धी रचित ग्रंथों में बड़ी सरस एवं सुगम शैली में पाठकों को विषय हृदयंगम करा दिया है। वास्तव में यह हो भी इसीलिए पाया है कि उनका भाषा के पठन-पाठन के प्रति दृष्टिकोण व्यावहारिक है। उनका भाषा-अध्ययन

साहित्य-मर्म को समझने के लिए है। उनकी दृष्टि भाषा और साहित्य को अलग-अलग देखने की नहीं है। वे प्यूरिटन्स-शुद्धतावादी भाषा शास्त्रियों की तरह कोरे ध्वनि-अक्षर के फार्मूलों में नहीं फँसते। सुमन जी की भाषा-चर्चा अथवा भाषा-भाषण जो भी है, वह सब साहित्य का आनन्द मानने में सहायक है।

यह निर्विवाद सत्य है कि साहित्य के व्याख्याता के लिए भाषा-शास्त्र और काव्य-शास्त्र का व्यावहारिक ज्ञान अत्यावश्यक है। साहित्य-व्याख्या के लिए शब्द से अर्थ तक पहुँचना होता है। शब्द-स्थिति समझने-समझाने में भाषा-ज्ञान काम आता है। रूप-अर्थ में हुए विकास की जानकारी तो भाषा-शास्त्र ही कराता है। इस तरह भाषा-परत खुलने के बाद ही काव्यशास्त्र प्रवेश करता है। जो व्यक्ति भाषा-शास्त्र एवं काव्य-शास्त्र—दोनों में पारंगत होगा, वही साहित्य का पारखी और व्याख्याता कहलाने का सच्चा अधिकारी होगा। वीणापाणि के वरदान स्वरूप डा० अंबाप्रसाद जी 'सुमन' इन दोनों शास्त्रों में पारंगत हैं, अतः वे साहित्य के सही पारखी और सच्चे व्याख्याता हैं।

—हिंदी-विभाग
राजकीय महाविद्यालय
होशियारपुर (पंजाब)

मेरे पिताजी के प्रिय शिष्य और मेरे भाई साहब

—श्री अनिलकुमार त्रिगुणायत

गुरु-शिष्य-संबंधों में देखते-देखते जो क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं उन्हें देखकर यह विश्वास करना भी कठिन है कि कल तक शिष्य गुरू पूर्णिमा पर प्रति वर्ष गुरु जी के चरणों का आशीर्वाद प्राप्त करने उनके घर जाते थे, मस्तक पर तिलक लगाते थे और मिष्ठान इत्यादि भेंट करते थे। अपने अनेक शिष्यों में से मेरे पूज्य पिताजी पं० गोकुलचंद्र शर्मा सर्वाधिक अधीरता से गुरु पूर्णिमा पर डा० सुमन की प्रतीक्षा करते थे। पिताजी से आशीर्वाद प्राप्त कर हम सबके साथ बहुत देर तक मनोरंजक बातें होती रहती थीं। आज पूज्य पिताजी को नागरी अंक 22 वर्ष हो चुके हैं दिवंगत हुए, लेकिन सब कुछ मेरे मन में ऐसे घूम रहा है जैसे कल की बात हो। भाई साहब हमारे घर के सदस्य की भाँति प्रायः आते रहते थे और उनकी बातों से कभी मन नहीं भरता था।

पूज्य पिताजी से उनके संबंध इतने मधुर थे कि यदि व्यस्त होने के कारण वह अधिक दिनों तक नहीं मिलते थे तो किसी को भेजकर उन्हें बुलवा लिया करते थे। एक बार भाई साहब बहुत बीमार हो गए। पेचिस ने उन्हें बहुत तंग किया। यहाँ तक कि उनकी इच्छा शक्ति भी उनका साथ छोड़ने लगी। पूज्य पिताजी ने उन्हें बुलाकर घण्टों तक समझाया। कई प्रकार के उपचार बताये। उनके मन में से भय न निकला। भाभीजी ने बताया कि उन दिनों किसी की बात वह सुनना भी पसंद नहीं करते थे और जीवन से एकदम निराश हो चुके थे। किन्तु, अपने गुरुजी की बात गिरह में बाँध ली। आज भगवान की कृपा से मुझे उनके अभिनंदन का यह अवसर प्राप्त हो रहा है।

भाई साहब के स्वभाव में मृदुता और ठहाकों का सुन्दर सामंजस्य उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। पूज्य पिताजी से हम लोग बहुत डरते थे, क्योंकि वह कठोर अनुशासन में रखते थे। भाईसाहब भी उनसे बहुत डरते थे। यह जितना उनसे डरते थे, उतना ही प्यार और आदर भी करते थे। इसीलिये हम सबसे बातचीत के समय केन्द्र बिंदु पिताजी ही रहते थे। उन्हीं की बातों से पिताजी के प्रति हम लोगों के मन में अपार श्रद्धा जागृत हुई। अन्यथा, केवल डरने से श्रद्धा उत्पन्न होने का प्रश्न ही नहीं था। संभवतः गुरु का भी यह स्वार्थ होता है कि उनका शिष्य उनके यश को फैलाए। इसलिये भाईसाहब उनके शिष्यों में सर्वोपरि रहे।

पूज्य पिताजी के जीवन-काल में तो बहुत से लोग घर पर जाते रहते थे और कुछ लोगों से पारिवारिक संबंध भी थे। किंतु परम श्रद्धेय सुमन जी उनके बाद भी उसी प्रकार हमारे निकट बने रहे। इसीलिये तो वह मेरे भाई साहब हैं। मेरे सभी बड़े भाई बाहर थे। केवल मैं ही अलीगढ़ में पढ़ रहा था। भाई साहब नियम से आकर देख लेते थे कि सब कुशल हैं। मैं भी पूर्ववत् उनके घर जाकर सब बातचीत करता रहता था। मेरी सबसे छोटी भतीजी मुझे बाग वाला चाचाजी कहा करती थी, क्योंकि हमारे घर पर एक छोटा सा बगीचा भी है।

मैं अपनी इंजीनियरिंग की पढ़ाई में अधिक व्यस्त हो गया और भाई साहब ब्रज भूमि के गांव-गांव जाकर ब्रज भाषा के शब्दों की खोज में डूब गये। उनसे मिलना कम हो गया किंतु मिलने का क्रम जारी रहा। अब जब भी मिलें तो ब्रज भाषा के नए-नए शब्दों की जानकारी और उनके उदगम की दिलचस्प खोज पर बातें होतीं। सर्दी का मौसम हुआ तो मदार दरवाजे पर जट्टारी वालों की दुकान की गजक और रेवड़ी भाईसाहब जरूर खिलाते थे।

अलीगढ़ की जनकपुरी में भाई साहब ने घर बनाने के लिये जमीन ले ली। मुझसे कहा कि नक्शा तैयार करो। मैं तो इंजीनियरी पढ़ ही रहा था। झटपट एक नक्शा बना दिया। लेकिन भाई साहब पर तो उस समय अमर ग्रंथ की रचना का भूत सवार था। अभी तक उस नक्शे का क्या हुआ मुझे स्वयं पता नहीं। इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि भौतिक सुख की अपेक्षा आध्यात्मिक सुख कितना बड़ा होता है। भाई साहब ने मकान तो नहीं बनाया लेकिन आज वह सभी प्रकार से संपन्न हैं। यह उनकी सच्ची लगन और भगवान की कृपा है।

भाई साहब के आशीर्वाद से मैं इंजीनियर होकर अलीगढ़ से बाहर चला गया। उनसे पत्र व्यवहार चलता रहा। जब भी अलीगढ़ जाना हुआ तो उनके दर्शन किये बिना वहाँ का जाना अधूरा ही रहता। नागरी अंक में जून के महीने में मेरी बारात अलीगढ़ से बरेली गई, तो पूरे रास्ते भाई साहब ने जो स्वस्थ मनोरंजन किया वह अविस्मरणीय है। रास्ते में कछला के घाट पर गंगा-स्नान की व्यवस्था थी। भाई साहब के साथ सभी बारातियों ने बहुत आनन्द लिया। उनका निर्मल स्वभाव और मेरे प्रति जो प्रेप है, वह मेरे जीवन की अमूल्य निधि है। मैं भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि भाई साहब वर्षों तक स्वस्थ रहकर अपने ज्ञान की गंगा बहाते रहें। यह हिंदी जगत के जगमगाते सितारें हैं। मातृ-भाषा की सेवा के लिये उन्होंने अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया है। अपने महान् ओजस्वी भाई साहब के चरणों में मेरा शत्-शत् प्रणाम।

—अधिशासी अभियंता
सिंचाई विभाग, मुजफ्फरनगर (उ० प्र०)

मेरे शोधनिर्देशक

—डा० रामरजपाल द्विवेदी

गौरवर्ण, उन्नत ललाट, मंझोला एवं सुगठित वपु-सुनहरी फ्रेम के चश्मे के भीतर से चमकते सस्मित नयन, सूर्य के उत्तरायन होने पर सुपरफाइन धोती पर रेशमी कुर्त्ता, दक्षिणायन होने पर कोट-पेंट—यह है डा० सुमन जी का बाह्य रूप जिसके भीतर कहीं दुबका हुआ मन अहर्निश धनी-अधनी, हृष्ट-पुष्ट, लूले-लंगड़े, छूत-अछूत—प्रत्येक प्रकार के शब्दों की जन्मकुंडली गढ़ता रहता है।

बात सन् १९६० की है। साक्षात् परिचय न होने पर भी आपकी ख्याति से तो परिचित था ही अतः शोध करने के उद्देश्य से मैंने पत्र लिख दिया। आज की भाँति, उन दिनों भी पत्रोत्तर आप तुरंत देते थे। बुलावा मिला। बात विषय-चयन की आयी। मैं भक्तिकाल अथवा छायावाद से संबंधित किसी विषय पर बल दे रहा था, आप, स्वभावतः, भाषा से संबंधित विषय पर। लगा अभी से हम छत्तीस हुए। आपने समझाया, "देखो मैं भी काव्य का शौकीन हूँ, कविता भी रचता था किंतु शोध ब्रजभाषा पर किया। बड़ा सरस विषय है भाषाविज्ञान।" 'सरस' शब्द पर मुझे बहुत हंसी आयी। मैं आपका प्रारम्भिक शोधार्थी ही था अतः मनुहार की, "डाक्टर साहब। आपको अभी ज्ञान नहीं, भाषाविज्ञान कितना बकवास है।" बिना झल्लाहट के ही बोले, अरे तुम क्या जानो अभी।" और वे उत्तर प्रदेश का बड़ा-सा मानचित्र ले आये।

—कहाँ के रहने वाले हो ? —चित्र की मोड़ खोलते हुए मुस्कराये।

—एटा से ढाई मील पूर्व, चाँदपुर गाँव का। —मैंने कहा।

—उधर 'छोटा' को कैसे बोलते हैं ?

—छोटो। और एटा से एक मील पश्चिम में ही छोटौ।

—कुछ अंतर हुआ ? —आप बोले। तब तक मानचित्र की मोड़ खुल चुकी थी।

—कुछ नहीं —मैंने कहा।

—वाह ! 'छोटो' और 'छोटौ' कोई अंतर ही नहीं ?

—यह क्या अंतर है ? —मैंने सहज भाव से कहा।

—कैसे नहीं ? —आप बोले —छोट्टा, छोटा, छोटौ, छोटो, छोट—यह हिन्दी की विकास यात्रा है। 'छोटौ', ब्रजभाषा का, 'छोटो' कन्नौजी का। यह अंतर

ही नहीं ? ग्रियर्सन भी यही कहता था कि 'ब्रजभाषा और कनउजी में कोई अंतर नहीं।' बाद में सभी हिंदी वाले भी यह कहते आये हैं। लो विषय मिल गया।—नक्शा खोलते हुए एक स्थल पर उँगली रखते हुए बोले—'एटा जिले की अलीगंज तहसील की बोलियों का रूपात्मक अध्ययन।' इसमें तुम्हें ग्रियर्सन की स्थापना असिद्ध करनी है कि 'ब्रज और कन्नौजी में कोई अंतर नहीं।' आप आश्वस्त होकर बोले।

ग्रियर्सन की बात ! —मेरा मन अजीब-सा हो गया। संस्कार बोल उठे—ग्रियर्सन की स्थापना को असिद्ध करना है ? और मुझे ? पर चारा क्या था ? डाक्टर साहब का कथन जारी था —बहुत अच्छा विषय है। देखो छोटा है अतः गहनता आएगी। यों मैं पूरा जिला दे देता पर इससे वह बात नहीं आती। मूड बनाओ और सारस्वत साधना में लग जाओ। एक-आध सप्ताह बाद आना, विषय की रूपरेखा बनाकर विश्वविद्यालय भेज देंखे। जल्दी ही मीटिंग होने वाली है। डा० मुंशीराम शर्मा कंवीनर हैं। और देखो एक और लाभ है, वह फिर बताएंगे।

मैं 'हाँ' कहकर वापस आ गया पर मन अनेक प्रश्नों से भर गया। छोटा—छोटा—छोटा···ग्रियर्सन की स्थापना असिद्ध करनी है···विषय छोटा है अतः गहनता आएगी।···अनेक से विमर्श किया। एक भाषाविज्ञानी बोले—यह विषय ही स्वीकृत नहीं होगा, इतना छोटा।

जब मैं हाईस्कूल में था तब मेरे पिताजी डा० मुंशीराम शर्मा के विषय में बताया करते थे कि उन्हें हाईस्कूल में पूरी डिक्शनरी याद थी। (तब मैंने भी रटना शुरू किया था।) मैंने आचार्य जी को तुरंत पत्र लिखा। सौम्यमूर्ति का उल्लास से भरा उत्तर आया—'ईश्वर की कृपा से सब ठीक होगा। कार्य आरम्भ कर दीजिए।' भाषाविज्ञान के एक सत्र में डा० विश्वनाथ प्रसाद जी से विषय के बारे में चर्चा हुई। बोले—विषय बहुत अच्छा है और जब डा० सुमन ने सुझाया है तो इस विषय में और कुछ सोचना ही क्या ?

यानी तय हो गया कि मैं चाहूँ, न चाहूँ, विषय तो स्वीकृत होना ही है। कोई विकल्प न देख भाषाविज्ञान की ही मनः स्थिति बनाने लगा। ग्रियर्सन, गुरु, तिवारी, वाजपेयी, वर्मा, सक्सेना, दास, पाई, सान्याल, केलाग, ब्लूमफील्ड, वेन्द्रिए, गुणे, सपीर, स्वीट, चाटुर्ज्या, बाहरी, ब्लांख एण्ड ट्रेगर, नाइडा—न जाने कितनी पुस्तकें उलटी-पलटी पर मन ही न लगे। फिर डाक्टर साहब के समीप गया और अपनी अक्षमता व्यक्त की।' ऐसा ही लगता है। धीरे-धीरे सब ठीक हो जायेगा।' आपका यही उत्तर होता। यह कहकर आप शब्दों की चर्चा कर निकलते। सामान्य से लगने वाले शब्दों के पुरखों के बारे में बताते। मैं शंकाएँ रखता तो किताबों से हटकर उदाहरण देते। हिंदी में भाषाविज्ञान विषयक पुस्तकों की सबसे बड़ी न्यूनता गतानुगतिकता है। पचास साल पहले यदि डा० श्यामसुदंरदास न्गोतानी, लिख गये तो आज तक की सभी पुस्तकों में वही उदाहरण है। ज्यों-का-त्यों। यह मुझें बहुत

अजीब लगता। डाक्टर साहब बहुत स्नेहपूर्वक समझाते और आसपास के उदाहरण देते। यह मुझे बहुत अच्छा लगता और सबसे बड़ी बात यह कि आप प्रतिक्षण शब्द चिंतन करते मिलते—खाते समय, नहाते समय, टहलते समय, पत्रोत्तर देते समय भी। 'देखो इसे हलंत मत करो, इसे हलंत करो, इसे मिलाकर लिखो, इस शब्द का प्रयोग मत करो…।' इससे मुझे बड़ी प्रेरणा मिलती और धीरे-धीरे मेरी भी इधर रुचि हो गयी। प्रत्येक औक्तिक शब्द ध्यान खींचने लगा। अभिन्न सखा कल्याणसिंह (जनता-शासन के उत्तर प्रदेश के विख्यात स्वास्थ्यमंत्री) के हर वाक्य को जब मैं टोकता तो अपनी चिर मुस्कान के साथ कहते—'अभी यह हाल है, पी-एच० डी० करने के बाद क्या करोगे। मैं कहता—'मेरे डाक्टर साहब मेरे हर पत्र में इतनी अशुद्धियाँ बताते हैं कि मैंने पत्र लिखना बन्द कर दिया है। मैं—तुम्हारा बोलना बन्द कर दूँगा। देखना तो सही।' किसी का बोलना तो बंद नहीं कर पाया किंतु डाक्टर साहब की असीम अनुकम्पा से किसी की भी भाषा-विषयक अशुद्धि मन को सालती रहती है। इंगित नहीं कर पाता किंतु मन की स्लेट पर लिख तो लेता ही हूँ। अस्तु—

फिर जितने दिन मैंने शोध किया, डाक्टर साहब से सहज निर्देश पाता रहा। एक-एक बात दस-दस बार पूछी, अनखताने का नाम नहीं। मुझे सर्वाधिक आपकी स्वच्छ एवं अनाविल दृष्टि ने प्रभावित किया। भाषाविज्ञान का एक-एक नुक्ता आपको हस्तामलकवत् है। आपके समझाने की विधि पारम्परिक विधि से सदैव हटकर रही। हर बात आपने पैरेडिग्म बना-बनाकर समझायी। भाषाविज्ञान की पुस्तकों में हिंदी के ध्वनिग्राम पवर्ग से ही प्रारम्भ होते हैं। क्यों ?—इसे कोई नहीं बताता। आपने ही बताया। रूबरू ही नहीं, जब कभी कोई भी गाँठ दूर से भी बतायी, आपने सुलझायी। (यह गुण आज भी ज्यों-का-त्यों है।) तर्क के निकष पर कसे बिना आप आगे नहीं बढ़ने देते। वर्तनी की अशुद्धियाँ आपको बेहद खलती थीं। पढ़े-लिखों को भी छंदशास्त्र, मनोकामना, सृजन, जागृतावस्था, प्रायश्चित्, उपरोक्त, अंतर्साक्ष्य लिखता देख वे कसमसा उठते। आपको अफसोस होता कि हम यह भी नहीं जानते कि गयी-गई, दिखाई-दिखायी, पायी-पाई, नयी-नई में से कब कौनसा लिखें। तब हमें भी अपने हिंदी-ज्ञान पर बहुत तरस आता।

और इस प्रकार डा० सुमनजी की अहैतुकी अनुकम्पा से हमारी शोधयात्रा सकुशल सम्पन्न हुई। शोधकर्त्ता से भी अधिक श्रम करने वाले डा० सुमन जी-से शोधनिर्देशक आज कितने हैं ?

२६८ के, रामनगर
गाजियाबाद।

मेरे शोध-परीक्षक

—डा० तेजपाल सिंह

डा० अम्बा प्रसाद सुमन उन इने-गिने व्यक्तियों में से हैं जिनके संक्षिप्त से साक्षात्कार ने मुझे बेहद प्रभावित किया है। उनके साथ मेरा अल्पकालीन वार्तालाप मेरे जीवन का एक अमूल्य, सुखद एवं प्रेरणास्पद अनुभव है।

डा० सुमन से मेरा प्रथम परिचय उनकी कृतियों के माध्यम से हुआ। हिंदी व्याकरण और भाषा विज्ञान के क्षेत्र में विचारों की जैसी स्पष्टता सुमन जी में विद्यमान है, वह वस्तुतः एक विरल एवं स्पृहणीय वस्तु है। जटिल से जटिल विषय को सरल से सरल शब्दों में कह देना उनकी शैली की वह अन्यतम विशेषता है; जिसने मुझे उनकी कृतियों की ओर विशेष आकृष्ट किया। खड़ी बोली का व्याकरणिक अध्ययन करते समय जब उनके ग्रंथों को पढ़ने-समझने का अवसर मिला तो मैंने महसूस किया कि भाषा की प्रकृति को स्पष्ट करने में वैयाकरण की शैली कितनी महत्वपूर्ण हो सकती है। डा० सुमन स्पष्ट चिंतन के धनी हैं। संस्कृत भाषा और साहित्य के अध्येता होने के कारण संस्कृत वैयाकरणों से उन्हें व्याकरणानुकूल वैज्ञानिक दृष्टि विरासत में मिली है। अतः वे जिस विषय का प्रतिपादन करना चाहते हैं, बड़ी सहजता से कर जाते हैं।

संयोगवश मुझे केवल एक बार डा० सुमन जी को पास से जानने और उनके साथ हिंदी व्याकरण के कई विवादग्रस्त प्रश्नों पर चर्चा करने का अवसर मिला। डा० भोलानाथ तिवारी तथा डा० अंबाप्रसाद सुमन मेरे पी-एच० डी० के परीक्षक थे। शोध प्रबन्ध पढ़ने के बाद सुमन जी ने आठ पृष्ठों की एक विस्तृत रिपोर्ट लिख भेजी थी जिसमें खड़ी बोली व्याकरण के कुछ नियमों और प्रयोगों को लेकर सात शंकाएं उठायी गयी थीं। मुझे जब उस रिपोर्ट की प्रति मिली तो मैं वस्तुतः गदगद हो उठा। प्रबंध का परीक्षण अत्यंत सूक्ष्मता से किया गया था और शंकाओं के उल्लेख के साथ-साथ प्रबंध की स्तरीयता की भूरि-भूरि प्रशंसा भी की गयी थी। इससे मुझे बड़ा बल मिला। शंकाओं के निरसन का अवसर देने के लिये मौखिकी परीक्षा दिल्ली में डा० भोलानाथ तिवारी के निवास स्थान पर रखी गयी थी।

आखिर वह प्रतीक्षित दिन आ पहुँचा। मैं अपने गुरुवर डा० शंकर पुणताम्बेकर जी के साथ जब डा० तिवारी जी के बंगले पर पहुँचा तो दोनों विद्वान् हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। मैं भाषा विज्ञान के दो दिग्गजों के बीच खड़ा था और इस अहसास ने मेरी मनःस्थिति को निश्चय ही प्रभावित किया था, किंतु यह

अनुभूति बहुत देर तक नहीं रही। सुमन जी के व्यक्तित्व ने सहज हो जाने में मेरी बड़ी सहायता की। विद्वानों की सी पारम्परिक वेशभूषा। चेहरे पर पांडित्य की आभा, वाणी में ममत्वमयी कोमलता, आँखों में वात्सल्य की तरलता सब कुछ अपूर्व और अद्भुत था।...और इसके बाद मैंने सुमन जी का वह रूप देखा, जिसका अनुमान मैं उनकी कृतियों से, विशेष रूप से उनकी रिपोर्ट से, लगा चुका था।

हिंदी में कर्मवाच्य का स्वरूप, उद्देश्य और विधेय की परम्परागत परिकल्पना, संयुक्त और मिश्रित वाक्य विषयक भ्रान्ति आदि अनेक विषयों पर उनसे चर्चा हुई। अध्ययनशीलता, तर्क पद्धति और उपस्थापन-पटुता के साथ दूसरे की मान्यताओं को धैर्यपूर्वक सुनने और उसकी सत्यता को उन्मुक्त हृदय से स्वीकार करने की निरभिमानिता से मैं प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। मुझे आश्चर्य हुआ कि डा० सुमन खड़ीबोली के जनपदीय व्याकरण का भी उतना ही सूक्ष्म ज्ञान रखते हैं जितना परिनिष्ठित खड़ीबोली के व्याकरण का। लगभग एक घंटे की चर्चा में मैंने उनसे बहुत कुछ सीखा।

मौखिकी समाप्त होने के बाद सुमन जी पुनः पारिवारिक मूड में आ गये। अनेक विषयों पर बातें हुईं। हर बात में वही आत्मीयता, वही अपनापन। मुझे लगा इस व्यक्ति में विद्वत्ता और मानवता का कैसा सहज समन्वय है।

मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ और उनके निरामय दीर्घायुष्य की कामना करता हूँ।

५६, रामदास कालोनी
जिलापेठ
जलगांव (महाराष्ट्र)

तस्मै श्रीं गुरवे नमः

—श्री वेद प्रकाश

डा० अंबाप्रसाद जी 'सुमन' से मेरा प्रथम परिचय सन् १९९० में हुआ था, जब मैंने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में एम० ए० (हिंदी) कक्षा में प्रवेश लिया था। डा० सुमन जी वहाँ भाषा-विज्ञान और ब्रज भाषा-काव्य पढ़ाते थे। अध्यापकों में वे सर्वाधिक लोकप्रिय और संमानित थे।

प्रारंभ में हम सभी छात्र भाषा-विज्ञान को एक बड़ा ही शुष्क तथा नीरस विषय समझते थे, परंतु जब डा० सुमन जी ने हमें पढ़ाना आरंभ किया तो इस विषय में हमारी रुचि बढ़ गई। डाक्टर साहब के पढ़ाने का कुछ ढंग भी ऐसा था कि वे छात्रों का मन विषय की ओर सहज ही आकृष्ट कर लेते थे। वे भाषा-विज्ञान जैसे शुष्क और नीरस विषय को इतनी सरसता, तन्मयता एवं सुबोध शैली से पढ़ाते थे कि छात्रों को उनकी कक्षा में बहुत आनंद आता था। कठिन से कठिन तथा गूढ़ से गूढ़ विषय को भी अत्यंत सरल तथा रोचक शैली में इस प्रकार समझा देना कि वह विषय छात्रों को एकदम हस्तामलकवत् हो जाय, उनके अध्यापन की यह सबसे बड़ी विशेषता थी। साथ ही, ऊपर से कुछ गंभीर दिखाई देने वाले डा० सुमन जी की प्रवृत्ति बड़ी हास्य-बिनोद-प्रिय थी। वे अध्यापन के समय विषय से संबद्ध कुछ ऐसे रोचक प्रश्न ले आते थे कि उनकी बातें सुनकर सारे छात्र खिलखिलाकर हँस पड़ते थे। उम समय पूरी क्लास में हँसी का वातावरण गूंज उठता था। इस तरह डाक्टर साहब की शिक्षण-शैली कथा के अंदर के विषय के विवेचन में गंभीरता, सरसता और विनोदशीलता को साथ लेकर आगे बढ़ती थी। घंटा कब समाप्त हुआ—इसका पता ही न चलता था।

मैंने सन् १९६२ में एम० ए० (हिंदी) की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली थी, लेकिन मेरा डाक्टर साहब से तब तक परिचयमात्र था, कोई विशेष संबंध नहीं था। उसके बाद एक ऐसा संयोग उपस्थित हुआ कि मैं उनके काफी निकट आ गया। बात कुछ ऐसी थी कि मैं एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करके दिल्ली आ गया था। पी-एच० डी० करने का मेरा विचार हुआ और मैं इस संबंध में अलीगढ़ जाकर तत्कालीन हिंदी-विभागाध्यक्ष से मिला। कई दिनों के प्रयास के बाद तो उनसे मेरी मुलाकात हो सकी। मैंने अपना विचार उनके समक्ष रखा, तो उन्होंने कहा कि मैं इस संबंध में मार्ग-निर्देशन के लिए डा० सुमन जी के मिलूँ। उनके निर्देशानुसार मैं डा० सुमन जी से उनके घर पर मिला। वे अपने अध्ययन में व्यस्त थे; परन्तु अपना

सारा काम छोड़कर मुझसे चर्चा करने में लग गए। काफी चर्चा के बाद उन्होंने 'पंत की काव्य-भाषा एकरूप वैज्ञानिक अध्ययन' विषय उपयुक्त बतलाया। मेरे अनुरोध करने पर उन्होंने अपने मार्ग-निर्देशन में इसकी विषय सूची भी तभी तैयार करवा दी। मैं इसे प्रस्तुत करने से पूर्व विभागाध्यक्ष को दिखाना चाहता था। उन दिनों वहाँ पी-एच० डी० करने के लिए विभागाध्यक्ष की मौखिक स्वीकृति लिखित से भी अधिक अनिवार्य समझी जाती थी। मुझे विभागाध्यक्ष से मिलने में फिर कई दिन लग गए। एक दिन जब उनके कार्यालय में उनसे भेंट हुई, तो उन्होंने एक नजर से मेरी विषय-सूची देखी और बोले—"तुम्हारा विषय बहुत अच्छा है, विषय-सूची भी ठीक है, परंतु इसमें एक ही कमी रह गई है। तुमने हिंदी विषय-सारणी के साथ इसका अंग्रेजी-अनुवाद नहीं लगाया है। इस समस्त सामग्री का अंग्रेजी अनुवाद भी इसके साथ लगा दो। अगली मीटिंग में इस पर विचार हो जाएगा।" हिंदी विषय-सारणी के साथ अंग्रेजी अनुवाद लगाने की बात मुझे कुछ विचित्र सी लगी परंतु विभागाध्यक्ष का आदेश था। मैं पुनः डा० सुमन जी की सेवा में पहुँचा और उन्हें सारी बात बतलायी। मेरी बात सुनकर वे एकदम चौंके और बोले—हिंदी का शोध-विषय और हिंदी-विषय-सारणी के साथ अंग्रेजी में उसका अनुवाद! भला कोई तुक है। तुम्हें निश्चय ही परेशान किया जा रहा है। तुम्हारे साथ कोई नवीन छलमयी परंपरा चलायी जा रही है। परंतु मेरी विशेष प्रार्थना पर उन्होंने अपने मार्ग-निर्देशन में साथ में उसका अंग्रेजी अनुवाद भी लगवा दिया।

मैं शोध-विषय का आवेदन प्रस्तुत कर दिल्ली चला गया था। बाद में सुना कि विभागीय समिति की बैठक में मेरा विषय आया ही नहीं। आवेदन-पत्र ही नदारद था। डा० सुमन जी स्वयं मीटिंग में उपस्थित थे। वे बोले कि जब उस छात्र के शोध-विषय का गड़बड़ घुटाला ही करना था, तो क्यों आपने मेरा और उस छात्र का समय व्यर्थ नष्ट किया? आपको इतना द्राविड़ी प्राणायाम कराने की क्या जरूरत थी?

मुझे बाद में यह सब कुछ मालूम हुआ था कि डा० सुमन जी ने अपने एक छात्र के प्रति हुए अन्याय के प्रति बड़ा संघर्ष किया और घोर आक्रोश प्रकट किया था। मेरे लिए यही पर्याप्त था कि उन्होंने अन्याय के विरुद्ध पूरी आवाज उठाई थी। डा० सुमन जी के इस व्यवहार ने मुझे बहुत प्रभावित किया था। उनके व्यक्तित्व की यह विशेषता रही हैं कि अपने छात्रों के प्रति वे बहुत ही उदार, दयालु, सहानुभूतिपूर्ण तथा उनके दुःख-सुख में सहायक रहते हैं।

भारत सरकार के केन्द्रीय हिंदी निदेशालय एवं शब्दावली-आयोग द्वारा निर्मित्त अर्थशास्त्र एवं कृषि-विज्ञान की शब्दावली के निर्माण तथा परिष्करण में डा० सुमन जी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। डा० सुमन जी निदेशालय की कृषि शब्दावली-निर्माण 'विशेषज्ञ समिति' के 'भाषाविद् सदस्य' थे। कृषि शब्दावली के निर्माण का यह कार्य निरंतर १५ वर्षों तक चलता रहा और डा० सुमन जी इस

कार्य को पूरा करने के लिए विशेषज्ञ-समिति की बैठकों में भाग लेने निरंतर १५ वर्ष तक समय-समय पर निदेशालय में आते रहे। निदेशालय में मुझे विदित हुआ कि डा० सुमन जी ही ऐसे लोकप्रिय भाषाविद् हैं, जो सन् १९६२ ई० से निरन्तर शब्दावली-निर्माण में हिन्दी की सेवा के लिए करते रहे। सर्व श्री डा० सिद्धेश्वर वर्मा, डा० बाबूराम सक्सेना, डा० विश्वनाथ प्रसाद, डा० धीरेन्द्र वर्मा, डा० विनयमोहन शर्मा आदि भाषा-शास्त्री डा० सुमन जी को बड़ा स्नेह और सम्मान देते। अब संपूर्ण शब्दावली निदेशालय द्वारा प्रकाशित है। उस शब्दावली के निर्माण तथा संपादन में डा० साहब ने अत्यन्त निष्ठा, लगन, परिश्रम तथा सूझ-बूझ का परिचय दिया है। इस संपूर्ण शब्दावली में कोई शब्द ऐसा नहीं है जिसे डा० साहब ने अपनी सूक्ष्म प्रतिभा से कांट-छांट कर ठीक न किया हो। एक कुशल शब्द शिल्पी की भाँति उन्होंने शब्दों को रूप तथा अर्थ, दोनों ही दृष्टियों से एक नवीन रूप प्रदान किया है।

विशेषज्ञ समिति की बैठकों में कभी-कभी ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती थी कि सदस्यगण काफी बहस और चर्चा के उपरांत भी किसी सर्वसामान्य निर्णय पर नहीं पहुँच पाते थे। तब चिंतन में डूबे डा० सुमन जी प्रकृति-प्रत्यय पर आधृत ऐसा शब्द निकाल कर प्रस्तुत करते थे, जो सभी सदस्यों को सहज मान्य हो जाता था और जो मूल अंग्रेजी शब्द की यथातथ्य अभिव्यक्ति भी करता था।

पारिभाषिक शब्दावली की बैठक में जिस दिन डाक्टर साहब आ जाते थे, उस दिन सारे निदेशालय में यह चर्चा चारों ओर छा जाती थी कि डा० सुमन जी आ गये हैं। उस दिन प्रायः सभी स्नेही मित्र अपनी-अपनी शब्द-समस्या लेकर डाक्टर साहब के पास पहुँच जाते थे। एक दिन एक मित्र ने डाक्टर साहब से पूछा कि Oblique और Obliquely का हिंदी-अनुवाद क्या-क्या है? "The bird flies obliquely" का अनुवाद क्या होगा? डाक्टर साहब ने बताया कि Oblique का अनुवाद 'तिरछो' और Obliquely का अनुवाद 'तिरछे' है। 'तिरछी' विशेषण और तिरछे क्रिया-विशेषण है। उक्त वाक्य का अनुवाद होगा—"चिड़िया तिरछे उड़ती है।"

विशेषज्ञ-समिति की बैठकों में भी शब्दावली-निर्माण के साथ-साथ प्रसंगवश डाक्टर साहब ऐसी बात सरका देते थे कि समिति के सब सदस्य हास्य-विनोद के सरोवर में नहाकर ताजा हो जाते थे। मैं स्वयं उन दिनों निदेशालय में भूविज्ञान-शब्दावली के निर्माण का कार्य करता था। कभी-कभी डाक्टर साहब वाली विशेषज्ञ समिति की बैठक में भी कार्यवश उनसे मिलने चला जाता था। तब मैं यह सब कुछ देखा करता था।

कृषि-शब्दावली-निर्माण में कार्य करने वाले मेरे आदरणीय साथी सर्व श्री बा० तेजपालसिंह, डा० बी० एल० उपाध्याय, श्री टी० पी० पाठक, डा० रणवीर रांग्रा, श्री भवानीदत्त पांड्या, श्री पंत जी आदि प्रायः कहा करते थे कि—"डाक्टर

सुमन जी को भगवान् ने न जाने किस विशिष्ट तत्त्व से निर्मित किया है ? उनके व्यक्तित्व में विद्वत्ता और विनोदमय हास्य का अद्भुत् सम्मिश्रण है। उन्होंने विद्वत्ता को ऊपर से ओढ़ा नहीं है। वह कर्ण के कवच के समान उनमें सहज है। समिति की बैठकों में डाक्टर साहब की उपस्थिति से काम भी बहुत होता था और विनोद की लहर भी लह-लह लहराती थी।

उनके हास्य-विनोद के प्रति मेरे परिवार के सदस्य भी शुद्ध भाव से आकृष्ट हैं। उनका हास्य-विनोद रामायण-महाभारत के कथानकों के साथ भी प्राय: चलता है। कुछ साहित्यकारों के संस्मरण भी वे विनोदमय शैली में सुनाते हैं।

श्रद्धेय गुरुवर डाक्टर सुमन जी की विद्वत्ता, विनोद-प्रियता और शिष्यों के प्रति उपकारमयी सहज स्नेहशीलता मेरे हृदय पर सदा अंकित रहेगी। आज जिस निदेशालय में मैं हिंदी-सेवा-कार्य कर रहा हूँ, उसके मूल में गुरुवर डाक्टर साहब का ही आशीर्वाद है—

"तस्मै श्री गुरवे नमः।"

—शोध-सहायक
केंद्रीय हिंदी-निदेशालय
(भारत सरकार)
रामकृष्ण पुरम्, नयी दिल्ली।

सामीप्य की अनुभूति

—डा० कृष्णमोहन सक्सेना

हिंदी के गौरव-पुरुष डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' के दर्शन का सौभाग्य जहाँ तक मुझे याद पड़ता है—नहीं मिल पाया। तभी से ऐसा नहीं लगता कि मैं उनसे दूर हूँ। ऐसा क्यों लगता है ? सोचता हूँ तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि 'सुमन' जी ने हिंदी भाषा एवं साहित्य की जो सेवा की, जो लिखा-पढ़ा, उसकी धवल उर्मियों में मुझे अवगाहन करने का सौभाग्य मिला है। मुझे अच्छी तरह से स्मरण है कि सन् १९६८ में मैं जब एम० ए० था—इलाहाबाद विश्वविद्यालय में, तो भाषा विज्ञान सम्बन्धी मेरे सामने जो समस्याएँ आयीं उनका समाधान "हिंदी और उसकी उप-भाषाओं का स्वरूप" पुस्तक से हुआ।

एम० ए० में जब मैंने हिंदी नाटकों का लोक-तात्विक विषय पर शोध-कार्य प्रारंभ किया, तो 'लोक' को समझाने एवं व्याख्या करने के निए 'सुमन' जी के विभिन्न लेखों में जो दृष्टि अभिव्याप्त है, उससे लाभान्वित हुआ। मैं हिंदी साहित्य का एक सामान्य पाठक रहा हूँ, अतः 'सुमन' जी की बहुत सी रचनाएँ पढ़ने का सौभाग्य मिलता रहा है। किसी विषय को सीधे परिनिष्ठित भाषा में वे इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं कि विषय का संदर्भ-प्रसंग इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि फिर कोई शंका समाधान का प्रश्न नहीं उठता और लगता है कि यह लेख नहीं अपितु एक दस्तावेज है।

'सुमन' जी की हिंदी भाषा शास्त्र के साथ ही संस्कृति में जो पैठ रही है, उससे उनके कृतित्व को विस्तृत आयाम मिला है और यह सामग्री विभिन्न स्तरों पर शोध-अनुशीलन में सहायक बनी है। उदाहरणार्थ—"संगीत कला और ब्रज काव्य" में ब्रज काव्य के साथ ही सांगीतिक-तत्त्वों का उन्होंने जो विवेचन किया है, वह सामान्य लेखों की अपेक्षा एक विशिष्ट धरातल प्रदान करता है। इसी प्रकार, "ब्रज मंदिरों की रामलीला और उसका उद्गम", "रसिया और ढोला", "ब्रजलोक गीतों का दिग्दर्शन", "ब्रज में होलिकोत्सव पर गाये जाने वाले लोक-गीत और उनकी शब्दावली"—आदि अनेकानेक लेख सांस्कृतिक वैभव को उजागर करने में समर्थ हैं।

मेरे एक मित्र ने प्रसंगवश 'सुमन' जी की शिक्षा-पद्धति व्यावहारिक-ज्ञान तथा शोध-निर्देशन की चर्चा अनेक बार की थी। संक्षेप में उनके कृतित्व के यही सब वे प्रसंग हैं, जो कि मन में इस प्रकार रमे हुए हैं कि लगता है 'सुमन' जी मेरे पास ही है—बहुत समीप हैं।

—नाट्य-सर्वेक्षक
उ० प्र० संगीत नाटक अकादमी, लखनऊ।

जिनसे मुझे कर्म की ज्योति मिली

—डा० गयाप्रसाद शर्मा

मैं अलीगढ़ के राजकीय इंटर कालेज में हिंदी का अध्यापक था और हिंदी में पी–एच० डी० करने का भी इच्छुक था। एक दिन आदरणीय डा० गोवर्द्धननाथ जी शुक्ल से मिला और पी–एच० डी० के शोधकार्य के लिए उनसे अपनी अभिलाषा व्यक्त की। डा० शुक्ल जी ने मेरा प्रिय क्षेत्र जानना चाहा। मैंने तुलसी के साहित्य के प्रति अपनी अभिरुचि बतायी। साथ में भाषाशास्त्र की ओर भी अपना रुझान व्यक्त किया। तब डा० शुक्ल जी ने मुझसे कहा कि "तुम डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' के पास जाओ और अपनी इच्छा व्यक्त करते हुए शोध-विषय उनसे निर्धारित कराओ।"

निदान मैं एक दिन हरिनगर (अलीगढ़ नगर का एक मोहल्ला) में पहुँचा और श्रद्धेय डा० अंबाप्रसाद जी 'सुमन' को अपनी रुचि का क्षेत्र बताते हुए अपना निवेदन किया। यह बात सन् १९६८-६९ ई० की है। डाक्टर साहब ने तब मेरी परीक्षा ली और संस्कृत-ज्ञान का परिचय भी लिया। आधे घंटे बाद तुरंत शोध का विषय दे दिया। विषय 'रामचरितमानस' के तत्सम शब्दों के ऐतिहासिक अर्थ-विकास से संबद्ध था।

उन दिनों डाक्टर साहब के यहाँ घर पर मैं निरंतर ३-४ घंटे प्रतिदिन रहा करता था। वास्तविक अर्थों में मैं उनका अन्तेवासी बन गया था। उनके साधना-कुटीर में रहते हुए मैंने सीखा कि साहित्य-साधना किस तरह की जाती है? 'कर्म' की सच्ची व्याख्या मुझे डाक्टर साहब की दैनिक अध्ययन-प्रणाली से ही मालूम हुई थी। ज्ञान, ज्ञान का अर्थ और सार मैंने वहीं जाना था। मेरी जिज्ञासा और शंका-समाधान के लिए मेरे गुरुदेव रात्रि में ४-४ घंटे जागते और ग्रंथावलोकन के उपरान्त मेरा मार्ग-दर्शन करते थे। उस स्थिति में मेरे ऊपर गुरुदेव की जो शब्द-चोटें पड़ती थीं, मैं उनसे घबरा भी जाता था। कभी-कभी निराश होकर शोध-कार्य त्यागने के लिए भी तैयार हो जाता था। तब गुरुमाता तथा गुरु-बहनें मुझे समझाया भी करती थीं।

एक दिन ऐसी स्थिति आ गयी थी कि मैं घबराकर और निराश होकर अपना शोध-कार्य छोड़कर गुरुद्वारे से चल दिया था। तब वात्सल्य-ममतामयी गुरु माता जी ने ही समझाया और धीरज बँधाया था। गुरुजी के क्षणिक क्रोध की बात भी समझायी थी।

उन दिनों जब मैं अलीगढ़ नगर में दो-एक जगह जाता था, तो दो-एक

व्यक्ति मुझसे यह भी कहा करते थे कि "डा० सुमन जी बड़े सख्त निर्देशक हैं। तुम्हारे शरीर और दिमाग की मींग निकालकर रख देंगे। तुम्हारी हड्डियाँ ही रह जाएँगी, पी–एच० डी० तो होगी नहीं।"

घर में गुरुमाता जी का कहना था कि "गयाप्रसाद! तुम इन फटकारों को सह लोगे तो आनंद उठाओगे।" बहन शारदा जी कहती थीं कि—"ये कुनैन मिक्चर के घूंट हैं। इन्हें कड़ा जी करके पी लीजिए भाईसाहब! मैंने भी पिये थे। अब मैं उनका महत्व समझ रही हूँ। तब न समझती थी।"

तब माताजी और शारदा बहन जी की बातों से मुझे ढाढस बँधता था और फिर शोध-कार्य में लग जाता था। मुझे उदास देखकर मेरे गुरुदेव बड़े शान्त भाव से फिर मुझे शोध-निर्देशन देने लगते थे। तब मैंने अनुभव किया था कि गुरुदेव में कुम्हार की भाँति ही वह कल्याण भावना है, जो घड़े में ऊपर से तो चोट मारती है, पर अंदर से हाथ का सहारा देती है।

महात्मा कबीर ने कहा भी है—

"गुरु कुम्हार सिष कुंभ है, गढ़ि-गढ़ि काढ़ै खोट।
अंतर हाथ सहार दै, बाहर बाहै चोट।"

शोध-कार्य करने के साथ-साथ मैं गुरुदेव के सान्निध्य में कर्म को और कर्म के आनंद को समझा। 'गुरु' और 'आचार्य' के भेद को भी समझा। मुझे अपने जीवन में आचार्य तो मिले थे, किंतु तब तक कोई गुरु नहीं मिला था। 'आचार्य' वस्तुओं से परिचय ही करा सकता है; लेकिन 'गुरु' ज्ञान के आसन पर अच्छी तरह बैठना सिखाता है। गुरु की वाणी और गुरु की कर्म-प्रणाली शिष्य के ज्ञान का तीसरा शिवनेत्र खोलकर उसे दिव्य ज्योति के दर्शन कराती है।

पी–एच० डी० तो मैं भी हुआ। अन्य हजारों हुए हैं और भविष्य में होंगे, किंतु मुझे डाक्टर-उपाधि के साथ-साथ जो ज्ञान-प्राप्ति की भूख और कर्म करने की लगन प्राप्त हुई, वह प्राप्त न होती, यदि मेरे निर्देशक गुरुवर डा० सुमन जी न बनते। आज मैं जिस गौरव और सुख का अनुभव करता हूँ, वैसे गौरव और सुख का अनुभव मैं कभी नहीं कर सकता था, यदि मुझे मेरे गुरुदेव का निर्देशन प्राप्त न होता। गुरुदेव की प्रतिदिन की ३-३ घंटे की निर्देशना और शोध-प्रक्रिया ने मेरी कर्म प्रणाली में प्राण फूंक दिये थे। गुरु कृपा से ही यह काँच कुछ चमक सका।

प्लैटो को गौरव था, सुकरात का शिष्य होने में; अरस्तू को गौरव था प्लैटो का शिष्य होने में। मुझे गौरव है, गुरुवर डा० सुमन जी का शिष्य होने में।

शुक्राचार्य को अपने गुरु जनक पर और जनक को अपने गुरु याज्ञवल्क्य पर गौरव था। विवेकानंद को अपने गुरु रामकृष्ण परमहंस पर गौरव इसलिए था, कि परमहंस विवेकानंद को सब कुछ देना चाहते थे। यही अनुभूति मेरी है, अपने गुरुदेव के प्रति।

बर्नार्ड शा को परम गौरव की अनुभूति थी कि वह इब्सन का शिष्य है।

लैनिन अपने को इसलिए गौरवशाली मानता था कि वह मार्क्स का शिष्य था। यदि किसी शिष्य को सच्चा गुरु मिल जाता है, तो उसके आनंदसागर का पारावार नहीं रहता।

एक साहूकार एक माली के पास पहुँचा और पूछने लगा कि फूल किस भाव हैं? माली ने कहा कि चार पैसे का एक फूल दूँगा। साहूकार ने कहा कि मैं तुझे आठ पैसे प्रति फूल के हिसाब से दाम दूँगा। सब फूल मुझे दे दे। माली ने मना कर दिया। माली आगे चल दिया और बुद्ध जी के पास पहुंचा। वहाँ सारे फूल माली ने बुद्ध जी के चरणों में अर्पित कर दिये। माली को एक ज्योति मिली थी बुद्ध जी से।

संमान और स्वाभिमान की रक्षा के साथ शिक्षा-जगत में सेवाकार्य करने के लिए प्रायः मेरे गुरुदेव मुझे प्रेरणा दिया करते थे और तब निम्नांकित कविता-पंक्तियाँ सुनाया करते थे—

"कंटक गुलाब ! क्यों गरूर करै अपने मन भव बीच भौंरन को बाग बहुतेरे हैं।"

× × ×

"हरीचंद नगद दमाद अभिमानी के।"

आज मेरी श्रद्धा के सारे फूल श्रद्धेय गुरुदेव के चरणों पर सादर समर्पित हैं; क्योंकि मुझे गुरुदेव से एक ऐसी कर्म-ज्योति मिली है, जो अन्यत्र नहीं मिल सकती थी। "तस्मै श्री गुरुवे नमः।"

—प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
नारायण डिग्री कालेज,
शिकोहाबाद (उ० प्र०)

आचरण के धनी हमारे कुलगुरु

—श्री ओमप्रकाश वार्ष्णेय

परम श्रद्धेय डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' हमारे कुलगुरु है। वे हर मंगलवार को हमारे घर 'रामचरितमानस' का कथा-प्रवचन किया करते हैं। इस मानस-पाठ में नगर के भक्त एवं प्रबुद्ध श्रोता पधारते हैं। डा० 'सुमन' शब्दों के सम्राट हैं। शब्द की आत्मा को पहचान लेते हैं। वे अनेक शब्दों की व्याख्या आंगिक चेष्टाओं के माध्यम से समझाते हैं। 'तर्जन' शब्द को तर्जनी उंगली के माध्यम से इस प्रकार समझाते हैं कि आनंद आ जाता है। "बार-बार रघुवीर संभारी" अर्धाली की व्याख्या का आनंद तो श्रोतागण ही ले सकते हैं। मैं उस व्याख्या को कैसे समझाऊँ।

मानस-कथा-प्रवचन में मानस के साथ ही श्रीमद्भागवत्, श्री राधेश्याम रामायण, महाभारत, श्रीमद्भगवद्गीता, आनंद रामायण, दोहावली, कवितावली, गीतावली, साकेत, चारों वेद आदि के प्रसंगों को तुलनीय बनाकर इस प्रकार सुनाते हैं कि सात्विक आनंद आ जाता है। आपको इतना कुछ कंठाग्र है और इतना शुद्ध और इतना उत्तम उच्चारण कि देखते ही बनता है। उद्धरणों की ठीक-ठीक संख्या और स्थल बताना 'सुमन' जी की चमत्कारिक विशेषता है।

प्रातः ब्राह्ममुहूर्त में जगकर नित्य क्रियाओं से निवृत्त होकर वे प्रातः भ्रमण को जाते हैं, आकर स्नानादि से निवृत्त होकर स्वाध्याय करते हैं। वैसे उनका स्वाध्याय तो हर समय चलता रहता है। दोपहर के भोजन के बाद थोड़ा-सा विश्राम, फिर स्वाध्याय, फिर रात्रि तक ऐसे ही, फिर शयन—यही दिन-चर्या रहती है 'सुमन' जी की। वे निरंतर माँ सरस्वती की आराधना में लगे रहते हैं।

डा० 'सुमन' जी आचरण के धनी हैं। इनके आचरण पर कहीं कोई उंगली नहीं उठा सकता। प्रायः ऐसा होता है "पर उपदेश कुशल बहुतेरे, जे आचरहिं ते नर न घनेरे।" कुछ लोग बड़ा अच्छा मानस-पाठ करते हैं किंतु अपने जीवन में गंदे हैं। किंतु हमारे 'सुमन' जी का आचरण अनुकरणीय है। वे प्रायः अपने श्रोताओं से भी कहते हैं कि आचरण में न उतारा तो क्या लाभ हुआ कथा सुनकर। अपने श्रद्धेय गुरुओं (श्री पं० गोकुलचंद्र जी शर्मा एवं श्री वासुदेवशरण जी अग्रवाल) की मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हैं। मन, वचन, कर्म में शत प्रतिशत सच्चे हैं। ब्रह्मचर्य से रहते हैं, खूब परिश्रम करते हैं, अल्पाहारी हैं, अक्रोधी हैं। प्रत्येक कार्य अत्यंत समझदारी से एवं विवेक से करते हैं। विश्लेषण की अपूर्व प्रतिभा है। स्पष्ट विचार रखते हैं। उत्कृष्ट प्रकार का विनोद करते हैं।

कभी-कभी हमें ऐसा लगता है कि 'सुमन' जी को सब कुछ मिला, एक पुत्र रत्न नहीं मिला तो संभवतः वे दुःखी रहते होंगे। मैंने उनसे एक बार इसकी चर्चा की तो उन्होंने कहा, "ऐसा ही प्रश्न एक बार नेहरू जी से पूछा गया था तो भाई उन्होंने भी यही कहा था कि मैं ऐसे अभावों से पर्याप्त ऊपर हूँ, ऐसे अभाव खलते नहीं।" वास्तव में उनकी कन्याएँ एक-से-एक अधिक योग्य हैं। बड़ी बेटी शारदा ने तो हाल ही में आगरा विश्वविद्यालय से डी० लिट्० किया है।

सर्वोपरि 'सुमन' जी भव्य हैं, उन्होंने अपना सब कुछ भगवान पर छोड़ दिया है, उनको ही भजते हैं सब तजकर। प्रायः सुनाते हैं—

"सर्व धर्मा परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥१८।६६।

एक कहावत है—

"जननी जनै तो भक्त जन, कै दाता कै सूर।
न तरु जननी बांझ रह, वृथा गंवावै नूर ॥

भक्त सर्वोत्तम श्रेणी है। हमारे 'सुमन' जी सर्वोत्तम श्रेणी के सर्वोत्तम पुरुष हैं। भक्ति-विह्वल होकर वे रोते हैं, रुलाते हैं, हँसते हैं खुलकर, खुलकर हँसाते हैं। सभी रसों का भंडार बिखेरते हैं वे अपनी कथा में। मैं तो भगवान राम से यही प्रार्थना करता हूँ कि—

इन्द्रियजित निर्वैरता, निर्मोही, निर्द्वंद्व।
ऐसे गुरु की शरण सूं, मिटै सकल दुःख-द्वंद्व ॥

—मास्टर छोटेलाल एण्ड को०
मदार दरवाजा, अलीगढ़।

मेरे प्रेरणा-स्रोत

—श्री कृष्णकुमार चतुर्वेदी

गुरु-शिष्य परंपरा वैदिक काल में तो अत्यंत पवित्र एवं दार्शनिक रूप में देखी जाती रही है—

"मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव।"

माता-पिता के समकक्ष ही यदि किसी को देवतुल्य स्थान प्राप्त था, तो वह केवल आचार्य को ही। इतना ही नहीं उपनयन संस्कार में भी यज्ञोपवीत धारण कराते समय व्यक्ति को तीन ऋण चुकाने का दायित्व सौंपा जाता था और यह तीसरा ऋण आचार्य के प्रति शिष्य का दायित्व था। इस प्रकार यह सामाजिक व्यवस्था का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष था कि माता-पिता के समान ही आचार्य के प्रति भी उतना ही संमान एवं उत्तरदायित्व व्यक्ति का रहे।

यही नहीं धर्मशास्त्रों में तो गुरु को साक्षात् परब्रह्म मानते हुए समर्पण की भावना व्यक्त की गयी है—

"गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।"

इस प्रकार एक शिष्य के लिए जब तक अपने गुरु के प्रति इतनी सर्वोत्कृष्ट भावना नहीं होगी तब तक एकात्म (Consentrate) रूप होकर ज्ञानार्जन नहीं कर सकेगा। इसीलिए शास्त्रकारों ने कहा है कि ईश्वर उपासना में जिस प्रकार व्यक्ति निष्ठावान् होकर श्रद्धा-भक्ति के साथ अपने को समर्पित करता है, ठीक यही भाव शिष्य का गुरु के प्रति होना आवश्यक है; तभी उसे वास्तविक ज्ञान गुरु कृपा से प्राप्त हो सकता है।

यद्यपि आज हमें गुरु एवं आचार्य के स्थान पर व्यापारी अध्यापकों के ही दर्शन सर्वत्र होते हैं और वे भी अधिकतर व्यावसायिक अध्यापक जो केवल जीविकोपार्जन तक ही अपने कर्त्तव्यों की इति श्री समझते हैं। वर्तमान में प्राचीन गुरु-शिष्य परंपरा दुर्लभ है।

आधुनिक शिक्षा-प्रणाली पाश्चात्य शिक्षा-पद्धति से पूर्णतया प्रभावित है। अतएव ऐसी परिस्थितियों में आदर्श गुरुजन के संपर्क में आने का सौभाग्य किसी-किसी विद्यार्थी को ही मिल पाता है। इसमें अतिशयोक्ति नहीं कि मुझे ऐसा ही

सुअवसर अलीगढ़ विश्वविद्यालय के हिंदी-विभाग में एम० ए० के छात्र के रूप में गुरुवर डा० अंबाप्रसाद जी 'सुमन' के संपर्क में आने पर मिला। इससे पूर्व मेरी जो गुरु के विषय में परिकल्पना थी डा० सुमन जी में मुझे साकार हुई।

इससे पूर्व मैं लखनऊ विश्वविद्यालय के हिंदी-विभाग में श्री ब्रजकिशोर मिश्र एवं डा० प्रेमनारायण टंडन जी के छात्र के रूप में उनके निकट संपर्क में रहा, जहाँ मुझे यह अनुभूति हुई कि गुरु जिस विषय में विद्यार्थी को ज्ञान दे रहा है, वह स्वयं उसमें पूर्णतया परिपक्व है तथा संभावित सभी समस्याओं के निराकरण करने की उसमें पूरी क्षमता है। इसके अतिरिक्त जो कुछ वह स्वयं जानता है, उसकी अभि-व्यक्ति द्वारा विद्यार्थी को समायोजित करके तल्लीनता का भाव उत्पंन कर देता है, जिसमें नीरस एवं दुरूह विषय भी सरलता से विद्यार्थी को ग्राह्य हो जाते हैं।

गुरुवर श्रद्धेय सुमन जी के विद्यार्थी के रूप में संपर्क में आने पर मुझे यह आभास हुआ कि उनमें उपर्युक्त सभी गुणों का समन्वय है। वे उच्च कोटि के विद्वान् तथा भाषा-मर्मज्ञ हैं। उनको अपने विषयों में पूर्ण दक्षता है। उनकी अध्या-पन-शैली मनोरंजक एवं अभिव्यक्ति प्रभावपूर्ण है। वे स्वभाव से दृढ़ एवं हृदय से अत्यंत कोमल हैं। भाव-विह्वलता क्या उनकी कमजोरी है ? अनेक बार ऐसा प्रसंग आया है, जबकि वे पढ़ाते-पढ़ाते इतने भाव-विह्वल हो उठे हैं कि उनका गला अवरुद्ध हो गया है और उनके नेत्रों से अश्रुधारा बह निकली है। वास्तव में यह उनकी कमजोरी नहीं, वरन् विषय के साथ अपने को आत्मसात् करने की प्रवृत्ति है। जब तक अध्यापक अपने को इतने गुणों से संपंन नहीं करता, वह विद्यार्थी को आकर्षित नहीं कर सकता। ऐसे अध्यापक की कक्षा की सामूहिक मनोवृत्ति इस प्रकार की हो जाती है, कि जो विद्यार्थी पढ़ना नहीं भी चाहते या जिनका मन पढ़ने की ओर प्रवृत्त नहीं होता, वे भी प्रेरित हो उठते हैं और वे ऐसे गुरुजनों की कक्षाओं में विद्या-अध्ययन के लिए प्रतीक्षित रहते हैं। इतना ही वहीं विद्यार्थी ऐसे अध्यापक को पाकर अपने अन्य विषयों की समस्याओं का निराकरण भी करते रहते हैं।

जब अध्यापक अपने विषय में प्रवीण होता है, तभी वह आत्मविश्वास के साथ अध्यापन-कार्य कर सकता है। इसके लिए उसे स्वयं भी अथक परिश्रम करना पड़ता है। तभी उपर्युक्त गुणों में पूर्णता प्राप्त होती है। यह अतिशयोक्ति नहीं कि माँ सरस्वती के भक्त गुरुवर सुमन जी सर्वगुण संपंन हैं। अध्ययन-अध्यापन उनकी दैनिक दिनचर्या का विशेष अंग है। साथ ही उनमें समस्याओं के निराकरण करने की अद्भुत क्षमता है। जो समस्याओं से दूर भागते हैं, वे अपने विद्यार्थी को कभी भी संतुष्ट नहीं कर सकते। गुरुवर सुमन जी को पाकर मुझे यही अनुभूति हुई कि वे मेरे पूर्व गुरुजन से भी कहीं अधिक हैं, क्योंकि श्रद्धेय सुमन जी में कबीर की यह वाणी भी सार्थक होती है—

"गुरु कुम्हार सिष कुंभ है, गढ़ि गढ़ि काढ़ै खोट।
अंतर हाथ सहार दै, बाहर बाहै चोट।"

गुरुवर 'सुमन' जी अपने शिष्य की मानसिक संरचना ठीक वैसे ही करते हैं, जिस प्रकार कबीर ने कुम्हार द्वारा घड़े की रचना की संपूर्ण प्रक्रिया का उल्लेख किया है। यही पूज्य सुमन जी की विशेषता है। वे आज के आधुनिक व्यावसायिक अध्यापक नहीं हैं, वरन् उनमें वे सभी गुण विद्यमान हैं, जिनसे वे वैदिककालीन **'आचार्य देवो भव'** की श्रेणी के पात्र हैं।

मुझे उनके पारिवारिक जीवन में भी संमिलित होने का अवसर मिला, जहाँ मैंने पाया कि वे परिवारी जनों के लिए भी ज्ञान-स्रोत एवं मार्ग-दर्शक हैं और इसी के परिणामस्वरूप उनके परिवार के प्रत्येक सदस्य पर उनकी अमिट छाप है।

—६/८५, मदारगेट,
अलीगढ़ (उ० प्र०)
२०२००१

बहुमुखी व्यक्तित्व

—डा० इंदरराज वैद 'अधोर'

श्रद्धेय डा० अंबाप्रसाद जी 'सुमन' का अरुणाभा बिखेरता हुआ आनन, जो हिंदी भाषा और साहित्य पर पड़ने वाले किसी हलके से आघात से भी तमतमा उठता है, मैं कभी नहीं भूल सकता। वे हिंदी के सच्चे सपूत हैं। हिंदी भाषा और साहित्य की सेवा में उन्होंने अपना सारा जीवन लगाया है। धन उनका लक्ष्य नहीं रहा, सरस्वती की सेवा ही उनको अभीष्ट रही। अपने १६-६-६६ के पत्र में उन्होंने मुझे लिखा था—"प्रियवर, मैं संस्कार और स्वभाव से हिंदी-प्रेमी हूं। वैसे पैसा बुरा नहीं लगता, क्योंकि सामाजिक जीवन के लिए पैसा अनिवार्य तत्व है, किंतु हिंदी-साहित्य की सेवा के लिए मैं पैसे को 'भी' मानकर चलने वाला हूँ, 'ही' मानकर नहीं।" यही उनकी ऋषि-प्रवृति हैं जिसने मुझे और मेरे जैसे उनके शिष्यों को श्रद्वाभिभूत किया है।

'अध्ययनं परमतप: के सारस्वत मंत्र को अपने जीवन में उतारने वाले और हिंदी का अलख जगाने वाले डा० सुमन बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार हैं। वे रससिद्ध कवि हैं, भाषा-मर्मज्ञ हैं, तत्वान्वेषी चिंतक है। कविता-पाठ करते समय श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देना उनकी विशेषता है। राष्ट्र-भारती उनकी आराध्या है। सांस्कृतिक पर्वों के अवसर पर अभिनंदन की पंक्तियां लिखते समय भी एक सच्चे सपूत की तरह हिंदी की हित-कामना करना ही उन्हें प्रिय है। यथा।—

"ज्योति-पर्व में जगमग चमके हिंदी का हर कोना।
सारस्वत पूजन से उसका, निखरे रूप सलोना॥

(१२-११-६६ के पत्र से)

डा० सुमनजी राष्ट्रभारती के अनन्य भक्त हैं। हिंदी के प्रखर हितैषी वक्ता के रूप में उन्होंने अनेक बार मंचों को आंदोलित किया है। मुझे याद आती हैं मद्रास के मंचों पर की गई उनकी सिंह गर्जनायें। वह मद्रास की अग्रवाल सभा का युवा-सम्मेलन था। सभा में एक प्रतिष्ठित हिंदी-भाषी उद्योगपति हिंदी की कमियों की चर्चा छेड़ बैठे और हिंदी लेखकों की उदासीनता और उत्तरदायित्वहीनता पर बोलने लगे तो डा० सुमन जी से नहीं रहा गया। उनका चेहरा सात्विक क्रोध से तमतमा उठा और वे गरज उठे—"आपको यह दु:साहस कैसे हुआ कि हिंदी के सेवक के

सामने ही आप हिंदी की और हिंदी के साहित्यकारों की आलोचना करें। आप होते कौन हैं हिंदी-भाषा-साहित्य पर टीका-टिप्पणी करने वाले आपने अभी पढ़ा ही क्या है ? आप चाहें तो इस संदर्भ में मैं किसी से भी शास्त्रार्थ करने को तैयार हूँ, पर यह सुनने को कदापि तैयार नहीं कि हिंदी में यह नहीं, वह नहीं।" डा० सुमन जैसा निर्भीक साहित्यकार ही ऐसी गर्जना कर सकता है। यही कारण है कि मद्रास में लगभग एक वर्ष रहने के पश्चात् जब वे विदा हुए तो वहाँ के हिंदी-प्रेमी समुदाय ने उन्हें अश्रुपूरित नयनों से विदाई दी।

डा० सुमन जी का अब का तक का जीवन अध्यापक के रूप में बीता है। उनकी 'गुरुता' दूसरों के लिये सदैव ईर्ष्या का विषय रही है। उनका सारस्वत तेज अद्भुत है। एक बार जो उनका 'छात्र' बन गया, वह सदा के लिए उनका ही हो जाता है। यह उनके अध्यापन की क्षमता और प्रभुता का चमत्कार है। उनके शिष्य कहीं भी रहें, उनसे ज्ञान प्राप्त किया करते हैं। डा० सुमन जी ने सदा अपने छात्रों के हित की कामना की है और अपने पत्रों के माध्यम से उनका मार्गदर्शन किया है, उन्हें लेखक बनने का मंत्र सिखाया है। उनका हर पत्र ज्ञान से भरा होता है। अपने २२ अक्तूबर १९६६ के पत्र में भाषा-साहित्य की व्याख्या करते हुए उन्होंने मुझे लिखा था—"तुम हिंदी साहित्य के अध्ययन और लेखन का कार्य थोड़ा-बहुत अवश्य करते रहो। अवकाश के क्षणों में कविता और साहित्यिक निबंध लिखा करो। विद्वानों के निबंध पढ़ते समय यह देखा करो कि उन्होंने किस प्रकार के उपमानों, प्रतीकों, मुहावरों, अलंकारों तथा शब्द-शक्तियों की सहायता से अपने भावों तथा विचारों को भाषिक अभिव्यक्ति प्रदान की है।"

डा० सुमन जी के पत्र सँजोकर रखने वाले अमूल्य रत्न है। उनके पत्रों ने अनेक शिष्यों का हित-संपादन किया है। सन् १९६५ में जब वे मद्रास को छोड़कर अलीगढ़ चले गये तो उनका यहाँ का शिष्य समुदाय अपने को अनाथ समझने लगा। एम० ए० के पश्चात् मेरे सामने कोई दिशा नहीं थी। आर्थिक कठिनाई के साथ अन्य कई ऐसी बातें थीं, जिनसे मैं टूटता जा रहा था। परंतु मेरे निराश मन को एक बार फिर आशा के गंगाजल से स्वच्छ और स्फूर्तिमय बनाया डा० साहब की लेखनी ने। उन्होंने उद्बोधन दिया—"तुम तीर्थंकरों के अनुयायियों के कुल में उत्पंन हुए हो। मुनियों में मन और आत्मा का ही तो बल होता है। अपने केंद्र को पहिचानो। अपने मन और आत्मा पर विश्वास रखते हुए सारस्वत लक्ष्य पर ही दृष्टि रखो। भगवान् अवश्य सहायता करेंगे। हारी-हारी बातें मत सोचो। ईश्वर एवं आत्म विश्वासी बने रहो। अर्जुन की भाँति दृष्टि बना लो। सच्ची साधना, स्वाभिमान श्रद्धा, प्रेम, मेल, और सौहार्द के साथ सरस्वती-पूजन करते रहो।" (२८–१०–८० के पत्र से)।

डा० सुमन जी की अध्यापन कला अद्भुत है। कामायनी की व्याख्या से लेकर भाषा-विज्ञान की गुत्थियों को सुलझाने में उनकी समानता शायद ही कोई करता हो। जादू वह है जो सर पर चढ़कर बोलता है। डा० सुमन के व्याख्यानों का जादू कोई

उनके श्रोताओं से पूछें ! उनकी आकर्षक व्याख्यान शैली, उनकी विश्लेषणात्मक दक्षता और उनके पांडित्य की गरिमा कभी भुलायी नहीं जा सकती। यह चलते किसी ने कोई प्रश्न कर दिया या कोई भाषा-साहित्य संबंधी शंका खड़ी कर दी तो पाँव वहीं ठहर जायेंगे, चेहरे पर मुस्कराहट खिल उठेगी, व्याख्या में शब्द उमड़ पड़ेंगे और आवश्यक हुआ तो लेखनी हाथों में थिरकने लगेगी, प्रश्नकर्त्ता के समाधान के लिए। ऐसे महान् गुरुवर का 'सस्नेह आशीर्वाद' पुण्यों से मिलता है। जिसने इसे पाया, वह धन्य हो गया।

—कार्यक्रम अधिकारी
आकाशवाणी, मद्रास

एक आकर्षक शिक्षक

—डा० सुरेंद्र सिंह अत्रीश

यद्यपि कक्षा में स्नातकोत्तर छात्र-छात्राओं को डा० सुमन जी का प्रमुखतः भाषा-विज्ञान के प्राध्यापक का रूप ही देखने को मिलता था लेकिन वह इस शुष्क अरुचिकर विज्ञान को अपने शिक्षा की विशिष्ट शैली से इतना रोचक व सरस बना देते थे कि द्वितीय वर्ष में अधिकांश विद्यार्थी ऐच्छिक पाठ्य-क्रम भाषा-विज्ञान का ही अध्ययन करते थे। स्नातकोत्तर कक्षाओं के विद्यार्थियों को भी गुरुदेव गृहकार्य दिया करते थे और उनकी कक्षा में प्रवेश करने का साहस वही कर सकता था जो उस गृह-कार्य को समझ-बूझकर पूर्ण कर लाया हो। उनके मौखिक प्रश्नों का उत्तर न दे पाना विद्यार्थी के हृदय में भय उत्पंन करता था। ऐसी स्थितियों में गुरुजी के सरोष धमकाने पर विश्वविद्यालय के विद्यार्थी को प्राथमिक पाठशाला के 'पण्डित जी' का स्मरण हो आता था। स्थान और प्रयत्न के आधार पर हिंदी की स्वर और व्यंजन ध्वनियों को गुरुदेव जिस ढंग से समझाते थे उससे विषय का प्रायोगिक ज्ञान तो होता ही था साथ ही कभी ऐसी हंसी भी छूट पड़ती थी जिसे कक्षा में नियंत्रित कर पाना कठिन हो जाता था। मुझे खूब ध्यान है, एक बार गुरुदेव ने मूर्धन्य ध्वनियों के उच्चारण के स्थान और प्रयत्न समझाने समय मेरे मुख-विवर में अपनी अंगुली दे दी थी। मुझे उनका प्रकंपित, उत्क्षिप्त और महाप्राण ध्वनियों को समझाने का ढंग भी बहुत अच्छा और मनोरंजक लगा। काव्य-शास्त्र के भाव, विभाव, अनुभाव, रस-निष्पत्ति, साधारणीकरण तथा अभिव्यंजनावाद जैसे सूक्ष्म और विश्लेष्य विषयों पर दिये गये गुरुदेव के व्याख्यान उनके गठन प्राध्यापकीय अनुभव व विलक्षण पांडित्य के द्योतक थे।

एक बार मैंने उनसे व्यंजना शब्द-शक्ति को समझाना चाहा तो मलिक मुहम्मद जायसी और जयशंकर प्रसाद के काव्य की कुछ पंक्तियों का उदाहरण देकर उन्होंने जिस ढंग से व्यंजना या व्यंग्य को स्पष्ट किया, मैं आत्म-विभोर हो सिर हिलाता रह गया—'ज्यों गूंगै मीठे फल कौ रस अंतरगत ही भावै' —सूरदास

जब कभी मैंने उनके घर जाकर उनसे 'प्रिय प्रवास' 'साकेत' 'संदेश रासक' के कुछ छंदों की व्याख्या करने का अनुरोध किया तो मुझे लगा कि कलाकार केवल अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', 'मैथिली शरण गुप्त और अब्दुल रहमान ही नहीं

हैं, कलाकार डाक्टर साहब जैसे सुयोग्य शिक्षक भी हैं जो अपनी हृदयंगम व्याख्या शैली से काव्य की साधारणीकरण-शक्ति को और अधिक संप्रेषणीय बना देते हैं। ब्रज और अवधी भाषाओं के व्याकरण में पारंगत होने के कारण उनकी, सूर और तुलसी के छंदों की अनेक व्याख्याएं ब्रज-अवधी के व्याकरण-विहीन पाठकों से भिन्न होती थी क्योंकि इन भाषाओं के शब्दों के अभिधेय अर्थ की अवगति नहीं हो सकती।

साहित्य की उच्चस्तर की कक्षाओं के शिक्षण-कार्य से संबंधित शिक्षक अनेक स्थानों पर प्रमाता वर्ग के समक्ष आलोचक का रूप ग्रहण कर लेते हैं। ऐसा होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि शिक्षक और आलोचक के कर्त्तव्य कर्म एक ही हैं। विषय का पूर्ण ज्ञान, निष्पक्षता, सहृदयता, विचारों या भावों को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त कर सकने की क्षमता आदि गुण दोनों से अपेक्षित हैं। मैंने गुरुदेव में भी एक सफल और प्रभावशाली आलोचक के शुभ-दर्शन किये हैं। उनके व्याख्यानों की आगमन व निगमन शैलियों ने मुझे बहुत प्रभावित किया है।

मैं चाहता हूँ, गुरुदेव शतायु हों, आजीवन आधि-व्याधि से मुक्त रहें, माता वीणापाणि की उन पर सदैव कृपा रहे, साथ ही शिष्यों को भी अपने शुभाशीर्वाद से कृतार्थ करते रहें।

—हिंदी-विभाग
पतला डिग्री कालेज, पतला (मेरठ)

मेरे श्रद्धेय गुरुदेव

—डा० रामसिंह अत्री

आध्यात्मिक तथा लौकिक दोनों ही प्रकार की शिक्षा, साधना और ज्ञान के क्षेत्र में गुरु की अनिवार्यता एवं महत्ता अपरिहार्य रही है। जब भी 'गुरु' शब्द की सार्थकता पर विचार करता हूँ, गोरखनाथ की प्रसिद्ध पंक्ति—**"गुरु कीजै गहिला निगुरा न रहिला, गुर बिन ग्यांन न पायला रे भाईला।"** अनायास ही स्मृति पटल पर उभर आती है। कितने सरल किंतु अर्थ व्यंजक शब्दों में गोरख ने ज्ञान की व्यापकता व गांभीर्य के समानांतर गुरु की महानता को प्रतिपादित किया है। वस्तुतः सच्चे-ज्ञानी गुरु की प्राप्ति अत्यंत दुर्लभ है। अपने अध्ययन-काल में छात्र अनेक गुरुओं से शिक्षा व ज्ञान प्राप्त करता है, किंतु उनमें से कतिपय गुरु उसके लिए परम श्रद्धेय अनुकरणीय तथा अविस्मरणीय बन जाते हैं। पूज्य गुरूवर डा० अंबाप्रसाद जी 'सुमन' ऐसे ही विलक्षण प्रतिभा संपन्न, गौरवशाली तथा माननीय गुरुओं की कोटि में आते हैं।

गुरुदेव डा० सुमन जी के शिक्षक-व्यक्तित्व से निकट का परिचय प्राप्त करने का सुअवसर मुझे अलीगढ़ मु० वि० वि० में एम० ए० (हिंदी) में प्रवेश के समय अगस्त १९६२ ई० में प्राप्त हुआ। उन्होंने दो वर्ष तक हमारी कक्षा के 'भाषा-विज्ञान' पाठ्यक्रम का अध्यापन किया। वे जिस आत्मीयता लगन तथा परिश्रम से शिक्षण-कार्य करते थे, उसे देखकर गुरुकुलों की प्राचीन भारतीय परिपाटी का स्मरण हो उठता था। उनकी अध्यापन-शैली अधिकारिक, स्वाभाविक, रोचक तथा स्पष्ट है। भाषा-विज्ञान जैसे जटिल, गंभीर तथा शुष्क विषय को छात्रों को सरल और सुबोध रूप में हृदयंगम कराने में अत्यंत पटु हैं। वे अपने विषय के अधिकारी विद्वान् हैं तथा उन्हें उसका ज्ञान हस्तामलकवत् है। अध्ययन-अध्यापन का उन्हें व्यसन है।

वस्तुतः चिंतन-मननशील स्वभाव, नियमितता, स्वाध्याय, ईमानदारी, व्यवहार का खरापन, सादा-मिजाज, हंसमुख, गंभीरता आदि गुरुदेव के व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषतायें है। वे एक जन्मजात शिक्षक हैं, विवशतामय अथवा प्रयासजन्य 'मास्टर' नहीं। मेरी नियुक्ति के बाद मुझे लिखे गये उनके एक पत्र की पंक्ति—**'अध्यापक सदैव विद्यार्थी रहता है, जिसने विद्यार्थी के व्रत को त्याग दिया, वह अध्यापक अपने शिष्यों का गुरु नहीं बन सकता।'** में उक्त तथ्य का ही संकेत प्राप्त होता है। गुरुदेव से शिक्षण तथा लेखन के क्षेत्र में अभूतपूर्व सफलता अर्जित की है। वे निश्चय ही राष्ट्रीय स्तर में शिक्षक तथा लेखक हैं।

मैं एम० ए० के अतिरिक्त शोध-कार्य के दौरान भी गुरूजी के सम्पर्क में रहा हूँ। काव्य, साहित्यशास्त्र तथा समीक्षा से संबंधित किसी भी महत्त्वपूर्ण समस्या एवं जिज्ञासा को लेकर निस्संकोच भाव से विभाग में मार्ग पर तथा घर पर उनसे मिलता रहा हूँ। उन्होंने मेरी शंकाओं का समाधान अत्यंत स्नेह सौहार्द के साथ व्यावहारिक तथा बोधगम्य शैली में किया है। वे गहन और पेचीदा विषय को भी प्राकृतिक एवं दैनिक उपकरणों-क्रियाओं के उदाहरणों के माध्यम से सहज ग्राह्य बना देते हैं। गुरुदेव के ग्रंथों में भी व्याख्यात्मक तथा विश्लेषणपरक शैली प्रयुक्त हुई है, जो उनके सफल तथा परिपक्व अध्यापक होने का यथेष्ट प्रमाण है। इनकी कई कृतियों को विविध साहित्य-अकादमियों, संस्थानों द्वारा सम्मानित और पुरस्कृत किया गया है।

अध्यापक के रूप में गुरुदेव डा० सुमन जी के अनवद्य व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषता उनका संस्कारगत संयम है। यह संयम विवेकपूर्ण तथा आंतरिक है, ऊपर ओढ़ा हुआ आवरण मात्र नहीं। अध्यापन, समीक्षा तथा वार्तालाप तीनों ही क्षेत्रों में वाणी के स्खलन का कोई उदाहरण मुझे उनके भाषणों-कथनों में कभी सुनने को नहीं मिला। उनकी अनवरत ज्ञानसाधना भावयोग एवं कर्मयोग के माध्यम से 'भाषा-योग' की सीमा तक पहुची है। वस्तुतः प्रसंग चाहे सर्जना का हो अथवा भाषण का गांभीर्य का हो या व्यंग्य-विनोद का; सच्ची साधना के अभाव में स्वार्थी शास्त्राभ्यासियों की कोरी सतर्कता चेतना को कुंठित तथा भाषा को जड़ित बना देती है। डा० सुमन जी इन दुर्बलताओं से कोसों दूर हैं।

वर्तमान युग में जबकि सामाजिक-नैतिक तथा शैक्षिक मूल्यों के अवमूल्यन के कारण, शिक्षक के प्रति उपेक्षा का रवैया दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। शिक्षण-संस्थान एक 'मिल' का रूप लेते जा रहे हैं। कर्त्तव्य, दायित्व तथा श्रद्धा का स्थान जोड़-तोड़ एवं प्रतिस्पर्द्धा ने ले लिया है। "कुछ न होगा तो ले-देकर 'मास्टर' तो बन ही जायेंगे"—की मानसिकता प्रबल हो उठी है। शिक्षक की स्थिति 'कुली' के सदृश हो गयी है तथा विद्यार्थी का स्वरूप 'स्मगलर' जैसा होत ाजा रहा है, ऐसी स्थिति में डा० सुमन जो जैसे अनुभवी, योग्य, प्रतिबद्ध तथा सच्चरित्र शिक्षक की अनिवार्यता तथा उपादेयता और भी अधिक बढ़ जाती है।

वास्तव में ही गुरुदेव डॉ० अंबाप्रसाद जी 'सुमन' का शैक्षिक व्यक्तित्व अद्वितीय है। उनकी प्रतिभा सर्वतोन्मुखी है, अध्यापन-शैली परमाकर्षक तथा साहित्य-साधना अनुकरणीय है। वे एक आदर्श तथा निश्छल शिक्षक हैं। मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि उनके व्यक्तित्व-कृतित्व पर एक स्वतन्त्र ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है। मैं प्रभु से उनकी दीर्घायु तथा उत्तम स्वास्थ्य की मंगल-कामना करता हूँ।

—हिन्दी-विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
गोपेश्वर–२४६४०१ (चमोली)

शोधार्थियों के स्नेहमय सहायक

—प्रो० कमल पुंजाणी

बहुमुखी प्रतिभा के धनी तथा सारस्वत-साधना-रत डा० अंबाप्रसाद जी 'सुमन' के साक्षात् संपर्क में आने का अभी तक मुझे सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है। मैं तो अपने नाम आये उनके पत्रों और प्रकाशित "संस्कृति, साहित्य और भाषा" माध्यम से ही उनको जानता हूँ। सच तो यह है कि किसी का वास्तविक व्यक्तित्व जानने के लिए उसके पत्र ही सुलभ और सबल साधन हैं। मनीषियों के पत्र तो साहित्य की बहुमूल्य थाती होते हैं। विश्व विख्यात आंग्ल लेखक फ्रांसीस बेकन ने भी कहा है—"मेरे विचारों में विद्वज्जनों के पत्र मनुष्य के समस्त कथनों में श्रेष्ठ हैं।" डा० 'सुमन' जी भारतीय संस्कृति के गहन अध्येता, हिंदी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् और मूर्धन्य भाषा शास्त्री हैं। अतः उनके पत्रों से अनेक विद्या व्यसनी पाठक लाभान्वित हो सकते हैं।

डा० 'सुमन' जी 'हिंदी के उन मनीषियों में से हैं जो आवश्यक पत्रों का अविलंब उत्तर देते हैं। वे वासुदेवशरण अग्रवाल की परंपरा के पत्र-लेखक हैं। अपने गुरुवर डा० अग्रवाल जी के समान डा० 'सुमन' जी भी बड़ी तन्मयता से पत्र लिखते हैं और अपने मित्रों एवं शिष्यों की प्रत्येक जिज्ञासा का उत्तर हृदय की वाणी में देते हैं। यही कारण है कि "That which comes from heart goes to the hearts", के नियमानुसार उनकी बातें हमारे हृदय में तुरंत समा जाती हैं और फिर जीवन में रस बनकर कर्म के सौंदर्य को शक्ति प्रदान करती हैं। मेरे पास उनके कई पत्र सुरक्षित हैं, किंतु स्थानाभाव एवं विस्तार भय के कारण दो पत्रों पर प्रकाश डाल रहा हूँ। ये दोनों ही पत्र मुझे अपने शोधकार्य की अवधि में प्राप्त हुए हैं। मैं सन् १९७६ ई० से महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा में "हिन्दी पत्र-साहित्य" पर शोध कर रहा था। अभी हाल ही में मेरा शोधकार्य पूरा हुआ है। अपने शोध-विषय के विश्लेषण-विवेचन में जिन महानुभावों ने कृपा-पूर्वक मेरी सहायता की है, उनमें डा० 'सुमन' जी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

प्रथम पत्र २४–३–७८ का है। यह मुझे पत्रोत्तर के रूप में प्राप्त हुआ था। मैंने अपने पत्र में 'पुत्र' और 'पत्र' शब्द की व्युत्पत्ति में कुछ साम्य है या नहीं, यह जानने के इच्छा प्रकट की थी। पूज्यवर डाक्टर साहब ने दोनों का व्याख्यात्मक ढंग से अंतर स्पष्ट किया और अन्त में यह सुझाव भी दिया कि—"मैंने आपको

लिखा था कि पत्र-साहित्य के सम्बन्ध में आप श्री पं० बनारसी दास जी चतुर्वेदी से पत्र व्यवहार अवश्य करें। उन्होने इस क्षेत्र में बहुत काम किया है। वे पत्र-साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् हैं। मेरे गुरुवर डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल उनकी बहुत प्रशंसा किया करते थे।......" यह पूरा पत्र "संस्कृति, साहित्य और भाषा" शीर्षक ग्रन्थ के पृष्ठ ३५४ पर प्रकाशित है। इसका अंश मैंने अपने प्रबंध में भी दिया है।

इस पत्र से स्पष्ट होता है कि डा० 'सुमन' जी एक महान् शब्दमर्मी हैं। उनकी शब्द-संस्कृति के अद्‌भुत् मर्म से सुपरिचित होने के लिए उक्त ग्रंथ के साहित्य तथा भाषा खंड में संकलित पत्रों का अध्ययन अपेक्षित है।

द्वितीय पत्र ६–२–८० का है। यह पत्र श्रद्धेय 'सुमन' जी ने कृपापूर्वक मुझे लिख भेजा था। मेरे शोध-विषय के लिए यह एक अत्यंत आवश्यक पत्र था। इसका प्रारम्भिक अंश यहाँ उद्‌धृत कर रहा हूँ।

—८/७ हरिनगर, अलीगढ़
दिनांक ६–२–८०
[पत्र सं० १४४ (अ)]

आवश्यक

"प्रिय भाई पुंजाणी जी,

आज प्रिय शिष्य रामकृष्ण शर्मा (सोरों जि० एटा) मेरे पास आये थे, अपनी प्रति ('संस्कृति, साहित्य और भाषा' ग्रंथ की) लेने के लिए। आपका भी प्रसंग आ गया और 'चिट्‌ठी' शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में वार्तालाप होने लगा। मैंने यह भी उचित समझा कि 'चिट्‌ठी' शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में उस वार्तालाप का सार आपको भी लिख भेजूं। संभवतः आपके कुछ काम आ जाए।"

यह पत्र इस बात का प्रमाण है कि डा० 'सुमन' जी हिन्दी के विद्यार्थियों एवं शोधार्थियों के हित का कितना बारीक ध्यान रखते हैं। इस प्रकार के अनेक पत्र उनके उपर्युक्त पत्र-संग्रह में भरे पड़े हैं। इन पत्रों को पढ़ना एक दृष्टि से ज्ञान-यज्ञ ही कहलायेगा जिसके द्वारा हमें अनेक सारस्वत लोकों के दर्शन होते हैं। ईश्वर से यही प्रार्थना है कि वह डा० 'सुमन' जी की लेखनी को अधिकाधिक बल प्रदान करे जिससे अनेकानेक जिज्ञासु उनके वाङमय तप से लाभान्वित हों।

[हिंदी-विभाग, श्री वी० एम० मेहता म्युनि० कालेज,
अभिवगर (गुजरात)]

एक प्रभावी कुशल अध्यापक

—डा० बनवारीलाल द्विवेदी

अध्यापक चाहे जितना विद्वान् हो, उसकी मात्र विद्वत्ता छात्र को प्रभावित करने के लिए पर्याप्त हो, ऐसा नहीं है। उसकी अध्यापन-शैली ही, छात्र की चिंतन-धारा को विविध आयामों में परिवर्तित कर सकती है। डा० सुमन जी भाषा-विज्ञान के प्रवक्ता थे। भाषा-विज्ञान कितना वैज्ञानिक और भावुक छात्रों के लिए नीरस और शुष्क है? इस सत्य से हम सभी अनभिज्ञ नहीं हैं। डा० सुमन जी की अध्यापन-कला, भाषा-विज्ञान के नीरस और शुष्क तारों को सरस-स्तर से झंकृत कर देती है। वे गम्भीर विषय को हृदयंगम कराने के लिए, बहुधा हास्य का अवलंबन ग्रहण करते थे। दोनों हाथों को नृत्य की मुद्रा में उठाते हुए, स्मित हास्य के साथ उनके ये शब्द—"ची···ची···ची ची ची झल्लर पों-पों", आज भी अतीत के कुहासे से मेरे स्मृति-पटल पर, अनायास अंकित हो जाते हैं। मेरा यह दृढ़ विचार है कि भाषा-विज्ञान की जो अध्यापन-कला सुमन जी ने की है, वह शायद ही किसी विद्वान् के व्यक्तित्व में हो।

भारती के देव-मंदिर में, डा० सुमन जी ने भाषा-विज्ञान की उपासना इतने मनोयोग से की है कि स्वयं भाषा-विज्ञान उनके व्यक्तित्व के रूप में साकार हो गया है या वे तदाकार हो गये हैं।

यदि कबीर ने निर्गुण राम का नाम धारण कर लिया था, तो डा० सुमन जी ने नीरस भाषा-विज्ञान का। इसका प्रमाण यह है कि मैं जब कभी भी किसी पुस्तक के उद्धरण, उन्हें दिखाने गया, उन्होंने भाषा-वैज्ञानिक त्रुटियों का अंबार-सा खड़ा कर दिया। वे अधिकार पूर्वक चुनौती की मुद्रा में कहा करते थे, "मैं हिंदी के प्रकांड विद्वान् की भी कम से कम पांच भाषा-वैज्ञानिक त्रुटियाँ प्रस्तुत कर सकता हूं।" मैंने यह तथ्य डा० गिरधारीलाल जी शास्त्री को बताया, उन्होंने भी यही स्वीकार किया।

डा० सुमन जी की प्रतिभा, भाषा-विज्ञान तक ही सीमित रही हो, ऐसा नहीं है। उन्होंने हिंदी-साहित्य की सभी विधाओं पर असाधारण अधिकार कर लिया है। मैंने अनेक सभाओं में उन्हें वक्ता या आलोचक के रूप में देखा है। एक बार,

अलीगढ़ मु० विश्वविद्यालय में 'आधुनिक साहित्य' विषय पर एक गोष्ठी आयोजित की गयी थी। गोष्ठी में डा० नगेंद्र जी और डा० जगदीश गुप्त जी जैसे साहित्यिक महापुरुषों ने भाग लिया। विषय नयी कविता से संबंधित था। डा० सुमन जी ने रस-निष्पत्ति संबंधी जो आरोप प्रस्तुत किए, मुझे आज भी स्मृति है कि डा० जगदीश गुप्त जी ने अंत में मंद-मंद मुस्कान और दैन्य की मुद्रा में स्वीकार किया, "सुमन जी! आपके तर्कों का उत्तर तो हिंदी-जगत् में कोई दे ही नहीं सकता।"

—प्रवक्ता हिंदी-विभाग
किशोरी रमण महाविद्यालय, मथुरा

आर्यपुत्र : घर में और बाहर

—श्रीमती बसंती देवी शर्मा

बात एक घटना से शुरू करती हूँ। ग्रीष्म के आगमन की सूचना खरबूजों की उपस्थिति से मिल चुकी थी। शाम का समय था। ये चटाई पर बैठकर खरबूजे खा रहे थे। मैं खरबूजे की फाँकें छील-छील कर इन्हें देती जा रही थी। उसी समय अपने निकट बैठाकर ये बड़ी लड़की शरदो को वर्णमाला का ज्ञान करा रहे थे—क, का, कि, की……। अगर शरदो से उच्चारण में कहीं त्रुटि होती तो पंखे की डंडी उसकी पीठ पर आ बैठती और अगर उच्चारण सही होता तो खरबूजे की एक फाँक उसे मिल जाती। लड़की ऐसे देख रही थी, मानों सोच रही हो कि ऐसे तो पिता जी सब खरबूजे खा जाएँगे, मुझे तो एक-दो ही फाँक मिल पाएगी।

फिर शायद इनसे पढ़ने का अवसर आठ-नौ वर्षों तक आया ही नहीं। हृदय-स्थित भय इसका मुख्य कारण था। यही हाल तीनों लड़कियों का है। मैंने बहुत लोग ऐसे देखे हैं, जो अपने बच्चों को पढ़ाने के लिए चिपटे रहते हैं। इन्होंने कभी पूरा प्रश्न या पूरे पद का अर्थ बच्चों को नहीं बताया। कहते हैं, पहले स्वयं पढ़ो फिर जो पंक्ति या शब्द स्पष्ट न हो, वह मुझसे पूछो। सच तो यह है कि इनसे पूछने की अपेक्षा बच्चों को अपने गुरुजनों से पूछने में अधिक सुविधा थी, क्योंकि वे पिछला नहीं पूछते थे।

आप अपने लेखन के प्रति बड़े सतर्क हैं। मैं जब से इनके साथ आयी हूँ, मैंने इन्हें घर में अध्येता एवं लेखक के रूप में ही देखा है। विश्वविद्यालय से घर आने पर इनका पहला कार्य आये हुए पत्रों को देखना और आवश्यक पत्रों के उत्तर लिखकर तत्काल प्रेषित करवाना होता है। इस कार्य में चाहे रात्रि का आगमन ही क्यों न हो जाए। इन्हें न कभी दिन के भोजन की चिंता रही, न रात्रि के आराम की। इनके निरंतर साधनारत रहने के कारण ही, आज तक मुझे भी इनके प्रातः उठने तथा रात्रि के सोने के समय का सही ज्ञान नहीं हुआ है। जब मैं सोती हूँ, तब इनके कमरे की बत्ती जली होती है और इनको तख्त पर छोटा स्टूल रखकर उसके ऊपर कागज पर लेखनी से कुछ लिखते हुए देखती हूँ और जब उठती हूँ तब भी इन्हें उसी स्थिति में पाती हूँ। चाहे रात्रि के दो बजे हों या प्रातः के चार। आश्चर्य होता

है इनकी इस स्वाध्याय के प्रति लगन एवं शक्ति पर। इनके दो बार घोर अस्वस्थ होने पर मैंने बहुत प्रयत्न किया कि पढ़ना-लिखना कुछ कम हो जाए। मैंने एक प्रकार पहरा देकर भी देख लिया किंतु अधिक अस्वस्थता में थोड़े-से दिन तो मुझे कुछ सफलता मिली किंतु स्वस्थ होने पर फिर वही ढर्रा।

घर में इनका एक कमरा अलग है। इस कमरे में पढ़ने-लिखने में आप इतने व्यस्त रहते हैं कि बच्चों में से कोई भी उनके पास जाने का साहस नहीं जुटा पाता। यही कारण है कि अपने गुरु-तुल्य पिता श्री से एम० ए० और पी-एच० डी० करने तक कभी इनके कमरे में जाकर किसी भी बच्चे ने अपनी समस्या को नहीं सुलझाया। वे अपनी शंकाओं के निवारण हेतु यह प्रतीक्षा करते रहते थे कि वे कब छत पर बैठकर शेव करें, गुसलखाने में मंजन करें, स्नान करें या रसोई घर में भोजन करें। क्योंकि अपने कमरे में तो वे कभी खाली बैठे दिखाई नहीं देते। या तो हाथ में कलम लेकर कोई पुस्तक पढ़ते रहते हैं या कुछ लिखते रहते हैं। अगर कभी भूल से इनकी इस व्यस्तता के बीच किसी बच्चे ने कुछ पूछने की भूल कर भी ली तो परिणाम में या तो जोर की डाँट मिलती या फिर कोई तत्संबंधी ऐसा प्रश्न पूछ लिया जाता कि उसका उत्तर लिखने में उन्हें लगना पड़ता।

शिक्षा-जगत् में ख्याति-प्राप्त आप पारिवारिक जिम्मेदारियों से सदैव मुक्त रहे हैं। मैं ही घर की एवं बाहर की जिम्मेदारियों को पूरा करती रही हूँ। भाषा और साहित्य की बारीकियों का विश्लेषण करने वाले आप पारिवारिक मोटी-मोटी आवश्यकताओं से एकदम दूर ही रहे हैं। बीमारी हो या किसी की परीक्षा, जन्मोत्सव हो या विवाहोत्सव, सभी की संपंनता का कार्य-क्षेत्र मेरा ही है। इनका कार्य-क्षेत्र तो बस पढ़ना और लिखना है। यही वे अपने बच्चों से तथा अपने शिष्यों से चाहते हैं। कैसा विरोधाभास है कि जो पुस्तकों में रस खोजते हैं, अपने लेखों में उनका विश्लेषण करते हैं, वे ही परिवार रूपी मंच पर उपस्थित रस को नियंत्रित रखते हैं।

संबंधियों एवं पारिवारिक सदस्यों से उदासीन रहने वाले आप अपने साहित्य-कारों, कवियों, कलाकारों, शिष्यों एवं अध्यापक मित्रों के साथ कहकहे लगाते हुए आश्चर्य के कारण बन जाते हैं। जिनके मुखारबिंद से ज्ञान-चर्चा सुनने के लिए हम अवसर खोजते हैं, वे ही बाहर के व्यक्तियों को घंटों सस्वर स्वरचित कविताएँ सुनाकर दिव्य रस प्रदान करते हैं। इनकी उन कवि-गोष्ठियों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि आगंतुक उनके बहुत निकट हैं एवं भाग्यशाली हैं। उनकी अपेक्षा हम कुछ दूर हैं।

आपको मैंने घर की अपेक्षा बाहर बहुत उदार, दयालु, स्नेही एवं सहयोगी रूप में देखा है। मार्ग चलते हुए प्रत्येक परिचित से यथायोग्य कुशल-क्षेम पूछना, उसके कष्ट निवारण हेतु मार्ग सुझाना, उसकी सहायता करना, जैसे इनका स्वभाव बन गया है।

आपकी स्पष्टवादिता, कठोर अनुशासन-प्रियता एवं क्रोधी प्रकृति से परिचित रहने वाला शिष्य भी अपनी निकटता एवं कृपा-दृष्टि के लोभ को संवरण नहीं कर पाता। आपका क्रोध विद्यार्थी के जीवन को बनाने में वरदान सिद्ध होता है। आपके संपर्क में आने वाला लोहा, सोना बन जाता है। वह केवल पुस्तकीय ज्ञान ही प्राप्त नहीं करता अपितु आपके नियमित एवं अनुशासित जीवन से आचार-संहिता भी सीखता है। पिता-पुत्री को, माँ-बेटी को, छोटे बड़े को, गुरु-शिष्य को आपस में किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए—आदि का संकेत आप बात ही बात में अपने संपर्क में आने वाले को कर देते हैं। आपकी उपस्थिति में पूरा घर पुस्तकालय प्रतीत होता है, जहाँ न रेडियो की ध्वनि सुनाई पड़ती है न बच्चों का शोर-गुल।

आपके कमरे में सभी वस्तुएँ क्रमश: व्यवस्था में सदैव एक ही स्थान पर रखी रहती हैं। यही कारण है कि शहर से बाहर जाने पर भी आप यह बता देते हैं कि अमुक वस्तु या पुस्तक अमुक स्थान पर रखी है। ऐसी ही व्यवस्था आप दूसरे स्थानों पर भी चाहते हैं। अगर कहीं अव्यवस्था देखते हैं तो तत्काल ही टोक देते हैं।

कार्य की शीघ्रता एवं समय की पाबंदी आपके जीवन का मुख्य अंग बन चुकी है। चाहे पत्रिका पढ़ने से महाकाव्य पढ़ने तक का कार्य हो, चाहे पत्र लिखने से ग्रंथ-लेखन तक का कार्य हो, वह निश्चित समय तक ही पूरा होना चाहिए। चाहे किसी के यहाँ शादी-ब्याह का निमंत्रण हो, चाहे स्टेशन पहुँचना हो—समय से काफी पहले पहुँचना आपका सिद्धांत है।

शिक्षा-संस्था हो या धार्मिक स्थल, सभी स्थानों पर आपको मुख्य वक्ता के रूप में संमान के साथ आमंत्रित किया जाता है। आपके भाषण आपकी बहुज्ञता, सभ्यता एवं संस्कृति के प्रतीक हैं—आपके विचार एवं भावों के प्रतीक हैं। विभिन्न विश्वविद्यालय—मैसूर, पूना, जबलपुर, बंबई, कुरुक्षेत्र, मेरठ, आगरा, नेहरू कृषि विश्वविद्यालय आपके विशिष्ट भाषण-स्थल रहे हैं। आपकी विशिष्ट अभिरुचि अध्ययन, अध्यापन, लेखन, शोध-कार्य, तुलसी-साहित्य से संबद्ध प्रवचन तथा व्याख्यान में रही है।

आप सच्चे अर्थों में स्वाध्यायी हैं। आज छयासठ वर्ष की आयु में भी आपको अगर कोई सपेरा, मदारी, सक्का, कुम्हार आदि अपनी ठेठ ब्रजभाषा का प्रयोग करता हुआ मिल जाता है, तो उसे महीनों अपना मेहमान अथवा गुरु बनाकर उससे उसकी भाषा सीखते हैं।

—८/७ हरिनगर, अलीगढ़।

पिता जी पारिवारिक परिवेश में

—डा० (श्रीमती) वीणा शर्मा

मैंने अपने पूज्य पिता जी (डा० अंबाप्रसाद 'सुमन') को जब भी देखा, सरस्वती की साधना में लीन ही पाया। जब मैं छोटी-सी थी; सुबह उठकर देखती, तो पिता जी के कमरे की लाइट जली ही पाती; चाहे सुबह के ४ बजे हों या ५; और रात को भी १२–१ बजे तक वह पढ़ते ही रहते थे। पिता जी को पढ़ने-लिखने का एक तरह से कहा जाए, तो व्यसन ही है। अध्ययन और अध्यापन के सिवा उनको किसी भी बात में रुचि नहीं है। पढ़ने-लिखने के आगे तो उनको अपने खाने और सोने का भी ध्यान नहीं रहता। इसी वजह से पिता जी दो बार ऐसे बीमार पड़े हैं कि बचने की उम्मीद बहुत कम रह गयी थी। एक बार जब पिता जी ने अपना पी-एच० डी० का शोध-ग्रंथ लिखा था तब; और दूसरी बार अभी दो साल पहले बहुत बीमार रहे। उन्हें न नींद आती थी और न भूख ही लगती थी। ये ही दो रोग पिता जी को थे। इसका ही कारण था। इन्हीं दोनों की लापरवाही पिता जी ने अपनी सरस्वती-साधना में की थी। लेकिन ईश्वर की कृपा से योग्य डाक्टर मिल गये और पिता जी अब ठीक हैं। दूसरी बार में रोग से मुक्ति दिल्ली के डाक्टर एस० बी० माथुर ने दिलाई थी? पिता जी डा० एस० बी० माथुर के परम आभारी हैं और अब भी परमात्मा से उनके लिए मंगल-कामना करते रहते हैं।

अध्ययन और अध्यापन के क्षेत्र में पिता जी ने बहुत ख्याति प्राप्ति की है। पिता जी के १७ ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं और विभिन पत्र-पत्रिकाओं में उनके लगभग ३०० लेख भी प्रकाशित हैं। पिता जी बहुत से विश्वविद्यालयों में व्याख्यान देने के लिए भी गये हैं।

पिता जी के लिखने-पढ़ने में हमारी माता जी का बहुत बड़ा योगदान रहा है। सारे घर की व्यवस्था हमारी माता जी ही करती हैं। पिता जी को तो घर के बारे में कुछ भी मालूम नहीं है। लिखने-पढ़ने में भी हमारी माता जी ने पिता जी की बहुत सहायता की है। पी-एच० डी० ग्रंथ के छपते समय २० हजार शब्दों को अकारादि क्रम से लगाना और प्रूफ जँचवाना; रातों-रात प्रूफों की भाषा बोलना आदि हमारी माता जी पिता जी के साथ करती थीं। जब माता जी को नींद आने लगती थी, तब पिता जी कहते थे कि "जाओ आँखों में पानी लगाओ।" दिन भर सारे घर का काम करना, फिर रात भर जाग कर पिता जी के साथ काम कराना

कम मेहनत का काम नहीं था। हमारी माता जी पिता जी की सारस्वत-साधना के प्रति पूर्णतः समर्पित हैं।

पिता जी को हरएक काम की बहुत जल्दी रहती है। जब वे कहें, तभी वह काम हो जाना चाहिए। चाहे कोई खाना खा रहा हो, चाहे कोई सो रहा हो। यदि १०–१५ पत्र पिता जी के पास आए हैं, और पिता जी यूनिवर्सिटी से लौटकर आये हैं, तो सभी पत्रों के जबाब लिखकर और पोस्ट आफिस में डलवाकर ही पिता जी खाना खाएँगे, चाहे दोपहर के दो बजें या तीन। हमारी माता जी इंतजार में बैठी रहती हैं कि कब काम खत्म हो और पिता जी खाना खाएँ। पिता जी को गुस्सा भी बहुत आता है। यदि लिखने-पढ़ने में हमसे कोई गलती हो जाती थी, तो वे बहुत डाँटते थे। जब पिता जी को गुस्सा आता था, तब शिष्यों को भी बहुत डाँटते थे।

एक बार पी-एच० डी० के एक शिष्य श्री गयाप्रसाद शर्मा शोध के लिए छुट्टियों में घर आये हुए थे। उनसे लिखने में कुछ गलती हो गयी, तो पिता जी ने उन्हें बहुत डाँटा और कहा, "जाओ तुम पी-एच० डी० नहीं कर सकते। तुमको कुछ भी नहीं आता।" वह बेचारे सुबह उठकर हमारी माता जी के पास आये और सब सामान लेकर जाने लगे, तो हमारी माता जी ने पूछा क्या बात है? तो उन्होंने रात की सारी बात बतायी। माता जी बोलीं, "कोई बात नहीं है? जाओ नहीं, जब गुस्सा आती है, तब वे चाहे कुछ कह देते हैं, लेकिन उनका मतलब किसी बुरी भावना से नहीं होता। गुस्सा उतरने पर सब ठीक हो जाता है।" और यही हुआ। सुबह पिता जी उठे और फिर सब बातें ठीक प्रकार से बताने लगे। एक बार जिसने पिता जी की डांट सहन कर ली, उसको आगे जीवन में सफलता ही मिली।

पिता जी श्री लालबहादुर शास्त्री (तत्कालीन प्रधानमंत्री) के आदेश के पालनार्थ सन् १९६४ ई० में हिंदी विभागाध्यक्ष होकर मद्रास चले गये थे। वे वहाँ दो वर्ष रहे थे। दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के स्नातकोत्तर एवं शोध संस्थान-अध्यक्ष के रूप में। पिता जी वहाँ एकाकी ही गये थे। हम और हमारी माता जी अलीगढ़ ही रही थीं। पिता जी साथ में अपनी ८–१० पुस्तकें ही ले गये थे। उनकी सारी लाइब्रेरी अलीगढ़ में ही थी। उन्हें जो किताब अपनी लाइब्रेरी में से मद्रास मँगानी पड़ती थी, उसकी हुलिया, नाम, अलमारी का खाना और दाहिने से बाएँ (खाने में) उसका नंबर तक भी लिख भेजते थे। तब हमारी माता जी तीन हजार पुस्तको में से उस किताब को निकाल कर डाक से मद्रास भेजती थीं। हमें आश्चर्य था कि पिता जी को ३००० किताबों के स्थानों की याद किस तरह है? नाम और ठीक स्थान का पता कैसे है?

घर में पिता जी का अनुशासन बहुत कड़ा है। हम पिता जी से कुछ बात भी नहीं करते, डर की वजह से। हमको पिता जी न कहीं घुमाने ले जाते थे, न कहीं बाहर जाने ही देते थे। खुद भी छुट्टियों में कहीं घूमने नहीं जाते। बस अपने लिखने-पढ़ने में ही लगे रहते हैं। हमको भी अपने काम में लगाये रहते थे।

एक बार की बात, मेरी माता जी बोलीं कि लड़कियों से ज्यादा काम मत लिया करो। तो कहने लगे कि, "तुम्हारी होंगी ये माता जी, तुम तस्वीर में मढ़वा लो; मेरी तो बेटी हैं, काम कराऊँगा।"

ऐसी बात नहीं कि वह हमसे स्नेह न करते हों, लेकिन लिखने-पढ़ने में ऐसे लग जाते हैं कि उन्हें और कुछ खबर नहीं रहती। लेकिन जब कभी मूड में आते हैं; तब रात को या शाम को अच्छे-अच्छे किस्से और चुटकुले भी सुनाया करते हैं। सुनकर बहुत हँसी आती है। उस समय हम सोचते हैं कि ये पिता जी, और वह पिताजी जो कि लिखने-पढ़ने में लगे रहते हैं, क्या एक ही हैं।

हमारे पिता जी ने अपने जीवन में बहुत संघर्ष झेला है। घोर परिश्रम किया है। उन्हीं की प्रेरणा से हम तीनों बहनें (शारदा जीजी, मधु और मैं) पढ़ने में ठीक रहीं। मैंने रसायन-शास्त्र में पी-एच० डी० किया और बहन श्रीमती शारदा जी शर्मा ने हिंदी में डी० लिट्० किया और छोटी बहन मधु शर्मा संस्कृत में पी-एच० डी० कर रही है।

मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि पिता जी दीर्घायु हों, स्वस्थ रहें और अधिक से अधिक सरस्वती जी की उपासना करते रहें। पढ़ने की प्रेरणा हमें पिता जी के जीवन और अध्ययन से ही मिली थी।

—II / I /10
आर० सी० एफ० कालोनी,
बंबई—74

एक विशिष्ट पारिवारिक व्यक्तित्व

—कु० मधु शर्मा, रिसर्च स्कालर

डा० कमल सिंह जी का आग्रह है कि मैं अपने पिताजी (डा० अंबाप्रसाद 'सुमन') के विषय मे अपने कुछ विचार प्रस्तुत करूँ। अगर कमल सिंह जी पिताजी के विषय में केवल 'कुछ विचार' ही मांगते, तो लिखना शायद सरल होता। कुछ उनकी पुस्तकों के विषय में लिखती, कुछ उनके भाषणों के विषय में लिखती और कुछ उनके 'मानस-प्रेम' को लेकर लिखती। मगर उन्होंने तो पिताजी के पारिवारिक व्यक्तित्व के विषय में जिज्ञासा व्यक्त की है, और बस यही टेढ़ी खीर है। जिस व्यक्ति की सारी जिंदगी अब तक साहित्य-सेवा में व्यतीत हुई है और आगे भी उसी के लिए समर्पित है, उस व्यक्ति के पारिवारिक व्यक्तित्व के विषय में क्या कल्पना की जा सकती है?

मेरा जन्म अगस्त, १९५८ ई० में हुआ था। जब से होश संभाला है, पिताजी को उनके कमरे में मोटी-मोटी पुस्तकों के बीच कुछ ढूँढ़ते हुए ही पाया है। जब कभी वे हमारे कमरे में आते हैं, तब या तो भोजन करने आते हैं या फिर शायद अपने कुछ चुटकुले और चुटीले संस्मरण सुनाकर, पुस्तकों के गहन अध्ययन से थके हुए अपने मस्तिष्क को मनोरंजन का भोजन देने आते हैं। पिताजी के उन चुटकुलों में प्रायः हास्य-विनोद के ही चुटकुले अधिक रहते हैं। संस्मरणों में प्रायः अधिक संस्मरण आचार्य पं० किशोरीदास वाजपेयी, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, डा० नगेंद्र, डा० बनारसीदास चतुर्वेदी और पं० श्री नारायण चतुर्वेदी से संबंधित ही सुने हैं। कुछ संस्मरण पिताजी ने हमें अपने विद्यार्थी जीवन के भी सुनाये हैं। वैसे उनका अधिकांश समय उन्हीं के कमरे में गुजरता है। पुस्तकों के अध्ययन में तो वे ऐसे खो जाते हैं कि बीबी (मेरी माता जी) उनके भोजन का इंतजार ही करती रहती हैं—कब उनकी पुस्तकें बंद हों और कब वे भोजन की मेज पर आएँ।

पिताजी के भोजन की बात लिखते-लिखते एक बात याद आ गयी। हमारे पिताजी को खीर, पूड़ी-कचौड़ी और मूँग की दाल के मँगौड़े बहुत पसंद हैं। जिस दिन बीबी ये बनाती हैं, उस दिन उनको पिताजी की पुस्तक बंद होने का इंतजार नहीं करना पड़ता। वे स्वयं ही भोजन की मेज पर आकर बैठ जाते हैं और तब दृश्य बिल्कुल उल्टा हो जाता है—रोज-रोज तो भोजन की थाली उनका इंतजार

करती है; मगर उस दिन वे खुद भोजन की थाली का इंतजार करते दिखायी देते हैं।

हमारे पिताजी समय के बहुत पाबंद हैं। जो काम जिस समय पर कह दिया, उसी समय पर नहीं हुआ तो घर में अच्छा खासा हंगामा मच जाता है। उनका बस चले तो घड़ी की सुइयों की रफ्तार भी तेज कर दें। उनके इस समय की पाबंदी के कारण हम कभी-कभी बड़े बुरे फँसते हैं।

एक बार मुझे एक सज्जन के साथ सहारनपुर (बड़ी दीदी डा० श्रीमती शारदा शर्मा के पास) जाना था। 'बस' सुबह सात बजे जाने वाली थी। फिर क्या था—मुझे तीन बजे ही उठा दिया गया और चार बजे तक उन सज्जन के घर भी छोड़ आये। उनके घर मुझे तीन घंटे बैठना पड़ा। वे घंटे मेरे किस तरह कटे, बता नहीं सकती। न वहां मैं किसी से परिचित थी, न वे ही लोग मुझे अच्छी तरह से जानते थे।

अब सोच लीजिए कि मेरी वहाँ क्या हालत हुई होगी? आखिर, औपचारिक बातें भी कब तक होतीं? पिताजी को जब कहीं जाना होता है, तब भी यही करते हैं। 'ट्रेन' जाएगी आठ बजे, तो वे छह बजे ही स्टेशन पहुँच जाएँगे। पता नहीं दो घंटे का इंतजार वे कैसे कर लेते हैं?

पिताजी ने कभी हम (तीनों बहनों—शारदा शर्मा, वीणा शर्मा और मैं) पर लाड़ तो नहीं दिखाया, मगर वे इस ओर से उदासीन भी नहीं रहे शायद। 'शायद' देखकर चौंकिए नहीं आप लोग। बात यह है दरअसल, जो व्यक्ति अपनी भावना व्यक्त कर देता है, उसके विषय में हम आसानी से लिख देते हैं; लेकिन जो वैसा नहीं कर पाता, उसके विषय में तो 'शायद' ही लगाना पड़ता है। फिर भी कुछ घटनाएँ ऐसी हैं, जो उनके वात्सल्य को व्यक्त कर ही देती हैं। उनमें से एक यहाँ लिख रही हूँ।

वीणा दीदी जब शादी के बाद बंबई (पति के साथ) चली गयीं, तब पिता जी को उनकी याद आती थी। उन्होंने हमसे तो कुछ नहीं कहा, मगर एक दिन हमारे कमरे में आये और फ्रेम में लगी हुई वीणा दीदी की तस्वीर को उल्टा करके रख गये। मैं कमरे में आयी तो तस्वीर को उल्टा देखकर बीबी से पूछा—'यह तस्वीर आपने उल्टी की है?' तब पता लगा कि पिताजी ऐसा कर गये हैं। उस दिन से वह तस्वीर उठाकर मैंने अलमारी में रख दी।

वीणा दीदी की फोटो वाली घटना के बाद ही हम लोगों को पिताजी के भावुक हृदय की उस भाव धारा का पता लगा, जो बहुत धीमे वेग से प्रवाहित होती रहती है। तभी मुझे उन बातों का ठीक पता चला कि रामायण तथा महाभारत के भावात्मक प्रसंग सुनाते हुए हमारे पिताजी क्यों गद्‌गद कंठ हो जाते हैं? और क्यों गलदश्रु बने प्रसंग सुनाते-सुनाते कुछ क्षणों के लिए रुक जाते हैं?

इस प्रकार की बहुत-सी घटनाएँ हैं, जिनसे हम यह 'अनुमान' लगा लेते हैं कि हमारे पिताजी परिवार की ओर से उदासीन नहीं हैं; परंतु जो 'प्रत्यक्ष' हमारे

सामने आते हैं वे तो 'पिता' की अपेक्षा 'साहित्य-सेवी' ही अधिक हैं। पिताजी के ग्रंथों में दो-तीन ग्रंथों की प्रेस-कापियाँ उनके शिष्य सर्वश्री कमलसिंह, सुरेंद्रसिंह अत्रीश, रामसिंह अत्री, गयाप्रसाद शर्मा, विशनकुमार शर्मा आदि ने तैयार की थीं। उन शिष्यों की लगन और परिश्रम करने की निष्ठा तथा पिताजी द्वारा उनसे कार्य कराये जाने की प्रणाली से हम बहनों को भी बहुत प्रेरणा मिली है। हमारे पिताजी हमसे कम, ग्रंथों से अधिक बोलते-बतलाते हैं। हमारे पिताजी ने हमारे साथ जिंदगी में कुल चार-पाँच सिनेमा देखे होंगे।

साहित्य-सेवा के लिए पूर्णतः समर्पित हमारे पिताजी ने संभवतः इसीलिए अपनी प्रकाशित पुस्तक 'भाषा-विज्ञान सिद्धांत और प्रयोग' के मुख पृष्ठ के बाद वाले प्रथम पृष्ठ पर ये समर्पण-वाक्य लिखे होंगे—

"पत्नी श्रीमती बसंती देवी और बेटी शारदा, वीणा और ममता (मधु) को सस्नेह जिनकी विनोदार्थ कहीं घूमने और कुछ देखने की मुझसे प्रायः शिकायत ही रही है।"

—८/७ हरिनगर, अलीगढ़ (उ० प्र०)
२०२००१

मेरे नानाजी

श्री परीक्षित शर्मा 'आशु'

मैं गर्मियों की छुट्टियों में अथवा किसी अन्य अवसर पर अलीगढ़ आता हूँ, तो नानाजी को कई विषयों पर किसी से वार्तालाप करते देखता हूँ। प्रायः किसी-न-किसी व्याज से प्रातः से लेकर संध्या तक उनके पास आने-जाने वालों का तांता लगा रहता है। वे हमेशा पढ़ते ही रहते हैं। आपके अध्ययन की यह विशेषता है कि पढ़ते समय प्रत्येक पुस्तक पर और लगभग पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ पर, प्रत्येक प्रमुख पंक्ति के नीचे भी अक्सर निशान लगे रहते हैं। आपके इस गहन अध्ययन से वास्तव में मुझे प्रेरणा मिली है। सच पूछो तो मैंने महाभारत, रामायण एवं अनेक पुराणों की कथाएँ उन्हीं से सीखी हैं। यदि मैं कहूँ कि 'मेरा सब कुछ उन्हीं का है, तो इसमें भी अतिशयोक्ति नहीं।

यहाँ नानाजी के व्यक्तिगत कतिपय विशेष गुणों के विषय में कह रहा हूँ। आपके जीवन में विरोधाभासों का अद्भुत समन्वय देखने को मिलता है। वे एक ओर विनम्रता की प्रतिमूर्ति हैं, तो दूसरी ओर कठोरता के साकार उदाहरण। आपकी कठोरता का एक सबसे बड़ा गुण है कि उसमें गाँठ नहीं रहती। इसी से लगता है यदि वे एक क्षण कठोर हैं, तो दूसरो क्षण अत्यधिक सरल। सरलता में गुणी, ज्ञानी और चरित्रवान एवं साहसी के गुण अवश्य होते हैं, सो आप में इन सबकी छाया गहरे और व्यापक रूप में देखने को मिलती है। इस तरह आज वे इन सद्गुणों से मुक्त होकर ही सफलता के दुरूहगिरि शृंगों को लाँघते चले जा रहे हैं।

नानाजी में हिंदी और संस्कृत के साहित्यकारों के प्रति मैंने अनन्य श्रद्धा-भाव पाया। आपसे प्रेमचंद, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, डा० नगेंद्र आदि के अनेक जीवन-संस्मरण मैंने अनेक बार सुने हैं। उनसे मेरा मनोरंजन और ज्ञान-वर्धन हुआ है। आप यों ही चलते-फिरते में असाधारण और गूढ़ बातों को जितनी सरल शैली में स्पष्टता के साथ मस्तिष्क में भर देते हैं, उस कला का आपको आचार्य कहा जा सकता है। मैं नानाजी के साथ कई दिन जैन मंदिर खिरनी गेट (अलीगढ़) में घूमने गया हूँ। संस्मरणों और अन्य ज्ञान-विज्ञान की बातों को नानाजी ने वहां घूमते-फिरते ही में मुझे बता दिया है।

अंत में, मैं बस इतना ही कहूँगा कि हमारे परिवार की सफलता में आपने जितना व्यापक और गहरा तथा आत्मीयता-भरा योगदान किया है, बस उसी का सुफल हमारा परिवार आज भोग रहा है। हम ईश्वर से आपकी दीर्घायु की मंगल-कामना करते हैं। प्यार करने में नानीजी नानाजी से बहुत आगे हैं। नानाजी तो पढ़ते ही रहते हैं, हमसे कम ही बोलते हैं। परमात्मा से मेरी यही प्रार्थना है कि नानाजी की भाँति मुझ में भी परमात्मा विद्या और ज्ञान की लगन भर दे।

—द्वारा—डा० जगदीशचंद्र शर्मा,
(गोल कोठी के पास)
जैनबाग, चिलकाना रोड, सहारनपुर
(उ० प्र०)

एक साक्षात्कार

—डा० प्रेमकुमार

पिछले परिचय और सामीप्य के बाद से डा० सुमन के व्यक्तित्व का प्रभाव मुझ पर कुछ भिन्न प्रकार का रहा है। उनके पास जाने को मेरा मन भी होता रहा है, किंतु डर भी लगता रहा है। मन अक्सर इसलिए होता रहा है कि मुझे उनके पास से कुछ मिलता है। मैं जब भी उनसे मिला हूँ—घर में, सड़क पर, सफर में, किसी आयोजन में—मैंने पाया है कि ठहाकों के बीच डा० सुमन भाषा और साहित्य की गुत्थियों को सुलझाने में ही लगे दीखे हैं। कभी व्यर्थ की बातें करते मैंने उन्हें नहीं देखा। डर उनकी इस आदत से होता है कि वे वर्तनी और उच्चारण की गलतियाँ देखकर तुरंत अपनी मुद्रा बदल लेते हैं। जब तक गलती के लिए पश्चात्ताप कराकर अपनी समझ से उसे सुधार नहीं देते, उन्हें तब तक चैन नहीं पड़ता। उनके साथ के क्षण अक्सर स्मरणीय रहे हैं। इसी आदर और भय की मिली-जुली भावना के साथ मन के कोने में पनपती हिचक को दूर कर उनसे साक्षात्कार के लिये निर्धारित समय पर पहुँच गया। बिना समय बर्बाद किये डा० सुमन ने किताबों से भरे कमरे में तख्त पर लेटे-लेटे ही प्रश्नों के उत्तर दिये। प्रश्नों का क्रम शुरू करते हुए मैंने पूछा था—डा० साहब, आप अपनी वर्तमान सामाजिक-शैक्षणिक उपलब्धियों का श्रेय किसे देते हैं ?

डा० सुमन—मैं आज जिस रूप में हूँ, उसका सर्वप्रथम श्रेय अपने गुरुवर पं० गोकुलचंद्र शर्मा, जो धर्म समाज कालिज के हिंदी-विभाग के अध्यक्ष थे, को देना चाहूँगा। वे स्वयं बहुत अच्छे लेखक और कवि थे। हिंदी कविता और निबंध-लेखन के क्षेत्र में उन्होंने मुझे प्रोत्साहित किया। उन्हीं की प्रेरणा से मैंने इंटर किया। उनके बाद मैं बाबू गुलाबराय जी के संपर्क में आया। वे उन दिनों सेंट जान्स कालिज आगरा में थे और 'साहित्य-संदेश' के संपादक भी थे। उनके संपर्क से मेरे आलोचनात्मक लेख 'साहित्य-संदेश' में प्रकाशित हुए। जिनसे मिलकर मुझमें इतने अधिक अध्ययन की प्रवृत्ति जगी या कहूँ कि मेरा ज्ञान-दम्भ चूर-चूर हुआ, वे थे डा० वासुदेव शरण जी अग्रवाल मेरे द्वितीय गुरु। बनारस में अपने शोध-कार्य के दौरान उनकी व्यक्तिगत लाइब्रेरी की संनता और उनके अध्ययन की प्रक्रिया और प्रवृत्ति को देखकर मैं उनसे आश्चर्यजनक रूप से प्रभावित हुआ था।

आदरणीय अग्रजों में डा० नगेंद्र हैं। उन्होंने मुझे काफी प्रोत्साहन दिया है। मैं उनका आभारी हूँ। उन्होंने मेरे लिये अनेक कल्याण-कारी कार्य किये, लेकिन उन्होंने कभी उनका जिक्र तक नहीं किया; उनके उपकारों के विषय में मुझे अन्य लोगों से ही ज्ञात हुआ।

प्रश्न—परिवार के सदस्यों का भी तो आपके जीवन-निर्माण में कुछ योग होगा ?

डा० सुमन—क्यों नहीं ? मेरे बाबा श्री राधा वल्लभ शर्मा एक अच्छे कवि थे और पं० नाथूराम शंकर शर्मा (हरदुआगंज निवासी) के परम मित्र थे। मुझे याद है कि उनका और पं० नाथूराम जी शंकर का पत्र-व्यवहार कविता में (घनाक्षरी में) होता था। वे पत्र हमारे यहाँ एक बही में उतरे हुये रखे हैं। मैं उन दोनों कवियों के उन पत्रों को पढ़ता था। मैं कह सकता हूँ कि उनको पढ़ने से मेरे प्रारंभिक जीवन में साहिसिक अभिरुचि जगी; उन्हीं से मुझे कविता लिखने की प्रेरणा भी मिली।

बचपन में मैं अपनी माँ की अपेक्षा दादी के अधिक निकट रहा। बालमीकि रामायण, महाभारत और रामचरित मानस आदि पूरा साहित्य मुझे कथाओं के माध्यम से प्रसंगवश सुना दिया था। इसीलिए बाद में चलकर मेरी रुचि इन्हीं ग्रंथों में बनी। मैं अपने नाना लक्ष्मी नारायण (खैर) का भी विशेष ऋणी हूँ।

प्रश्न—आपके जीवन में पत्नी की भूमिका क्या रही ? उनकी भूमिका से आप संतुष्ट हैं ?

डा० सुमन—भूमिका बहुत अच्छी है। मैं ऐसे परिवार का व्यक्ति हूँ जो ज्यादा संपंन नहीं कहा जा सकता। इसलिए अपनी शिक्षा को मैं पहले पूरा नहीं कर सका था। अतः पत्नी के साथ जीवन-यापन भी किया और अध्ययन भी। पी-एच० डी०, डी० लिट्० या आगे अध्ययन में मेरी पत्नी का ही योगदान है। अपनी पत्नी के बल पर मैं गार्हस्थिक चिंताओं से मुक्त रहा हूँ, अधिकतर ग्रंथों और लेखन से ही मतलब रहा है। मैं अपने पारिवारिक जीवन से बिल्कुल संतुष्ट हूँ। इन्हीं सबके सहयोग से तो मैं साहित्य-सेवी हूँ।

प्रश्न—लंबे समय तक आप विद्या और विद्यार्थियों से जुड़े रहे हैं, क्या आपको लगता है कि शिक्षा के स्तर में कोई गिरावट आयी है ? यदि हाँ, तो क्यों ?

डा० सुमन—हाँ, एक लंबे समय से यह सब मैं देख रहा हूँ। मैं १९४३ से शिक्षा के क्षेत्र में आया और अब भी चल रहा हूं। सेवानिवृत्ति के उपरांत

यू० जी० सी० (भारत सरकार) द्वारा एक योजना में पाँच वर्ष के लिए शोधकार्य करने और कराने के लिए मेरी नियुक्ति अलीगढ़ विश्वविद्यालय के हिंदी-विभाग में हुई है। गत दस वर्षों से मुझे लग रहा है कि शिक्षा का स्तर निरंतर गिर रहा है। अब विद्यार्थी ज्ञान के भूखे नहीं मिलते। पहले विद्यार्थी जितने प्रश्नाकुल और तल्लीन थे; अब नहीं हैं। अध्यापक भी गिरा है, विद्यार्थी भी। आज सब चापलूसी, पैसे और राजनीतिक हथकंडों द्वारा लक्ष्यपूर्ति करना चाहते हैं। जो सामूहिक पतन हुआ है वह इस गिरावट के लिए जिम्मेदार है। अच्छा हो कि चरित्रवान् शिक्षक हों और सरकार उनका संमान करे।

शिक्षा प्रणाली में अध्यापक-चयन की पद्धति बदल देने पर भी प्रभाव पड़ेगा। वर्तमान स्थिति में भैया-भतीजावाद आसानी से सफल हो जाता है। शिक्षकों की नियुक्तियाँ यदि सरकार द्वारा आयोग आदि के माध्यम से होने लगें, तो ये छोटे स्तर पर होने वाली धांधलेबाजी बंद हो जायेगी।

एक और बात हो सकती है कि इंटर के बाद पढ़ने के लिए प्रत्येक विद्यार्थी को आगे प्रवेश न मिले। आगे का प्रवेश उनकी रुचि, क्षमता, और प्रतिभा के आधार पर ही हो, ताकि मेधावी छात्र ही आगे पढ़े। अनिवार्य शिक्षा एक सीमा तक ही होनी चाहिए।

प्रश्न—आपके हिंदी-सेवा से इस व्रत में नयी पीढ़ी की भूमिका के प्रति क्या प्रतिक्रिया है? हिंदी के भविष्य को लेकर आप क्या सोचते हैं?

डा० सुमन—स्वतंत्रता के बाद हिंदी भाषा राजनीति के दलदल में फंस गयी है—मुझे विश्वास हो चला है कि वर्तमान स्थितिओं में हिंदी भाषा को राष्ट्रीय स्तर पर वांछित रूप मिलना असंभव-सा है। भाषा के अध्ययन के विषय में मेरी आधुनिकता की पक्षधर नयी पीढ़ी से दो शिकायतें हैं।

एक है जीवन के संबंध में—यह पीढ़ी जीवन के यथार्थ को तो महत्त्व देती है, किंतु यह नहीं सोचती कि आदर्श के अभाव में शुद्ध यथार्थ किसी राष्ट्र के जीवन को ऊँचा नहीं ले जा सकता। रोटी, कपड़ा और मकान ही जीवन की चरम उपलब्धि नहीं है। उसके पीछे एक उदात्त स्वरूप भी है जो आदर्श के द्वारा ही आ पायेगा।

प्रेमचंद जी का कहना कि "यथार्थ में तो हम अपनी कमजोरियाँ देखते हैं। उन कमजोरियों के पीछे हम कुछ तो अच्छा

देखें। अच्छा देखने के ही साहित्य में सौंदर्य आता है। कला आती है।"

मेरी दूसरी शिकायत है भाषा के संबंध में—आज की पीढ़ी भाषा का अध्ययन नहीं कर रही है। अतः साहित्य को गहरे नहीं उतार पाती। आज के साहित्यकार विद्यार्थी का शब्द-भंडार बहुत कम है। साहित्य समझने के लिए शब्द और भाषा का अध्ययन आधारभूत सामग्री है। तारसप्तक की कविताओं को पढ़कर उनका शब्द-विन्यास, वाक्य-विन्यास कई जगह खटकता है। जैसे 'नरक' को 'नर्क' लिखा गया है। ऐसे ही अनेक उदाहरण हैं सप्तक-साहित्य में।

प्रश्न—क्या फर्क पड़ता है, यदि साहित्यकार भाषा का गहरा अध्ययन करके नहीं लिखता तो?

डा० सुमन—फर्क क्यों नहीं पड़ता? अहित यह होता है कि भाषा की ओर ध्यान न देने पर हम भाषा का लिखना-पढ़ना नहीं जान पाते। आने वाली पीढ़ी साहित्यकार को आदर्श मानकर उसके गलत प्रयोगों का ही अनुकरण करने लगती है। इधर नये प्रतीकों, नये उपमानों के नाम पर अनेक गलतियाँ हो रही हैं। अर्थ-बिंबों का अभाव पाया जा रहा है। इस सबकी सामाजिक आलोचना होनी चाहिए। अभिव्यक्ति की सफलता तो भाषा पर ही निर्भर है।

प्रश्न—आप भाषा और विचार की दृष्टि से किन-किन पुराने और नये लेखकों और कवियों से प्रभावित हैं।

डा० सुमन—भाषा और विचारों की दृष्टि से मैं लेखकों में रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी और डा० नगेंद्र से प्रभावित हूँ। कवियों में मेरे आदर्श कवि तुलसी और प्रसाद हैं। बाद के लोगों में अज्ञेय और मुक्तिबोध का प्रशंसक हूँ। केदार नाथ सिंह, गिरिजाकुमार माथुर, धूमिल की कविताएँ मुझे अच्छी लगती हैं। कहानी का पाठक मैं नहीं हूँ। कहानी और उपन्यास से मेरा हृदय तो संतुष्ट हो जाता है, किंतु मस्तिष्क नहीं; क्योंकि कथा-साहित्य में मुझे ऐसी भाषिक गहराई तथा दार्शनिकता नहीं मिलती, जिसके लिए मेरा मस्तिष्क अभ्यासी हो गया है। फिर भी दीप्ति खण्डेलवाल की कुछ कहानियाँ मुझे प्रभावित करती हैं। मेरे सामने भारतीय संस्कृति और समाज का उदात्त रूप रहता है। जो लेखक उसे छूकर चलता है, वही मुझे रुचता है। ललित निबंधकारों में मुझे विवेकीराय आकृष्ट करते हैं।

मैं इन दिनों हाथ में लगे शोधकार्य में जुटा हूँ अतः नये

साहित्य को आंशिक रूप में ही पढ़ पाता हूँ। हाँ, विभिन्न स्तरीय पत्रिकाओं को अवश्य पढ़ लेता हूँ।

प्रश्न—इस समय आप किस शोधकार्य में लगे हैं ? और आगे कुछ और भी करने की इच्छा है ?

डा० सुमन—इन दिनों में भाषा शास्त्र से संबंधित एक शोध-कृति—**'तुलसीकृत कवितावली का व्याकरणिक कोश'** में लगा हूँ। इच्छा यह है कि यदि मुझे दस रिसर्च स्कालर मिल जाएँ, तो मैं हिंदी का एक वृहत्-व्युत्पत्ति मूलक कोश तैयार कराना चाहता हूँ।

प्रश्न—आपने भाषा और साहित्य के क्षेत्र में कई काम किये हैं। आप अपने किस काम से सर्वाधिक संतुष्ट हैं ?

डा० सुमन—तुलसी पर मैंने तीन ग्रंथ लिखे हैं। उनमें से जिसको लेकर मुझे अधिक संतोष मिला है वह है, **'रामचरित मानसः वाग्वैभव'** इसे विद्वानों ने बहुत सराहा है और यह उत्तर प्रदेश राज्य और डालमिया पुरस्कार समिति, नई दिल्ली से पुरस्कृत भी हुआ है।

उससे पहले डा० वासुदेव शरण जी अग्रवाल के निर्देशन में तैयार की गयी ब्रजभाषा की जनपदी शब्दावली से भी मुझे संतोष है। यह ग्रंथ सात वर्ष में तैयार हुआ था।

प्रश्न—कुछ लोग भाषा विज्ञान को नीरस कहते हैं ? आपने अध्ययन का मुख्य क्षेत्र यही क्यों बनाया ?

डा० सुमन—भाषा विज्ञान मुझे बिल्कुल नीरस नहीं लगता। जो लोग ऐसा कहते हैं संभवतः वे ऐसे अध्यापक से पढ़े हैं, जो उसे पढ़ाना नहीं जानते या उनके संस्कार नहीं होंगे। मैं संस्कृत-परिवार में पैदा हुआ। व्याकरण से ही मेरे अध्ययन का प्रारम्भ हुआ। बाद में मैंने कई भाषाएँ भी पढ़ीं। उसके बाद मेरी सहज रुचि इसी में हो गयी। सर्जक को साहित्य-सर्जना में जो आनंद आता है, वही मुझे शब्द के विश्लेषण में आता है। किसी गणितज्ञ को जो आनंद गणित की समस्याएँ हल करने में आता है, वही मुझे शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ करने या उसका निर्वचन करने में आता है। शब्द के प्रकृति-प्रत्यय के साथ जो शास्त्र अपेक्षित अर्थ पर विचार करता है, वह निर्वचन शास्त्र कहा जाता है। यास्क प्रथम निर्वचन कर्त्ता हैं। आज का शैली-विज्ञान एक प्रकार से भारतीय निर्वचन शास्त्र का ही विकास-विस्तार है, जिसके गर्भ में काव्य शास्त्र भी समाविष्ट है।

प्रश्न—भाषा के क्षेत्र में आप किन कार्यों को उल्लेख्य मानते हैं।

डा० सुमन—अवधी के क्षेत्र में डा० बाबूराम सक्सेना, ब्रजभाषा में डा० धीरेंद्र

वर्मा, सर्वांगीण दृष्टि से डा० सुनीति कुमार चटर्जी, सुत्पत्ति के क्षेत्र में डा० वासुदेव शरण अग्रवाल और व्याकरण के क्षेत्र में आचार्य पं० किशोरीदास वाजपेयी के कार्य श्लाघनीय ही हैं। डा० अग्रवाल हिंदी एक का व्ययुत्पत्ति कोश तैयार कर रहे थे। पर देहावसान के कारण प्रकाश में नहीं छाया। उस कोश की सामग्री उनके पुत्र पर अप्रकाशित रूप में है। डा० रामविलास शर्मा ने भी अभी एक पुस्तक लिखी है "आर्य और द्रविड भाषा परिवारों का संबंध।" उसमें एक नयी उत्तेजनात्मक उपस्थापना की गयी है।

आधुनिक भाषा विज्ञान जिस गणित मूलक पद्धति को आधार मानकर आगे बढ़ रहा है, उससे में सहमत नहीं हूं। यह साहित्य से कटता जा रहा है। साहित्य से कटने वाले भाषा विज्ञान का में हिमायती नहीं हो सकता। अधिकतर भाषा-शास्त्र को साहित्य में योग देने तक सीमित रहना चाहिए। भाषाशास्त्री का धर्म साहित्य की भाषा में मर्म के समझाने में ही है।

प्रश्न—शैली-विज्ञान पर दिये जा रहे अतिरिक्त जोर पर आपका क्या विचार है?

डा० सुमन—शैली विज्ञान कोई नितांत नूतन सिद्धांत नहीं है। भारतीय काव्य-शास्त्र और व्याकरण-शास्त्र में पहले से उपस्थित सिद्धांतों को व्यवस्थित रूप में वैज्ञानिक ढंग से एक जगह रख दिया गया है। शैली-वैज्ञानिक अध्ययन की मौलिकता-नवीनता यह है कि यह आलोचना की पूर्व दो कसौटियां—व्याकरण और काव्यशास्त्र की नयी पारिभाषिक शब्दावली के साथ एक पूर्णांगी रूप में प्रस्तुत करता है। इस नये विज्ञान ने दोनों को मिलाकर एक कर दिया है। इस एकीकरण में वैज्ञानिकता भी आ गयी है। प्राचीन शास्त्रों में वैज्ञानिकता का अभाव था। आज के आलोचकों को इससे एक स्थान पर अनेक मान्य कसौटियाँ मिल जाएँगी, जो अलग-अलग बहुत पढ़कर भी नहीं मिल पातीं।

प्रश्न—भाषा के क्षेत्र में कार्य करने के लिए अभी क्या-क्या संभावना हो सकती हैं?

डा० सुमन—अनेक क्षेत्र हो सकते हैं। हिंदी का जन्म, हिंदी और उसकी उप-भाषाओं का जन्म जिन अपभ्रंश भाषाओं से हुआ है, उन सभी अपभ्रंश भाषाओं का भाषाशास्त्रीय अध्ययन अभी शेष है। जब यह अध्ययन पूरा हो जाएगा, तब निर्णयात्मक रूप में हम कह सकेंगे कि हिंदी और उसकी बोलियों की जननी कौन-कौन सी भाषाएँ हैं।

प्रश्न—इस अवस्था में आपका दैनिक कार्यक्रम प्रायः क्या रहता है ? पढ़ने-लिखने में अब पहले की अपेक्षा कमी तो आयी ही होगी ?

डा० सुमन—मैं प्रायः प्रातः चार बजे उठता हूँ। शौचादि से निवृत्त होकर अध्ययन कार्य में जुट जाता हूँ। प्रायः मेरा अध्ययन तख्त पर बैठकर होता है। यदि अधिक देर बैठे-बैठे थक जाता हूँ, तो तख्त पर मेज लगाकर खड़े-खड़े अध्ययन—लेखन करने लगता हूँ। लेखन-कार्य मुझे इतना प्रिय है कि उसे करते समय भोजनादिकरने की भी याद नहीं रहती; जिसका दुष्परिणाम शरीर को भोगना भी पड़ा है, भीषण रूप से जीवन में दो बार।

मैं आज से दस साल पहले जितना सोचता-लिखता था या विषय में गहरा उतरता था; उससे कहीं ज्यादा आज सोचता-लिखता और गहरा उतरता हूँ। पर अब इसमें एक शारीरिक अभाव यह हो गया है कि मुझे रात में नहीं दीखता। अतः रात का पढ़ना-लिखना बंद-सा हो गया है।

प्रश्न—आपने जो अध्ययन अध्यापन और लेखन किया है, उसके मूल्यांकन से आप संतुष्ट हैं अथवा नहीं ?

डा० सुमन—मैंने साहित्य-सर्जना में जो कुछ लिखा, चाहे पत्र-पत्रिकाओं में या ग्रंथों के रूप में, उसका विद्वानों ने आदर किया। मुझे पुरस्कार मिले। उस सबके मूल्यांकन के विषय में मुझे कोई शिकायत नहीं है। भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय के केंद्रीय हिंदी निदेशालय में पारिभाषिक शब्दावली निर्माण के लिए मुझे निरंतर पंद्रह वर्ष तक वहाँ पर भाषाविद् विशेषज्ञ सदस्य के रूप में नियुक्त किया गया और मेरी सेवाओं को सराहा गया। केवल एक शिकायत है एक विश्व-विद्यालय से, जिसकी मैंने बीस-बाईस वर्ष सेवा की, किंतु वहाँ के अधिकारियों ने मेरा उचित मूल्यांकन नहीं किया। इसलिए मुझे बाहर भी जाना पड़ा। खैर इसका मुझे बहुत मलाल नहीं। हिंदी-जगत् से मुझे पर्याप्त संमान मिला है। मिल रहा है।

लौटते समय डा० सुमन की विद्वत्तापूर्ण बातें मेरे मस्तिष्क में गूँज रही थीं। मुझे लगा कि इस समय शब्दों की दुनिया के प्रति दो ही समर्पित व्यक्ति हैं—एक श्रीवर आचार्य किशोरदास वाजपेयी और दूसरे डा० अंबाप्रसाद 'सुमन'।

—अशोक भवन
मानसिंह गेट, अलीगढ़–२०२००१
(उ० प्र०)

कृतित्वमय व्यक्तित्व

—डा० कमल सिंह

एक अच्छा लेखक, अच्छा वक्ता, अच्छा अध्यापक—ये तीन महान् गुण एक ही व्यक्ति में मिलने कठिन हैं। यदि एक ही व्यक्ति में इन गुणों की त्रिवेणी संगम कर ले, तो निश्चित ही ऐसा व्यक्तित्व एक तीर्थ के समान होगा। डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' में ये तीनों गुण अनायास ही समाहित हैं।

सत्तरह ग्रंथ और विभिन पत्र-पत्रिकाओं में लगभग तीन सौ लेख, मात्रा की दृष्टि से, थोड़े नहीं कहे जा सकते। इस प्रकाशित सामग्री के अतिरिक्त अपने मित्रों और शिष्यों को लिखे अप्रकाशित पत्र भी उनकी लेखन-क्षमता के साक्षी हैं। अप्रकाशित पत्रों का महत्व तो संबंधित व्यक्ति ही जान सकते हैं, किंतु उनकी प्रकाशित सामग्री के महत्व के दो प्रमाण दिये जा सकते हैं। एक तो, सरकार तथा अन्य संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत होना तथा दूसरा, देश-विदेश के उच्च कोटि के विद्वानों द्वारा मुक्त कंठ से प्रशंसा किया जाना। पुरस्कृत ग्रंथ हैं—(१) कृषक जीवन संबंधी ब्रजभाषा शब्दावली, भाग १ और २ (२) हिंदी और उसकी उप-भाषाओं का स्वरूप (३) रामचरित मानस : वाग्वैभव (दो संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत) (४) रामचरित मानस-भाषा-रहस्य।

गुण और महत्त्व की दृष्टि से आपकी अधिकांश रचनाएँ अपने-अपने क्षेत्र में अनूठी बन पड़ी हैं। 'कृषक जीवन संबंधी ब्रजभाषा शब्दावली' भारत की विभिन बोलियों एवं उपभाषाओं की शब्दावली के अध्ययन का आधार-ग्रंथ बन गया है। सैकड़ों शोध-प्रबंध इस ग्रन्थ के आधार पर लिखे गये हैं किंतु इस ग्रंथ की महत्ता यह है कि उससे बढ़कर काम आज तक नहीं हो पाया है। प्रो० सुनीति कुमार चटर्जी ने इस कार्य को जार्ज ग्रिअर्सन के 'बिहार पीजेंट लाइफ' के समान महत्त्व का बताया है—"This book will have as great a value as Grierson's 'Bihar Peasent Life' for the language and rural culture of a considerable part of the Brajbhasha area......This will be a book to keep and you can be congratulated on doing what has not been done on such a large scale for any of the Indian language."[1]

'रामचरित मानस : वाग्वैभव' के संबंध में डा० विनयमोहन शर्मा का मत द्रष्टव्य है—"तुलसी पर अब तक विभिन दृष्टियों से लिखा गया है, पर आपकी

---

१. संस्कृति, साहित्य और भाषा, पृ० ५११

दृष्टि उन सबसे भिन और मौलिक है। यह ग्रंथ निश्चित ही वर्षों की साधना का सुफल है, जिसकी महत्त्वपूर्ण प्रामाणिकता ग्रंथ के प्रति पृष्ठ पर झलकती है। आपने 'मानस' का जिस तन्मयता से अध्ययन किया है, वह हर एक के लिए संभव नहीं। आपने सचमुच घोर परिश्रम किया है। ग्रंथ वस्तुतः शब्दशास्त्र और काव्यशास्त्र के नये वातायन खोलता है।"[२]

अभी पिछले वर्ष (सन् १९७९ ई० में) 'संस्कृति साहित्य और भाषा' नाम से आपके पत्रों का प्रकाशन विद्वानों में बहुचर्चित हो गया है। इस ग्रंथ के माध्यम से डा० सुमन जी का समग्र व्यक्तित्व एवं कृतित्व उजागर हो जाता है। इस ग्रंथ की देश के विद्वानों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है—" 'संस्कृति, साहित्य और भाषा' ग्रंथ नाम को तो डा० सुमन के पत्रों का संग्रह है, किंतु वस्तुतः यह एक छोटा विश्वकोश बन गया है। मैं तो डा० 'सुमन' की बहुज्ञता पर मुग्ध हो गया हूँ। वह डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के सच्चे उत्तराधिकारी हैं।"[३] 'संस्कृति साहित्य और और भाषा' ग्रंथ और आपके ज्ञान और व्यक्तित्व का जीवनचरित्र है; ऐसा जीवन चरित्र कि आप पर कोई कभी कहीं एक भी पंक्ति न लिखे, तब भी आप देश की विद्वान्मंडली में सदा उत्तम आसन पर सुशोभित प्रतिष्ठित रहेंगे।"[३क]

डा० सुमन का साहित्यकार प्रारम्भ में कवि रूप में उभर कर आया था। एक जमाना था, जब कवि संमेलनों में वे छाये हुए थे। किंतु वे धीरे-धीरे नितान्त बौद्धिक एवं तार्किक शब्द-मीमांसा एवं भाषा-शास्त्र के पर्वत-शिखर पर चढ़ने लगे और काव्य-धारा से दूर होते गये। समीप से देखने पर आज भी विदित होता है कि भाषा शास्त्र एवं साहित्य-शास्त्र के पर्वत के नीचे एक काव्य-धारा निरंतर प्रवाहित हो रही है। डा० सुमन की दो कविताओं के दो संग्रह प्रकाशनाधीन हैं।

डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' को जिसने भी एक बार किसी गोष्ठी अथवा सभा में बोलते हुए सुन लिया है, वह निश्चित रूप से यह स्वीकार करेगा कि उनकी वाणी में संमोहन शक्ति है। वे विषय-वस्तु का ऐसा बिंब निर्माण करते हैं कि श्रोता शीघ्र ही साधारणीकृत हो जाता है। रस के सागर में वे इस प्रकार डुबकी लगाते हैं कि अनायास ही श्रोता भी उन्हीं के साथ डूबने-उतारने लगते हैं। आपकी यह तन्मयता सर्वत्र द्रष्टव्य है। श्री हरिशंकर शर्मा को लिखे एक पत्र में आपने लिखा है—"मान्यवर शर्मा जी ! मैं मानस के प्रसंग को पढ़ते समय गद्गद् हो जाता हूँ और मेरे नेत्र अश्रुपात करने लगते हैं, जब भरत जी ने चित्रकूट जाते समय उस स्थल को देखा था, जहां शिंशुपा वृक्ष के नीचे भगवान् राम जी, सीता जी और लक्ष्मण जी धरती पर सोये थे।

वन की कठोर धरती पर कुशाओं की साथरी बिछाकर भरत के श्रद्धेय

---

२. 'रामचरित मानस : वाग्वैभव' के रैपर पर उद्धृत डा० विनयमोहन शर्मा का मत।

३. डा० प्रभुदयाल मीतल

३क. श्री पं० कन्हैया लाल मिश्र 'प्रभाकर'

राम जी और सीता जी सोएँ, और भरत जी उस स्थल को देखें ! जो सीता जी पलंग से कभी नीचे पाँव न रखती हों, वह भरत के कारण कंकड़ों, पत्थरों तथा काँटों की धरती पर नंगे पाँवों चलें और भूखी-प्यासी वन में बिताएँ—यह भावना भरत के मन को कितनी व्यथा देती होगी ? मैं इसका अनुमान नहीं लगा सकता। ......ऐसा ही परम कारुणिक स्थल जब मैं वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकांड में सीता-निर्वासन के प्रसंग में पढ़ता हूँ, तब भी मेरे आँसू नहीं रुकते।"[४]

कोई झाँककर देखे, यह आँसू-भरा व्यक्तित्व ही 'सुमन' जी का मूल व्यक्तित्व है। गोल-गोल चेहरे पर चमकती हुई आँखें, मुस्कराहट से भरा हुआ चेहरा, गोष्ठियों में ठहाके—मुझे लगता है, महाभारत की इस पंक्ति को बार-बार दोहराने का प्रयास एवं परिणाम है—'अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे, न दैन्यं न पलायनम्।' जिस प्रचंड प्रभंजन में अच्छे-अच्छे नाविक सागर में विलीन हो जाते हैं, उसी प्रचंड प्रभंजन में अपनी नाव को आगे बढ़ाने के लिए इस पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है। ऐसे पुरुषार्थ वाले व्यक्ति ही महान् होते हैं। डा० सुमन जी का नाविक आज भी गीत गाता हुआ आगे बढ़ रहा है।[५]

डा० सुमन जी के वास्तविक वक्ता का रूप उनके मानस-व्याख्याता के रूप में देखा जा सकता है। आपने विभिन संदर्भों में सैकड़ों बार 'रामचरित मानस' का व्याख्यात्मक पाठ किया है। 'मानस' के मार्मिक प्रसंगों की व्याख्या करते हुए वे ऐसे जादुई वातावरण की सृष्टि करते हैं कि श्रोता तन्मय हो जाते हैं। आपकी यह कला बचपन में ही प्रकट होने लगी थी। अपनी जन्मभूमि शेखूपुर (अलीगढ़) ग्राम में विद्यार्थी 'सुमन' का छुट्टियों में जब आगमन होता तो वे 'मानस' का व्याख्यात्मक पाठ करते। आस-पास के गाँवों में यह प्रसिद्धि हो गयी थी कि पं० श्यामसुंदर लाल का एक लड़का रामायण बहुत अच्छी पढ़ता है—पंडित जी से भी अच्छी और लोग उनके मानस-पाठ को सुनने के लिए उमड़ पड़ते थे। मानस-पाठ की यह कला आज चरम सीमा को पहुँच गयी है।

जहाँ तक आपके अध्यापक रूप का संबंध है, सो वह आपके व्यक्तित्व और जीवन का केंद्र-बिंदु है। "डा० 'सुमन' उन कृती अध्यापकों में से हैं जिनके लिए साहित्य का अध्ययन यांत्रिक कर्म न होकर आत्माभिव्यक्ति की एक जीवंत प्रक्रिया है। उन्होंने अपने अध्ययन अध्यापन को लेखन के साथ संबद्ध कर उसे सर्जनात्मक रूप प्रदान किया है। उनका अध्ययन विस्तृत गंभीर और ग्रहणशील है, उनमें विवेक और सुरुचि का मणिकांचन योग है।"[६]

आपने अपने विद्यार्थियों को संपूर्ण ईमानदारी से पढ़ाया है—कक्षा में और कक्षा से बाहर भी। सारा जीवन विद्यार्थियों को समर्पित कर दिया है। यह

४. संस्कृति, साहित्य और भाषा, पृ० २२७, २८
५. संस्कृति, साहित्य और भाषा, पृ० ७९, ८०
६. डा० नगेन्द्र

ईमानदारी और समर्पण ही पढ़ाते समय तल्लीन बना सका हैं। शिष्यों द्वारा आपके अध्ययन-प्रशंसा में अतिरंजना की गंध आ सकती है किंतु अन्य विद्वानों की प्रशंसा से वास्तविकता की पुष्टि ही होगी। एक मत पर्याप्त होगा—"प्रेरणात्मक शिक्षण में डा० सुमन सच्चे अर्थों में प्रेरक शिक्षक हैं। डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' के अध्यापन में ऐसा जादू है कि छात्रों को पता नहीं चलता कि कब घंटा शुरू हुआ और कब खत्म हुआ? शिक्षण में ऐसा जादू तभी आया करता है, जब कोई अध्यापक स्वयं प्रेरित होकर पढ़ाता है।"[७]

डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' के व्यक्तित्व और कृतित्व को पृथक्-पृथक् करके देखना कठिन काम है। उनका जीवन ही कृतित्वमय है। आपके व्यक्तित्व की हर घटना या तो किसी कृतित्व का आधार होती है या फिर सीधे-सीधे कोई कृतित्व। चाहे परिवारीजनों से बात-चीत कर रहे हों, चाहे यात्रा में यात्रियों से गप्-शप् लड़ा रहे हों, चाहे शिष्यों की कुशलता पूछ रहे हों, चाहे मित्रों में ठहाके लगा रहे हों; सभी जगह साहित्य, संस्कृति, भाषा, धर्म आदि की प्रचुर सामग्री उद्भूत होती मिलेगी। तात्पर्य यह है कि उनका समग्र व्यक्तित्व माँ सरस्वती से आच्छादित है। यही कारण है कि उनके पत्रों में मात्र राजी-खुशी नहीं होती वरन् उनमें भाषा-साहित्य की समस्या अथवा समस्या का समाधान निहित रहता है। सामान्य रूप से लिखे जाने वाले पत्रों में भी असामान्य विवेचन निहित रहता है। ऐसे बहुत सारे पत्रों के उदाहरण दिये जा सकते हैं। यहाँ केवल एक पत्र का उदाहरण देकर बात स्पष्ट की जा रही है—

—८/७ हरिनगर, अलीगढ़–२०२००१
२५–२–८०
पत्र सं०—१७७

विशेष

प्रियवर आशीर्वाद !

सभी अभीष्ट उत्तर मिल गये होंगें और अभीष्ट सामग्री भी मिल गयी होगी।

आज तुम्हें कुछ बातें–ई प्रत्यय के संबंध में लिख रहा हूँ। तुम्हारे शीर्षक का लिपिगत रूप देखकर मैं विषय पर प्रकाश डालना आवश्यक समझता हूँ। तुमने कार्ड में लिखा है—'गोरख-रचनाओं की भाषायी प्रामाणिकता'।[८] 'भाषायी' क्या ?

७. संस्मरणीय शिक्षक और उनके शैक्षिक गुण—सं० डा० प्रेमनारायण टण्डन, पृ० २८५

८. 'सरस्वती' (फरवरी ८०) के अंक में मेरा उक्त लेख प्रकाशित हुआ था। मैंने अज्ञानवश 'भाषाई' के स्थान पर 'भाषायी' शब्द लिखा और पत्रिका में भी 'भाषायी' ही छपा था।

उपर्युक्त शीर्षक में **'भाषायी'** शब्द-वर्तनी अशुद्ध है। भाषा+य्+ई खंड करके बात कुछ सिद्ध नहीं होती। इसमें 'य्' कहाँ से आ गया ?

संस्कृत का 'हस्ती' शब्द है। मूलतः हस्त+ —इन्=हस्तिन् प्रातिपदिक है। इससे प्रथमा विभक्ति के एकवचन में 'हस्ती' बनता है। अर्थात् मूलतः —इन् प्रत्यय था, जो विभक्ति की अवस्था में —ई हो गया। 'विद्यार्थिन्' से बना 'विद्यार्थी'।

एक दूसरा फारसी प्रत्यय —ई है, जो भाववाचक संज्ञा का सूचक है। फा० तारीक=अंधकारपूर्ण। फा० तारीक+ —ई=तारीकी=अंधकार, अँधेरा।

एक तीसरा —ई प्रत्यय है, जो अरबी का है। अ० किताब=पुस्तक। अ० किताब+ —ई=किताबी=पुस्तक संबंधी। 'मेरा तो यह **किताबी** मामला है।' 'किताबी' शब्द विशेषण है, जो —ई प्रत्यय के योग से बना है। —ई प्रत्यय विशेषण-सूचक है।

'किताब[1] शब्द उच्चारण की दृष्टि से व्यंजनांत है। 'किताब्' शब्द में —ई प्रत्यय जोड़कर **'किताबी'** बना। यह विशेषण है। अ० 'मामूल' से 'मामूली' विशेषण है। इसी प्रकार **'भाषा'** शब्द आकारांत है। इसमें —ई प्रत्यय विशेषण सूचक है। अतः 'भाषाई' लिखना चाहिए, 'भाषायी' नहीं।

प्रति, शुभैषी,

डा० कमलसिंह 'सुमन'

एस० डी० कालेज, मुजफ्फरनगर।

विद्वान् पहचानें कि यह व्यास शैली है अथवा समास शैली ? शैली कुछ भी हो, बात एकदम स्पष्ट हो जाती है। यह स्पष्टीकरण की शैली ही डा० सुमन जी की मूल शैली है। इतनी बारीक दृष्टि और मनन-विवेचन आज बहुत कम विद्वानों में है। अगर है भी तो आज के मशीनी युग में इस बारीक मनन-विवेचन को किसी अन्य के लिए पत्र में बिना पूछे ही लिख भेजना निश्चित रूप से बहुत कम विद्वान् कर पाते हैं। आँधी और तूफान के बीच कंटकाकीर्ण यात्रा करने वाले डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' अपने मनन-चिंतन को अपने मित्र और शिष्यों को देते रहे हैं, यह बहुत बड़ी बात है। यह सब करते रहने में उनके मन को प्रसंनता रही है, यह उससे भी बड़ी बात है, "मेरा मन प्रसंन है कि मैंने विष पीते हुए अपने शिष्यों को अमृत दिया है।"[९] यह काम कोई शिव ही कर सकता है। औरस पुत्र के अभाव की पूर्ति ईश्वर ने इस रूप में की है कि अपने शिष्य उन्हें पुत्रवत् प्रिय हैं। संतोष यह है कि वे अपने पुत्रों के आचरण से संतुष्ट भी हैं। उनके पुत्रों की संख्या बहुत बड़ी है।

किसी तथ्य को स्पष्ट वहीं कर सकता है, जिसे तथ्य स्वयं स्पष्ट हो। असमंजस से निकल कर अपनी स्पष्ट धारणा कोई सुलझा हुआ विद्वान् ही बना सकता है। डा० 'सुमन' जी की सभी धारणाएँ, सभी मान्यताएँ स्पष्ट हैं। इन धारणाओं

---

९. संस्कृति, साहित्य और भाषा, पृ० ७९।

और मान्यताओं से सभी का सहमत होना संभव नहीं है और न आवश्यक ही है। आवश्यक है, विषय-वस्तु की अपनी स्पष्ट धारणा। 'संस्कृति, साहित्य और भाषा' की धारणाओं में यह बात अधिक देखी जा सकती है। विभिन्न संस्कृतियों, भाषाओं, जातियों और धर्मों से खचाखच भरे हुए इस विशाल देश में एक मत होना नितांत असंभव है। फिर, "किसी प्रश्न के उत्तर के मूल में उत्तरदाता के ज्ञान, अनुभव तथा मनोभूमि की प्रमुखता होती है। इसीलिए एक प्रश्न के उत्तर अनेक भी हो सकते हैं।[१०] भगवान राम द्वारा चंद्रमा में श्यामता का कारण पूछे जाने पर सुग्रीव, विभीषण, अंगद और हनुमान के द्वारा दिये गये अलग-अलग उत्तरों का उदाहरण देते हुए डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' निवेदन करते हैं कि, "ठीक उसी प्रकार इस ग्रंथ के पाठकों की सेवा में मेरा निवेदन है कि मुझसे जो प्रश्न पूछा गया है, उसका उत्तर मैंने अपने अध्ययन और अपनी मनोभूमि के आधार पर ही दिया है।"[११] फिर सर्वमान्यता खोजना व्यर्थ है।

डा० सुमन जी के व्यक्तित्व की एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि उन्हें जहाँ से भी, जो भी सहयोग सहायता मिली है अथवा मिलती है, उसका उल्लेख वे खुले दिल से करते हैं और उन व्यक्तियों के प्रति मौखिक रूप से तथा अपने ग्रंथों में कृतज्ञता-ज्ञापन कर आत्म-तोष प्राप्त करते हैं। कृतज्ञता-ज्ञापन का गुण किसी निर्मल-हृदय व्यक्ति में ही उपलब्ध हो सकता है। डा० 'सुमन' जी का अंतःकरण एकदम उज्ज्वल है। उज्ज्वल अंतःकरण वाला व्यक्ति स्पष्ट वक्ता भी होता है और स्पष्ट वक्ता कभी गलत बात सहन नहीं करता। सत्ता की चापलूसी भी नहीं करता। डा० 'सुमन' जी ने गलत बात का विरोध अपने दैनिक जीवन में तथा साहित्य-रचनाओं में अनेक स्थानों पर अनेक रूपों में किया है। यही कारण है कि आप साहित्य को अपनी स्पष्ट धारणाएँ और मान्यताएँ दे सके हैं।

विभिन्न परिवेशों और परिस्थितियों में एक ही व्यक्ति के अनेक व्यक्ति-रूप दृष्टिगत होते रहते हैं। किसी एक ही रूप को देखकर उसके संपूर्ण व्यक्तित्व की धारणा बनाना अपरिपक्वता ही कही जाएगी। वास्तविक व्यक्तित्व को जानने के लिए उसके मूल व्यक्ति-रूप को हृदयंगम करना होगा।

समस्याओं के समाधान के लिए आदरणीय डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' के पास बैठा हुआ हूँ। डाक से एक पत्रिका आती है। उसके 'रैपर' को फाड़ कर फेंक देता हूँ और निर्देशानुसार किसी काम के लेख को पढ़ना प्रारंभ करता हूँ। पढ़ते-पढ़ते कुछ नोट करने योग्य सामग्री मिलती है। गुरु जी से खाली कागज माँगता हूँ। "उठाओ वह 'रैपर' और देखो, दूसरी ओर वह जगह खाली है। लिखो उसी पर। कितना बड़ा कागज है। अगर कोई चीज उपयोग में आ सकती है तो ऐसे नहीं फेंकनी

---

१० वही, लेखक का आत्म-निवेदन, पृ० ढ।

११. वही, लेखक का आत्म-निवेदन, पृ० ण।

चाहिए।" मैं उस 'रैपर' को उठाकर उस पर लिखने लगता हूँ। सोचता हूँ, ऐसी भी क्या कंजूसी ?

एक 'किसान स्क्वैश' की बोतल खरीद कर लाने का आदेश होता है। मैं पास की एक दुकान से तुरंत साढ़े सात रुपये की एक बोतल ले आता हूँ। 'कितने की आयी है ?' 'साढ़े सात की।'

'भाव ले लिया था दो-चार दुकानों से या एक ही से ले आये ?' 'मैं तो एक ही से ले आया हूँ।'

'जाओ दो-चार दुकानों से भाव पूछो और अगर कम की मिले तो उसे लाओ और इसे वापस करो ?'

मैं दोबारा जाता हूँ। दो-चार दुकानों पर भाव लेता हूँ। वास्तव में अंतर है। सात रुपये से लेकर आठ रुपये तक में वही 'किसान स्क्वैश' की बोतल। मैं उसे वापस करता हूँ और सात रुपये वाली खरीद लाता हुँ। फिर भी रास्ते में सोचता हूँ, आठ आने के लिए इतनी परेशानी।

गुरु जी को सुबह दिल्ली जाना है। साथ में कुछ सामान है। गुरु जी को छोड़ने के लिए रेलवे स्टेशन तक मुझे भी जाना है। सारा सामान शाम से ही व्यवस्थित करना प्रारम्भ हो जाता है। कितने बजे जगना है, कितने बजे चलना है, सब रात को ही निश्चित हो जाता है। छः बजे की गाड़ी पकड़ने के लिए घर से चार बजे चलना है। चार बजे चलने के लिए दो बजे उठना है। मैं सोचता हूँ, समय की इतनी भी क्या चिंता ? दो घंटे पहले पहुँच कर क्या करेंगे ? पाँच बजे जग कर भी गाड़ी पकड़ी जा सकती है। लेकिन नहीं, चार बजे घर से चल पड़ते हैं।

सड़क पर आकर एक रिक्शा दिखाई देती है। अँधेरे-से में रिक्शे वाले का चेहरा साफ दिखाई नहीं दे रहा है। स्टेशन चलने की बात होती है। वह पैसे नहीं बताता। अपनी गरीबी का दुःखड़ा रोने लगता है। गुरु जी एक बार उसके समीप जाकर उसे ध्यान से देखते हैं। कुछ संदेह-युक्त होकर रिक्शे वाले का नाम पूछते हैं। वह जैसे ही अपना नाम कामता और अपना गाँव खरई बताता है, गुरु जी एकदम 'बाबू कामता प्रसाद' कहकर रिक्शे वाले से लिपट जाते हैं और फूट-फूट कर रोने लगते हैं। रिक्शे वाला भी रोने लगता है। मैं आवाक्-सा खड़ा सोचने लगता हूँ, कोई स्वप्न तो नहीं देख रहा ?

'बाबू कामता प्रसाद जी, मैं आपके रिक्शे में नहीं बैठूंगा ? ऐसी स्थिति आपकी हुई कैसे ?' रिक्शे वाला अपनी 'ओखा' की कहानी सुनाता है। गुरु जी बराबर रोते रहते हैं।

प्राइमरी कक्षाओं में पढ़ने वाले 'अंबे' को गणित के सवाल हल करानेवाले, अपने घर शरण और स्नेह देनेवाले, धन-धान्य और मान-संमान से परिपूर्ण ,इलाके

में रुतबा रखने वाले पटवारी बाबू कामता प्रसाद जी रिक्शा चलाएं और 'सुमन' जी उसमें बैठे ! 'बाबू कामता प्रसाद जो, मैं आपके रिक्शे में नहीं बैठूंगा।'

रिक्शे के साथ पैदल-पैदल आगे बढ़ते हैं। बीते हुए दिनों की बातचीत करते हुए लगभग दो फलांग चलकर कुछ रिक्शे वाले खड़े मिलते हैं। बाबू कामता प्रसाद जी उनमें से एक रिक्शे वाले लड़के को बुला लेते हैं। हम दोनों उसमें बैठ जाते हैं। गुरु जी बाबू कामता प्रसाद जी को दस रुपये का नोट हठ-पूर्वक दे देते हैं। स्टेशन पहुँच कर गुरु जी रिक्शे वाले से पूछते हैं, क्या तुम कामता प्रसाद को जानते हो ? 'मैं उन्हीं का लड़का तो हूँ।' गुरु जी के काटो तो खून नहीं। अरे यह क्या ? तुम बाबू कामता प्रसाद जी के लड़के हो ? लो।' कुछ नोट निकाल कर उसकी मुट्ठी में दबा देते हैं। रिक्शे के पैसे अलग से। 'एक हफ्ते बाद अपने पिता जी को लेकर मेरे घर आना।

प्लेटफार्म पर आते ही विदित होता है कि रेलगाड़ी अगर लेट न होती तो अब तक चली गयी होती।

अब मैं गुरु जी के व्यक्तित्व के बारे में सोचता हूँ। गाड़ी पकड़ने के लिए बेचैन, घर से दो घंटे पूर्व चलने वाले क्या ये वे ही गुरु जी हैं, जिन्हें समय और गाड़ी का बिल्कुल भी ध्यान नहीं रहा ? आठ आने के लिए तपती दोपहरी में एक मील घुमाने वाले और खाली कागज के नाम पत्रिका के 'रैपर' को उठवाने वाले क्या ये वे ही गुरु जी हैं, जिन्होंने एक रिक्शे वाले को दस रुपये का नोट थमा दिया और दूसरे की मुट्ठी में कुछ नोट चुपके से दबा दिये ? व्यक्तित्व के इस वैविध्य में एक समरसता छिपी हुई है। लक्ष्य में एकतानता निहित है। और यही महापुरुष का लक्षण है।

डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' का व्यक्तित्व बहुमुखी प्रतिभा-संपंन बहु-आयामी एकतान तल्लीन साधक का कृतित्वमय व्यक्तित्व है। उनका व्यक्तित्व मितव्ययिता और उदारता का व्यक्तित्व है। वे स्वांत सुखाय और परांतःसुखाय का जीवन जी रहे हैं। कांटों में खिलकर भी अपने सौरभ को बिखेर रहे हैं। हम उनके सौरभ को बिखेरते रहने के आकांक्षी हैं।

—हिंदी-विभाग
सनातन-धर्म महाविद्यालय,
मुजफ्फरनगर, (उ० प्र०)।

अगस्त १९५३ ई०
डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' की पी-एच० डी० परीक्षा
की मौखिकी के उपरान्त
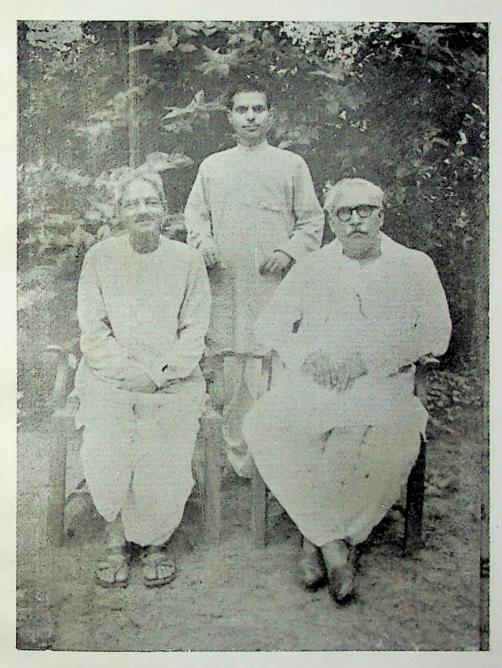
(१) डा० वासुदेव शरण अग्रवाल (२) श्री अंबाप्रसाद 'सुमन'
(३) डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी

१२ जनवरी, १९६३ ई०
डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' को डी० लिट्० उपाधि मिलने के सुअवसर पर
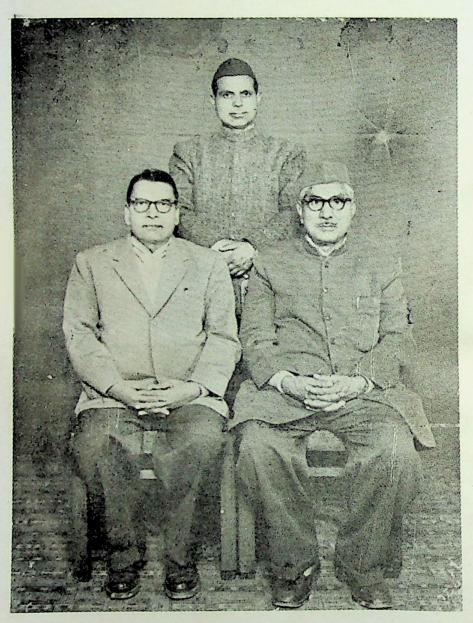
डा० अंबाप्रसाद 'सुमन'
डा० उदयनारायण तिवारी, डा० बाबूराम सक्सेना

कृतित्व

१. परिचय

२. मत/अभिमत

३. मत/मान्यताएं

४. कृति-मूल्यांकन

५. सामूहिक विवेचन

परिचय

प्रकाशित/अप्रकाशित रचनाएं

—श्री राकेश शर्मा

१. ग्रंथ—

(१) वाङ्मयी (हिंदी-साहित्य की सभी विधाओं की संक्षिप्त विवेचना) भारत प्रकाशन मंदिर, सुभाष रोड़, अलीगढ़, सन् १९४९ ई० ।

(२) आदर्श विभूतियाँ (महान् आदर्श पुरुषों की कथात्मक गाथा) गयाप्रसाद एण्ड संस, आगरा, सन् १९४९ ई० ।

(३) अछूत और हम (हरिजन-समस्या का समाधान) भारत प्रकाशन मंदिर, सुभाष रोड़, अलीगढ़, सन् १९४९ ई० ।

(४) साहित्यरत्न-दिग्दर्शन, भाग १, २ और ३ (हिंदी-काव्य के प्रतिनिधि कवियों की मीमांसा), भारत प्रकाशन मंदिर, सुभाष रोड़, अलीगढ़, सन् १९५१ ई०, १९५२ ई० ।

(५) कृषक-जीवन संबंधी ब्रजभाषा शब्दावली भाग १ व २ (ब्रजभाषा के लोक शब्दों का व्युत्पत्तिमूलक अध्ययन) [लेखक का पी-एच० डी० उपाधि का शोध-प्रबंध], हिंदुस्तानी एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद, सन् १९६० ई० में प्रथम भाग, सन् १९६१ ई० में द्वितीय भाग (उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा संमानित तथा पुरस्कृत) ।

(६) हिंदी भाषा (अतीत और वर्तमान), विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, सन् १९६५ ई० ।

(७) हिंदी और उसकी उपभाषाओं का स्वरूप, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, सन् १९६६ ई० (उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा संमानित तथा पुरस्कृत) ।

(८) भाषा विज्ञान : सिद्धांत और प्रयोग, प्रवीण प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली, सन् १९६९ ई० ।

(९) मानस-शब्दार्थतत्त्व, विज्ञान भारती, १४६७-वजीरनगर नई दिल्ली-३, सन् १९७१ ई० ।

(१०) रामचरित मानस : वाग्वैभव (तुलसीकृत रामचरित मानस का शब्द-शास्त्रीय तथा काव्यशास्त्रीय अध्ययन) विज्ञान भारती, १४६७, वजीर-नगर, नई दिल्ली—३, सन् १९७३ ई० (उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा संमानित तथा पुरस्कृत तथा श्रीराम कृष्ण हरजीमल डालमिया पुरस्कार समिति : नई दिल्ली द्वारा संमानित तथा पुरस्कृत) ।

(११) रामचरित मानस भाषा रहस्य (तुलसीकृत रामचरित मानस का भाषा-शास्त्रीय अध्ययन), बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना—४, सन् १९७४ ई० (उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा संमानित तथा पुरस्कृत) ।

(१२) संस्कृति, साहित्य और भाषा (पत्रात्मक शैली में), बासंती प्रकाशन, हरिनगर, अलीगढ़, सन् १९७९ ई० ।

(१३) संशोधित—हिंदी प्रयोग, ले० रामचंद्र वर्मा, साहित्यरत्न माला कार्यालय, २० धर्मकूप, बनारस, छठा संस्करण, सन् १९५६ ई० ।

(१४) सुबोध व्याकरण और रचना, ले० व्यथित हृदय, श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा, सन् १९६८ ई० ।

२. संकलित लेख—(क) ग्रंथों में—

(१) समीक्षा की समीक्षा (ले० प्रभाकर माचवे), साहनी प्रकाशन, दिल्ली, सन् १९५३ ई० ।

(२) हिंदी साहित्य का बृहत इतिहास, षष्ठ भाग, रीतिकाल (संपादक डा० नगेंद्र), नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी सन् १९५८ ई० ।

(३) व्रज और व्रजभाषा (संपादक सेठ गोविंद दास एवम् रामनारायण अग्रवाल) भारतीय विश्व प्रकाशन, दिल्ली, सन् १९५९ ई० ।

(४) साहित्यार्चन, (संपादक श्री सत्यप्रकाश मिलिंद) फ्रैंक ब्रदर्स एण्ड कंपनी, दिल्ली ६ सन् १९६० ई० ।

(५) आधुनिक हिंदी कवियों की काव्य-कला, (संपादक डा० प्रेमनारायण टंडन), हिंदी साहित्य भंडार, लखनऊ, सन् १९६१ ई० ।

(६) दिनकर (संपादक डा० सावित्री सिन्हा), राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, सन् १९६७ ई० ।

(७) निराला (संपादक डा० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'), राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, सन् १९६९ ई० ।

(८) बिहारी का काव्य (संपादक हरिमोहन मालवीय); सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, सन् १९६९ ई० ।

(९) लोक साहित्य की रूप-रेखा (संपादक डा० कृष्णचंद्र शर्मा) अमित प्रकाशन, गाजियाबाद, सन् १९७२ ई० ।

(१०) हिन्दी साहित्य का इतिहास (संपादक डा० नगेंद्र) नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, २३ दरियागंज, दिल्ली ११०००६ ।

(११) ज्ञानमूर्ति आचार्य वासुदेवशरण (संपादक कृष्ण वल्लभ द्विवेदी) वासुदेव ज्ञानपीठ, १३ शिवाजी मार्ग लखनऊ–१, सन् १९७४ ई० ।

(१२) डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र (संपादक वृंदावन दास) साहित्य प्रकाशन, नयी सड़क, दिल्ली, सन् १९७४ ई० ।

(१३) अशोकवन : एक समीक्षा, गोकुलचंद्र शर्मा अभिनंदन ग्रंथ सन् १९५७ ई० ।

(१४) ब्रजभाषा : उद्‌गम और विकास, राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन अभिनंदन ग्रंथ, सन् १९६० ई० ।

(१५) आचार्य वाजपेयी और उनका शब्द-चिंतन, आचार्य किशोरी दास वाजपेयी : व्यक्तित्व और कृतित्व, सन् १९६१ ई० ।

(१६) हिंदी भाषा में लिंग विधान, बंबई हिंदी विद्यापीठ : रजत जयंती ग्रंथ, सन् १९६३ ई० ।

(१७) महादेवी वर्मा की भाषा का स्वरूप, महादेवी वर्मा अभिनंदन ग्रंथ, सन् १९६४ ई० ।

(२८) मेरे उपनामरासी श्री क्षेमचंद 'सुमन'; एक व्यक्ति एक संस्था, सन् १९६६ ई० ।

(१९) दर्शन और जीवन दर्शन, रामानंद शास्त्री अभिनंदन ग्रंथ, सन् १९७० ई० ।

(२०) अपभ्रंश, ब्रजी और अवधी में–ऐं प्रत्यय, रामानंद शास्त्री अभिनंदन ग्रंथ, सन् १९७० ई० ।

(२१) ब्रजभाषा काव्य की देन और दिशा, प्रेरक साधक श्री बनारसीदास चतुर्वेदी अभिनंदन ग्रंथ, सन् १९७० ई० ।

(२२) बाबू जी की भाषा शैली, बाबू गुलाबराय स्मृति-ग्रंथ सन् १९७० ई० ।

(२३) साहित्यगत भावनाभूमि पर उत्तर दक्षिण एक हैं, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास का स्वर्ण जयंती ग्रंथ, सन् १९७१ ई० ।

(२४) डा० सहल और भाषाशास्त्र, कन्हैयालाल सहल : व्यक्तित्व और कृतित्व सन् १९७२ ई० ।

(२५) कारक और विभक्ति की संकल्पना, बा० वृंदावन दास अभिनंदन ग्रंथ, सन् १९७५ ई० ।

(२६) आचार्य वाजपेयीकृत राष्ट्रभाषा का प्रथम व्याकरण, आचार्य किशोरीदास वाजपेयी और हिंदी शब्द शास्त्र, सन् १९७८ ई० ।

(२७) कबीर दर्शन में 'उन्मुनि' और 'सहज समाधि', परमार्थपथिक श्री स्वामी भजनानंद ग्रंथ, सन् १९७९ ई० ।

(ख) पत्र-पत्रिकाओं में—

१. 'हिंदी कारकों पर वैज्ञानिक विचार'—सप्त सिंधु, पटियाला, सितंबर, १९३० ई० ।
२. 'सूरकाव्य में रंगों की संयोजना'—मानवता, अकोला—दिसंबर १९५० ई० ।
३. 'कृष्ण भक्ति और सूर-सागर'—व्रजभारती, मथुरा, आषाढ़-भाद्रपद सं० २००८ वि.
४. 'संगीत, कला और ब्रजकाव्य'—ब्रजभारती, मथुरा आश्विन-मार्गशीर्ष सं० २००८ वि.
५. 'अवधी और व्रजभाषा की उकारांत संज्ञाएँ'—साप्ताहिक हिंदुस्तान, नयी दिल्ली, १९ जनवरी, सन् १९५३ ई० ।
६. 'हिंदी व्याकरण में कारक और क्रियाएँ—साप्ताहिक हिंदुस्तान, नयी दिल्ली, १३ दिसंबर, सन् १९५३ ई० ।
७. 'पाश्चात्य और भारतीय काव्यशास्त्री'—अवंतिका, पटना, अगस्त १९५३ ई० ।
८. 'ध्वनि और ध्वनिकाव्य'—साहित्य संदेश, आगरा, अक्टूबर १९५३ ई० ।
९. 'काव्य की आत्मा और उसके विवेचक आचार्य'—साहित्य संदेश, आगरा, मई १९५३ ई० ।
१०. 'हम काव्य वृत्तियाँ किहें माने' साहित्य संदेश, आगरा, मई, १९५४ ई० ।
११. 'तुलसी पर सूर का आलोक'—साहित्य संदेश, आगरा, जुलाई, १९५४ ई० ।
१२. विरोध, विरोधाभास और विषम अलंकार की विवेचना' उपर्युक्त, जून, १९५४ ई० ।
१३. 'छायावाद और रहस्यवाद विभिन मत,' साहित्य संदेश, आगरा, १९५४ ई० ।
१४. 'ब्रजमाधुरी के चतुर चितेरे महाकवि सूर' साप्ताहिक हिंदुस्तान, नयी दिल्ली, ९ मई, १९५४ ई० ।
१५. हिंदी भाषा और उसमें प्रयुक्त शब्दावली', सरस्वती संवाद, आगरा नवंबर, १९५५ ई० ।
१६. 'जागृतिः जागर्ति'—कल्पना, हैदराबाद, सितंबर १९५५ ई० ।
१७. 'संगीत कला और हिंदी का गीतकाव्य'—कल्पना, हैदराबाद, फरवरी १९५५ ई० ।
१८. 'खस और खसखस', साप्ताहिक हिंदुस्तान, नयी दिल्ली, ११ जुलाई १९५४ ई० ।

१९. 'डा० वासुदेवशरण अग्रवाल कृत 'पद्मावत की संजीवनी टीका' साहित्य संदेश, आगरा, वर्ष १७, अंक ४।
२०. 'सेनापति और बिहारी'—सरस्वती संवाद, आगरा, वर्ष १, अंक ७।
२१. 'हिंदी के कृष्ण भक्त मुसलमान कवियों की भक्ति-भावना' साहित्य संदेश, आगरा, वर्ष १८, अंक २।
२२. हिंदी के उपन्यास : प्रेमचंद के पूर्व और पश्चात्'—साहित्य संदेश आगरा, वर्ष १९, अंक १।
२३. 'कृषक जीवन संबंधी शब्दावली'—हिंदी अनुशीलन, भारतीय हिंदी परिषद, प्रयाग, वर्ष ९, अंक १—४।
२४. 'काव्य-वृत्ति'—अवंतिका (काव्यालोचनांक) पटना, वर्ष २, अंक १, १९५४ ई०।
२५. 'क्या तुलसी सूर से प्रभावित न थे'—अवंतिका, पटना, वर्ष २, अंक ५
२६. 'कला और काव्य' कल्पना, हैदराबाद, वर्ष ६, अंक २।
२७. 'भारतीय आलोचना पद्धति और उसकी गतिविधि' साहित्य संदेश, आगरा, वर्ष १४, अंक ६।
२७अ. काव्यजीवित वक्रोक्ति, वक्रोक्ति अलंकार और अभिव्यंजना-हिंदी अनुशीलन, भारतीय साहित्य परिषद्, प्रयाग, वर्ष ४, अंक ४।
२८. 'अहिंदी प्रांतों के लिए हिंदी व्याकरण' साप्ताहिक हिंदुस्तान, नयी दिल्ली, मई, १९५५ ई०।
२९. 'बहन जी, आप कहती हैं कुछ और पुस्तक कुछ और' साप्ताहिक हिंदुस्तान, नयी दिल्ली, ७ जुलाई, १९५५ ई०।
३०. 'जोर जबर्दस्ती से भाषाएँ लोकप्रिय नहीं होतीं' साप्ताहिक हिंदुस्तान, नयी दिल्ली, १९ अगस्त, १९५६ ई०।
३१. 'हिंदी भाषा की पृष्ठ भूमि'—अवंतिका, पटना, मार्च, १९५६ ई०।
३२. 'मछेरों और मछलियों से संबंधित शब्दावली'—हिंदी अनुशीलन भारतीय हिंदी परिषद्, प्रयाग, वर्ष ८, अंक १–२।
३३. 'हिंदी में कारक और क्रियाएँ किधर?' अवंतिका, पटना, वर्ष २, अंक ३।
३४. 'परिष्कृत भाषा' सरस्वती, प्रयाग, वर्ष ५७, अंक ३।
३५. 'हिंदी भाषा का उद्भव और विकास' साहित्य संदेश, आगरा, वर्ष १७, अंक ६।
३६. 'हिंदी भाषा का शोधकार्य और भाषाविज्ञान संबंधी समस्याएँ' अभिनव भारती, हिंदी विभाग, अलीगढ़ मु० विश्वविद्यालय १९५६ ई०।
३७. हिंदी के दस शब्दों की निरुक्ति—अवंतिका, पटना, अप्रैल १९५६ ई०।

३८. जन्म-संस्कार के लोकाचार और उनसे संबंधित शब्दावली (यह शोध लेख ओरिएंटल कांफ्रेंस दिल्ली में पढ़ा गया) भारतीय साहित्य, हिंदी विद्यापीठ, आगरा, अक्टूबर १९५६ ई० ।

३९. ब्रजभाषा और उसका शब्द-स्वरूप-साहित्य संदेश, आगरा, जुलाई, १९५७ ई० ।

४०. 'वस्त्रकला से संबंधित ब्रज-शब्दावली' त्रिपथगा, लखनऊ ।

४१. 'जनपदीय शब्दावली'—'भारतीय साहित्य', हिंदी विद्यापीठ आगरा; आगरा विश्वविद्यालय, १९५७ ई० ।

४२. 'बादल, हवा और मौसम से संबद्ध शब्दावली' भारतीय साहित्य आगरा; मार्च, १९५७ ई० ।

४३. 'चूना, कंकड़-पत्थर, जाली और नगों से संबंधित शब्दावली' नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वाराणसी, (१९५७ ई०) संवत् २०१३, २३ वर्ष ६१

४४. 'हिंदी की जनपदीय शब्दावली का तुलनात्मक अध्ययन' हिंदी अनुशीलन भारतीय हिंदी परिषद्, प्रयाग, १९५७ ई० ।

४५. 'जनपदीय शब्दावली (पैट्रिक कारनेगीकृत कचहरी टैकनीकलिटीज का हिंदी-अनुवाद)—'भारतीय-साहित्य', हिंदी विद्यापीठ, आगरा; जुलाई १९५७ ई० ।

४६. 'संस्कारों से संबंधित शब्दावली'—हिंदी अनुशीलन, भारतीय हिंदी परिषद्, प्रयाग, दिसंबर १९५७ ई० ।

४७. 'राष्ट्रभाषा हिंदी की वर्तनी का स्थिरीकरण' साप्ताहिक हिंदुस्तान, नयी दिल्ली, २० जनवरी, १९५७ ई० ।

४८. 'अशोकवन : एक समीक्षा, गोकुलचंद्र शर्मा—अभिनंदन-ग्रंथ', १९५७, ई० ।

४९. 'वैदिक साहित्य स्रोत से प्राप्त कृषक जीवन के कुछ शब्द' साहित्य संदेश, जून, १९५७ ई० ।

५०. 'राह चलत गोपिन ते अटकै, बानि बुरी नागर नट की' साप्ताहिक हिंदुस्तान, नयी दिल्ली, ३० मार्च १९५७ ई० ।

५१. 'एकत्र' और 'एकत्रित'—साप्ताहिक हिंदुस्तान, नयी दिल्ली, ७ अप्रैल १९५७ ई० ।

५२. 'काव्य-शास्त्रीय आलोचना में डा० नगेंद्र का योगदान' साप्ताहिक हिंदुस्तान, नयी दिल्ली, २२ दिसंबर, १९५७ ई० ।

५३. 'हिंदी गद्य में आचार्य शुक्ल और उनकी आलोचना-पद्धति' सरस्वती संवाद, आगरा, अगस्त-सितंबर, १९५८ ई० ।

५४. 'हमारे अस्त्र-शस्त्र और उनसे संबंधित शब्दावली' त्रिपथगा, लखनऊ, सितंबर, १९५८ ई० ।

५५. 'पँ तो पँवाडा बन गयी' साप्ताहिक हिंदुस्तान, नयी दिल्ली, ७ जून, १९५८ ई० ।

५६. 'हिंदी-कवियों में होली-फाग के चित्रण' साप्ताहिक हिंदुस्तान, नयी दिल्ली, २ मार्च, १९५८ ई० ।

५७. 'गोस्वामी जी की भाषा और उनका संदेश—'साप्ताहिक हिंदुस्तान नयी दिल्ली, २४ अगस्त, १९५८ ई०

५८. 'पं० किशोरीदास वाजपेयी कृत 'शब्दानुशासन' पर एक समीक्षात्मक दृष्टि —साप्ताहिक हिंदुस्तान, नयी दिल्ली, १९५८ ई० ।

५९. 'कृषि-संबंधी शब्दावली का तुलनात्मक अध्ययन'—साहित्य (त्रैमासिक) संपा० शिवपूजन सहाय एवं नलिन विलोचन शर्मा, हिंदी साहित्य संमेलन और बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् का संमिलित शोध-समीक्षा-प्रधान त्रैमासिक मुख पत्र, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, जुलाई, १९५८ ई० ।

६०. 'उर्दू, हिंदी से कोई पृथक भाषा नहीं'—त्रिपथगा, सूचना विभाग लखनऊ, मार्च, १९५८ ई० ।

६१. 'ब्रजकोर-क्षेत्र के लोकाचार'—साप्ताहिक हिंदुस्तान, नयी दिल्ली ।

६२. 'राष्ट्रभाषा के कृषि संबंधी कुछ शब्द'—साप्ताहिक हिंदुस्तान, नयी दिल्ली ।

६३. 'गुरु जी ! क्या तुलसीदास जी ने अरबी और अंग्रेजी भी पढ़ी थी ?' साप्ताहिक हिंदुस्तान, नयी दिल्ली ।

६४. 'ब्रज में होलिकोत्सव पर गाये जाने वाले गीत और उनकी शब्दावली'— साप्ताहिक हिंदुस्तान, नयी दिल्ली ।

६५. 'संस्मरण और श्रद्धांजलि'—रसवंती (स्व० पं० श्यामसुंदर पांडेय स्मृति अंक), लखनऊ, जुलाई-अगस्त १९५८ ई० ।

६६. 'ग्रामीण गाड़ियाँ और उनसे संबंधित शब्दावली'—नागरी प्रचारिणी वाराणसी, १९५८ ई० ।

६७. 'पश्चिमी हिंदी और उसकी विभिन उपभाषाओं का स्वरूप' हिंदुस्तानी, इलाहाबाद, सितंबर १९५८ ई० ।

६८. 'ब्रजभाषा के कुछ ग्रामीण शब्दों की निरुक्ति' हिंदुस्तानी, इलाहाबाद, दिसंबर, १९५८ ई० ।

६९. 'हिंदी-प्रदेशीय उपभाषाओं की कृषि-शब्दावली का तुलनात्मक अध्ययन' —हिंदुस्तानी, इलाहाबाद, अप्रैल, १९५८ ई० ।

७०. हिंदी भाषा का शब्द कोश साहित्य' साहित्य संदेश, आगरा, १९५८ ई० ।

७१. जन्म-संस्कार के लोकाचार और उनसे संबंधित शब्दावली'—हिंदी

अनुशीलन, भारतीय हिंदी परिषद्, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, जुलाई-सितंबर, १९५८ ई०।

७२. 'प्राकृत-पैंगलम् की शब्दावली और वर्तमान ब्रजलोक शब्दावली का तुलनात्मक अध्ययन'—हिंदुस्तानी, इलाहाबाद, मार्च, १९५९ ई०।

७३. 'अवधी के कुछ कृषि-संबंधी शब्द और उनके ब्रज-पर्य्याय' हिंदुस्तानी, इलाहाबाद।

७४. 'ब्रज, ब्रजेश और ब्रज-वैभव'—त्रिपथगा, लखनऊ, मई, १९५९ ई०।

७५. 'ब्रजभूमि और हमारे कवि' त्रिपथगा, लखनऊ, मई, १९५९ ई०।

७६. 'अलीगढ़ जनपद की हाबूड़ा जाति और उसकी बोली'—हिंदुस्तानी, इलाहाबाद, अप्रैल-जून, १९५९ ई०।

७७. 'महाप्राण श्रीवर 'निराला' के विशाल हृदय की झांकिया'—त्रिपथगा, लखनऊ, मई, १९६० ई०।

७८. 'कंजड़ जाति की व्यावसायिक (ब्रजभाषा) शब्दावली'—त्रिपथगा, लखनऊ, मई, १९६० ई०।

७९. 'अलीगढ़ जनपद की कंजड़ जाति और उसकी बोली'—हिंदुस्तानी, इलाहाबाद, अक्टूबर-दिसंबर १९६० ई०।

८०. 'ब्रजभाषा के बीस शब्दों की निरुक्ति' अभिनव भारती, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, जनवरी, १९६० ई०।

८१. 'अपभ्रंश और कुछ भारतीय आर्य भाषाएँ'—कल्पना, हैदराबाद, दिसंबर १९६० ई०।

८२. 'हिंदी की अकारांत संज्ञाएँ और उनके विकल्प'—भाषा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नयी दिल्ली, त्रैमासिक, नवंबर, १९६१ ई०।

८३. 'हिंदी-शब्दोच्चारण में अनुनासिकता, जो लिखित रूप ग्रहण नहीं करती' —सप्त सिंधु, पटियाला, मार्च, १९६१ ई०।

८४. 'तुलसी की समन्वयात्मक भाषा का संदेश' तुलसीदास, भोपाल, अगस्त, १९६१ ई०।

८५. 'ब्रजभाषा के लिंग-वचनीय-रूपग्राम'—हिंदुस्तानी, इलाहाबाद, १९६१ ई०।

८६. 'वस्त्र निर्माण-कला-संबंधी ब्रज-शब्दावली'—त्रिपथगा, लखनऊ, दिसंबर, १९६१ ई०।

८७. 'हिंदी की यौगिक भाषाओं पर वैज्ञानिक विचार'—सप्त सिंधु, पटियाला अगस्त, १९६१ ई०।

८८. 'ब्रजभाषा में 'छल्लादार' या 'छल्लेदार'—अभिनव भारती, अलीगढ़ मु० विश्वविद्यालय, १९६१ ई०।

८९. 'उकार बहुला प्रवृत्ति की परंपरा और ब्रज की बोली'—'भारतीय साहित्य', हिंदी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, जनवरी, १९६१ ई०।

९०. 'हमारी भाषाओं तथा बोलियों की पारिभाषिक शब्दावली'—'भारतीय साहित्य', हिंदी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, जनवरी १९६१।

९१. 'अलीगढ़ जनपद की मुस्लिम बंजारा जाति और उसकी बोली'—हिंदुस्तानी, इलाहाबाद, जनवरी-मार्च, १९६२ ई०।

९२. 'हिंदी के क्रिया-रूपों में काल और अर्थ का स्पष्टीकरण'—सप्तसिंधु, पटियाला, सितंबर, १९६२ ई०।

९३. 'ब्रज के लोकगीतों का दिग्दर्शन'—सप्तसिंधु, पटियाला, जून १९६२ ई०।

९४. 'शब्दमर्मी गद्यकार डा०नगेंद्र की भाषा'—साप्ताहिक हिंदुस्तान, नयी दिल्ली, ४ मार्च, १९६२ ई०।

९५. 'निबंध और गद्य काव्य'—साहित्य संदेश, आगरा, जुलाई-अगस्त, १९६२ ई०।

९६. 'हिंदी-उर्दू के छंदःशास्त्र की तुलना'—सप्तसिंधु, पटियाला, दिसंबर, १९६२ ई०।

९७. 'ब्रजभाषा में 'बाज' का प्रयोग'—सप्तसिंधु, पटियाला, अप्रैल, १९६२ ई०।

९८. 'ब्रज-संस्कृति के प्रमुख शृंगार : केस और गुदना'—त्रिपथगा, लखनऊ जुलाई, १९६२ ई०।

९९. 'कहारों-संबंधी ब्रजभाषा शब्दावली'—त्रिपथगा, लखनऊ १९६२ ई०।

१००. 'हिंदी भाषा के 'का' 'की' 'के' और प्रादेशिक भाषाओं में उनके समानांतर रूप'—हिंदुस्तानी, इलाहाबाद, १९६२ तृतीयांक।

१०१. 'हिंदी की वर्तनी में 'ऐ' और 'औ' की ध्वनियों की समस्या का एक वैज्ञानिक अध्ययन'—भाषा (त्रैमासिकी), केन्द्रीय हिंदी निदेशालय, नयी दिल्ली, दिसंबर, १९६२ ई०।

१०२. 'हिंदी भाषा का शब्द-समूह और कुछ तत्सम शब्द'—सप्तसिंधु, पटियाला, अक्टूबर, १९६३ ई०।

१०३. 'आधुनिक ब्रजभाषा की ध्वनि-प्रक्रिया में नासिक्यीकरण'—भारतीय साहित्य, हिंदी विद्यापीठ, आगरा, १९६३ ई०, वर्ष ८ अंक ३।

१०४. 'भाषाविज्ञान क्षेत्र में विख्यात भाषाविद् डा० धीरेंद्र वर्मा का योगदान'—'सप्तसिंधु, पटियाला, जून, १९६३ ई०।

१०५. हिंदी के कुछ तत्सम शब्द और वर्तनी का स्थिरीकरण'–भाषा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नयी दिल्ली, सितंबर, १९६३ ई०।

१०६. 'भाषा-विज्ञान-कोश' (संपादक डा० भोलानाथ तिवारी) की समीक्षा—हिंदी वार्षिकी, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, १९६३–६४ ई०।

१०७. 'पाश्चात्य एवं भारतीय काव्य-शास्त्री और काव्य का मूल तत्व'—सप्तसिंधु, पटियाला, जून, १९६४ ई०।

१०८. 'रामचरितमानस' की भाषा में चंद्रबिंदु (अनुनासिकता) के विभिन्न अर्थ-कल्पना, हैदराबाद, वर्ष ६, अंक १, १९६४ ई०।

१०९. ' 'ईश्वर' शब्द का महत्वपूर्ण इतिहास'—कल्पना, हैदराबाद, वर्ष ६, अंक १, १९६४ ई०।

११०. 'कृषि संबंधी शब्दावली का तुलनात्मक अध्ययन'—आजकल दिल्ली, १९६४ ई०।

१११. 'तीन बलिदानी (कविता),—जन-साहित्य, पटियाला, मार्च, १९६४ ई०।

११२. 'राष्ट्रभाषा हिंदी और व्रजभाषा में फारसी से आये दो प्रत्ययों की तुलना'—परिषद् पत्रिका, पटना, ४ जनवरी, १९६४ ई०।

११३. 'आचार्य द्विवेदी जी के साथ साहित्यिक वार्तालाप'—सरस्वती संवाद, आगरा, वर्ष ४—अंक ७।

११४. 'व्रजभाषा और मराठी की ऋजुरूपीय संज्ञक-वचन-प्रक्रिया—राष्ट्रवाणी मई, १९६४ ई०।

११५. 'युगपुरुष नेहरू' (कविता), जन-साहित्य, पटियाला, नवंबर-दिसंबर, १९६४ ई०।

११६. 'हिंदी और मराठी भाषाओं के संज्ञा-रूपों की तुलना'—भाषा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नयी दिल्ली, जून, १९६४ ई०।

११७. 'कहारों संबंधी-व्रजभाषा शब्दावली'—त्रिपथगा, लखनऊ, फरवरी, १९६४ ई०।

११८. 'हेमचंद्रीय व्याकरण की अपभ्रंश किसकी पुत्री है ?'—परिषद्-पत्रिका, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, वर्ष ४, अंक ३, अक्टूबर, १९६४ ई०।

११९. 'आधुनिक हिंदी काव्य में राष्ट्रीय भावना का विकास'—सप्तसिंधु, पटियाला, जुलाई, १९६५ ई०।

१२०. 'पूर्वी हिंदी और उसकी प्रमुख उपभाषाएँ'—हिंदुस्तानी, इलाहाबाद, जुलाई-दिसम्बर, १९६५ ई०।

१२१. 'हरियाणवी और उसकी प्रतिवेशिनी उपभाषाओं में 'ने' का प्रयोग'—सप्तसिंधु, पटियाला, नवंबर-जनवरी, १९६५-६६ ई०।

१२२. 'श्रीरामचरितमानस की चौपाइयों में चरणांत पद का अंतिम स्वर'—अभिनव भारती, हिंदी विभाग, अलीगढ़ विश्वविद्यालय, अलीगढ़, वर्ष ६, १९६५ ई० ।

१२३. 'आधुनिक व्रजभाषा में संयुक्त क्रियाओं का स्वरूप'—भाषा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नयी दिल्ली, मार्च, १९६५ ई० ।

१२४. 'रसिया और ढोला'—संस्कृति, नई दिल्ली, १९६५ ई० ।

१२५. 'वाल्मीकीय रामायण पर एक सांस्कृतिक दृष्टि'—संस्कृति, नयी दिल्ली १९६५ ई० ।

१२६. 'काव्यशास्त्रीय आलोचना में बाबूजी का दृष्टिकोण'—सरस्वती-संवाद, सन् १९६५ ई० ।

१२७. 'ऋषियों की आयु वाले ये शब्द'—कादंबिनी, नयी दिल्ली, फरवरी, १९६५ ई० ।

१२८. 'डा० नगेंद्रकृत 'रस-सिद्धांत' की समीक्षा'—संमेलन पत्रिका, प्रयाग, १९६५ ई० ।

१२९. 'व्रज के लोकगीत एवं उनसे संबद्ध शब्दावली'—त्रिपथगा, लखनऊ, सितम्बर, १९६५ ई० ।

१३०. 'वे सेतु थे'—कादंबिनी, नयी दिल्ली, अक्टूबर, १९६६ ई० ।

१३१. 'मीराबाई की भाषा का स्वरूप'—युग प्रभात, कालीकट, मई १९६६ ई० ।

१३२. 'हिंदी और द्रविड़ भाषाओं में परसर्ग'—त्रिपथगा, लखनऊ, जून, १९६६ ई० ।

१३३. 'डा० नगेंद्र का व्यक्तित्व'—नवभारत टाइम्स, नयी दिल्ली, ९ मार्च, १९६६ ई० ।

१३४. 'सैकड़ों विद्यार्थियों के प्रेरणा-पुंज स्व० डा० वासुदेवशरण अग्रवाल'—साप्ताहिक हिंदुस्तान, नयी दिल्ली, २८ अगस्त, १९६६ ई० ।

१३५. 'आलोचना की आस्था में डा० नगेंद्र'—साप्ताहिक हिंदुस्तान, नयी दिल्ली ११ दिसम्बर, १९६६ ई० ।

१३६. 'तुलसी की अवधि में 'मारहु' और 'मारहुँ' क्रियाएँ'—भाषा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नयी दिल्ली, सितंबर, १९६६ ई० ।

१३७. 'अष्टछाप के कवियों की सांस्कृतिक देन'—संस्कृति, नयी दिल्ली, १९६६ ई० ।

१३८. 'हिंदी और तमिल के कारकीय परसर्ग और विभक्तियाँ'—भाषा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नयी दिल्ली, मार्च, १९६६ ई० ।

१३९. 'देवराज इंद्र और एरावत हाथी'—अभिनव भारती, हिंदी विभाग, अलीगढ़ विश्वविद्यालय, अलीगढ़, १९६६ ई० ।

१४०. 'कामायनी' के कुछ विशिष्ट शब्दार्थ'—परिषद् पत्रिका, पटना, अक्टूबर, १९६६ ई०।

१४१. 'जन्म-संस्कार संबंधी शब्दावली'—प्राच्य-मानव-वैज्ञानिक, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

१४२. 'शब्द और अर्थ में अर्थ आत्मा या ब्रह्मा है'—त्रिपथगा, लखनऊ, सितंबर, १९६६ ई०।

१४३. 'हिंदी और द्रविड भाषाओं में परसर्ग की स्थिति'—त्रिपथगा, लखनऊ, सितंबर, १९६६ ई०।

१४४. 'स्व० डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : जीवन और साहित्यिक उपलब्धियाँ'—सप्तसिंधु, पटियाला, अक्टूबर, १९६६ ई०।

१४५. 'जायसी की अवधि में 'कीन्ह' और 'कीन्हेसि' क्रियाएँ'—सप्तसिंधु, पटियाला, जुलाई, १९६६।

१४६. 'प्रयत्नलाघव और भाषा-परिवर्तन'—संमेलन पत्रिका, प्रयाग, पौष-ज्येष्ठ १८८७ शक।

१४७. 'अपभ्रंश और व्रजभाषा'—संमेलन पत्रिका, प्रयाग, चैत्र-भाद्रपद, १८८६ शक।

१४८. 'हम सब भाँति करब सेवकाई'—अभिनव भारती, हिंदी विभाग, अलीगढ़ मु० विश्वविद्यालय, १९६७ ई०।

१४९. 'हिंदी में अप्रकट संबंध—तत्व'—परिषद् पत्रिका, पटना अप्रैल, १९६७ ई०।

१५०. 'भाषाशास्त्री डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल'—सप्तसिंधु, पटियाला, दिसंबर, १९६७ ई०।

१५१. 'साहित्य में दर्शन और जीवन-दर्शन'—रसवंती, लखनऊ, नवंबर, १९६७ ई०।

१५२. 'संस्कारों से संबंधित शब्दावली'—हिंदी अनुशीलन, भारतीय हिंदी परिषद्, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, अक्टूबर दिसंबर, १९६७ ई०।

१५३. 'हिंदी-मराठी के भिनार्थवाची समान शब्द'—परिषद् पत्रिका, बिहार, राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, जुलाई, १६७ ई०।

१५४. 'हिंदी और द्रविड भाषाओं में पर–प्रत्ययों की स्थिति'—भाषा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नयी दिल्ली, दिसंबर, १९६७ ई०।

१५५. 'हिंदी के शब्द-मर्मी रामचंद्र वर्मा'—साप्ताहिक हिंदुस्तान, नयी दिल्ली ७ मई, १९६७ ई०।

१५६. 'स्व० डा० विश्वनाथप्रसाद'—साप्ताहिक हिंदुस्तान, नयी दिल्ली, १० दिसंबर, १९६७ ई०।

१५७. 'हिंदी के शब्द-मर्मी'—साप्ताहिक हिंदुस्तान, नयी दिल्ली, २७ मई, १९६७ ई० ।

१५८. 'भाषाविज्ञान : नवीन दृष्टिकोण'—साहित्य-परिचय (आधुनिक साहित्य विशेषांक), डा० रांघेयराघव मार्ग, आगरा, जनवरी ११६७ ई० ।

१५९. 'स्व० वासुदेवशरण अग्रवाल : एक मूल्यांकन'—माध्यम, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, फरवरी १९६७ ई० ।

१६०. 'ब्रजभाषा के जन्म-संस्कारों की शब्दावली'—त्रिपथगा, लखनऊ, मार्च, १९६७ ई० ।

१६१. 'विभिन्न सगुण संप्रदाय और उनके तिलक'—त्रिपथगा, लखनऊ, जून, १९६७ ई० ।

१६२. 'कामायनी के शब्द-रूपों पर एक दृष्टि'—मधुमति, राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम), उदयपुर, अक्टूबर, १९६८ ई० ।

१६३. 'हिंदी और भारत की अधिभाषाएँ'—परिषद् पत्रिका (भाषा सर्वेक्षण अंक), पटना, अक्टूबर, १९६८ ई० जनवरी १९६९ ई० ।

१६४. 'हिंदी और मलयालम के पुरुषवाचक सर्वनाम'—भाषा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नयी दिल्ली, जून, १९६८ ई० ।

१६५. 'हिंदी में अनुस्वार-प्रयोग : सुझाव और समाधान'—भाषा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नयी दिल्ली, मार्च १९६८ ई० ।

१६६. 'देश की सभी भाषाएँ एकसूत्र में आबद्ध'—साप्ताहिक हिंदुस्तान, नयी दिल्ली, ११ फरवरी, १९६८ ई० ।

१६७. 'आपकी आज्ञानुसार' बनाम 'आपके आज्ञानुसार'—साप्ताहिक हिंदुस्तान नयी दिल्ली, ४ फरवरी, १९६८ ई० ।

१६८. 'हिंदी भाषा के कवियों में रसखान का स्थान'—सरस्वती-संवाद, आगरा; पृष्ठ ५५ से ५८ तक, १९६८ ई० ।

१६९. 'शब्द और शब्द-शक्तियाँ'—सरस्वती-संवाद, आगरा, पृष्ठ २२२ से २२६ तक, १९६८ ई० ।

१७०. 'हिंदी के 'बालम' और गुजराती के 'बालह' का पूर्व जन्म'—राष्ट्र-भारती, वर्धा, मार्च, १९६८ ई० ।

१७१. 'भावहीन नयी कविता काल की कसोटी पर नहीं ठहर सकती'—राष्ट्र-भारती, वर्धा, जून, १९६८ ई० ।

१७२. डा० नगेंद्र : एक बहुरंगी व्यक्तित्व'—मधुमती, उदयपुर, मार्च १९६८ ई० ।

१७३. 'जीवन का अंतिम स्वरूप' (कविता)'—शाकंभरी, सहारनपुर, जून, १९६८ ई० ।

१७४. 'इस धरा के फूल और धूल एक हैं (कविता)' शाकंभरी, सहारनपुर, जुलाई, १९६८ ई०।

१७५. 'कामायनी' के वे स्थल, जहाँ भावुकता में भाषा पथ भूल बैठी है'—संमेलन पत्रिका, प्रयाग (१९६९ ई०) पौष-ज्येष्ठ १८९० श क०।

१७६. 'ब्रजभाषा का शब्द-सामर्थ्य'—ब्रजभारती, मथुरा, १९६९ ई०।

१७७. 'रामचरितमानस के धातु-प्रत्यय'—मधुमती, उदयपुर, अप्रैल, १९६९ ई०।

१७८. 'पं० किशोरीदास वाजपेयीकृत हिंदी-शब्दानुशासन पर एक समीक्षात्मक दृष्टि'—साप्ताहिक हिंदुस्तान नयी दिल्ली।

१७९. 'पारिभाषिक शब्दावली भारतीय भाषाएँ और शिक्षा·माध्यम'—(Terminology, Indian languages and Medium of Instruction) विद्या, वैज्ञानिक तथा शब्दावली का आयोग, शिक्षा तथा युवक सेवा मंत्रालय, रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली–२२, जुलाई १९६९—मार्च १९७० ई०।

१८०. 'हिंदी और द्रविड़ भाषाओं के विशेषण पदों की तुलना'—हिंदुस्तानी, इलाहाबाद, जनवरी-दिसंबर, १९६९ ई०।

१८१. हिंदी और द्रविड़ भाषाओं में उद्देश्य एवं विधेय विशेषण'—भाषा-केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नयी दिल्ली, दिसंबर, १९६९ ई०।

१८२. 'मानस चतुश्शती समारोह पर सोरों में भी सारस्वत पीठ बने'—नवभारत टाइम्स, २० सितंबर, १९६९ ई०।

१८३. 'ब्रजभाषा और गुजराती की शब्दात्मक एवं रूपात्मक तुलना'—भाषा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नयी दिल्ली, जून, १९७० ई०।

१८४. 'चित्रावली' में कुरान व हदीस तथा राम-कृष्ण कथाओं के संकेत'—अभिनव भारती, हिंदी विभाग, अलीगढ़ विश्वविद्यालय, अलीगढ़, वर्ष ८, १९७० ई०।

१८५. हिंदी और भारत की अधिभाषाएँ'—परिषद् पत्रिका, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना–४, वर्ष ८, अक ३–४।

१८६. 'रामचरितमानस' के कतिपय कूटोन्मुख शब्द'—परिषद् पत्रिका, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, जुलाई, १९७१ ई०।

१८७. 'हिंदी और नैपाली भाषा की तुलना'—भाषा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय नयी दिल्ली, दिसंबर, १९७१ ई०।

१८८. 'ब्रज-मंदिरों की रास-लीला और उसका उद्गम'—धर्म मार्ग, जंमू, मई, १९७१ ई०।

१८९. 'भावहीन अद्यतन हिंदी-कविता का जीवन : एक प्रश्न-चिह्न'—नवभारत टाइम्स, नयी दिल्ली, ६ मार्च, १९७१ ई०।

१९०. 'सूर-सागर' और 'रामचरित मानस' की क्रियाओं में रूप-साम्य'—हिंदुस्तानी, इलाहाबाद, अक्टूबर-दिसंबर, १९७२ ई० ।
१९१. 'कारक और विभक्ति की संकल्पना'—केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नयी दिल्ली, दिसंबर, १९७२ ई० ।
१९२. 'दर्शन और जीवन-दर्शन'—धर्ममार्ग, जंमू जून, १९७२ ई० ।
१९३. 'महान् शब्दमर्मी स्व० डा० वासुदेवशरण अग्रवाल'—स्वतंत्र भारत, लखनऊ, ७ अगस्त, १९७२ ई० ।
१९४. 'द्विवेदी युग के साहित्यकार स्व० पं० गोकुलचंद्रशर्मा'—नवभारत टाइम्स, नयी दिल्ली, (पुण्य-तिथि पर) ।
१९५. 'हिंदी के शोध-प्रबंध (१९७२ ई०)—हिंदी वार्षिकी, केंद्रीय हिंदी निदेशालय (शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार), पश्चिमी ब्लाक ७, रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली—११००२२, १९७२ ई० ।
१९६. 'आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में फारसी के बहुवचनीय प्रत्यय'—परिषद् पत्रिका, अंक अक्टूबर, १९७३ ई०, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना–४ ।
१९७. 'फारसी-बहुवचनीय प्रत्यय की छाया'—परिषद् पत्रिका, पटना, अक्टूबर, १९७३ ई० ।
१९८. 'ब्रजभाषा के मूर्धन्य विद्वान् स्व० डा० धीरेंद्र वर्मा'—ब्रजभारती, मथुरा, १९७३ ई० ।
१९९. 'आधुनिक युगबोध और रामचरितमानस'—आकाशवाणी पत्रिका, नयी दिल्ली, ७ जुलाई, १९७३ ई० ।
२००. 'हिंदी और पंजाबी भाषाओं में अस्तित्ववाची क्रियापद'—भाषा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नयी दिल्ली, जून, १९७३ ई० ।
२०१. 'मेरी डायरी के कुछ पंने'—तीर्थंकर, इंदौर, अप्रैल, १९७४ ई० ।
२०२. 'कबीर की 'उन्मुनि' और 'सहज-समाधि'—सरस्वती, इलाहाबाद, फरवरी, १९७४ ई० ।
२०३. 'हिंदी, उडिया, बंगाली और असमिया भाषाओं में अस्तित्ववाची क्रियाएँ'—भाषा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नयी दिल्ली, सितंबर, १९७४ ई० ।
२०४. 'मानस के भाव स्रोत और उनका विस्तार'—हिंदुस्तानी, इलाहाबाद, अप्रैल-जून, १९७४ ई० ।
२०५. 'अनुवाद समस्या का समाधान'—मधुमती, अंक जनवरी-फरवरी, १९७५ ई० राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम), उदयपुर ।
२०६. 'सन् १९७२ के शोध-प्रबंधों की समीक्षा'—हिंदी वार्षिकी, केंद्रीय

हिंदी निदेशालय, नयी दिल्ली,(शिक्षा तथा समाज मंत्रालय में प्रकाशित सन् १९७५ ई० ।

२०७. 'हिंदी भाषा में व्याकरणीय श्लेष की समस्या और समाधान'— भाषा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नयी दिल्ली, मार्च-जून, १९७५ ई० ।

२०८. 'शब्द और उसकी संस्कृति'—मधुमती, अंक अप्रैल, १९७६ ई० राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम), उदयपुर ।

२०९. 'दो कविताएँ ('मैं', 'तुम्हारा पराक्रम')'—हिमप्रस्थ, लोक संपर्क निदेशालय, हिमाचल प्रदेश, एलर्जली, शिमला—१७१००२ (हि०प्र०) अक्टूबर, १९७७ ई० ।

२१०. 'विचार और कर्म'—(कविता)—जीवन साहित्य. अंक दिसंबर १९७७ ई०, सस्ता साहित्य मंडल, एन-७७, कनाट सर्कस, नयी दिल्ली ११०००१ ।

२११. 'आत्मरूप ज्येष्ठाय नमः'—मरु भारती, अंक जुलाई-अक्टूबर, १९७७ ई०, बिड़ला एजूकेशन ट्रस्ट पिलानी, (राजस्थान) ।

२१२. 'भाषा-बोध और काव्यानंद'—संमेलन पत्रिका, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, १९७७ ई० ।

२१३. 'रामचरित मानस' में भूतकालिक क्रिया के कुछ विचित्र प्रयोग'— हिंदुस्तानी, हिंदुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद, जुलाई-दिसंबर, १९७७ ई० (पृष्ठ ५८ से ६३ तक) ।

२१४. 'प्रगति के चरण (कविता)'—जीवन साहित्य, फरवरी, १९७८ ई० सस्ता साहित्य मंडल, एन-७७, कनाट सर्कस, नयी दिल्ली ११००१ ।

२१५. 'हिंदी-अनुवाद—समस्या का समाधान'—हिमप्रस्थ, लोक संपर्क निदेशालय, हिमाचल प्रदेश एलर्जली, शिमला-१७१००२२ फरवरी, १९७८ ई० (पृष्ठ २१ से २६ तक) ।

२१६. 'शब्दार्थ-मर्मी मानसकार तुलसीदास'—हिमप्रस्थ, जनवरी, १९७८ ई०, लोक संपर्क निदेशालय, हिमाचल प्रदेश एलर्जली, शिमला— १७१००२

२१७. 'हिंदी-अनुवाद समस्या का समाधान (दूसरी किश्त)',—हिमप्रस्थ, लोकसंपर्क निदेशालय, हिमाचल प्रदेश, एलर्जली शिमला—१७१००२ मार्च, १९७८ ई० ।

२१८. 'हम शुद्ध एवं स्पष्ट हिंदी कैसे लिखें ?'—(पहली किश्त), हिमप्रस्थ; लोक संपर्क निदेशालय, हिमाचल प्रदेश, एलर्जली शिमला—१७१००२ जून, १९७८ ई० ।

२१९. 'हम शुद्ध एवं स्पष्ट हिंदी कैसे लिखें ?'—(दूसरी किश्त) हिमप्रस्थ, एलर्जली शिमला, जुलाई, १९७८ ई० ।

२२०. 'अमूर्त के कुशल मूर्तिकार महाकवि तुलसी'—हिमप्रस्थ, लोक संपर्क निदेशालय, हिमाचल प्रदेश, एलर्जली शिमला, सितंबर, १९७८ ई०, (पृष्ठ ५ में)।

२२१. 'भारतीय भाषाओं में श्लेषात्मक वाक्य'—भाषा (त्रैमासिक), सितंबर-दिसंबर, १९७८ ई०, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, शिक्षा तथा समाज कल्याण, भारत सरकार, नयी दिल्ली।

२२२. 'पिछले दशक में हिंदी-कथा-साहित्य की दिशा'—हिमप्रस्थ (मासिक), जनवरी, १९७९ ई०, लोक संपर्क निदेशालय हिमाचल प्रदेश, शिमला–३।

२२३. अपभ्रंश का जन्म और उसका हिंदी पर प्रभाव—संमेलन पत्रिका, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, पौष-फाल्गुन, १८७९ शक।

२२४. सूरसागर और रामचरितमानस के क्रियापदों की तुलना, सूर विशेषांक हिंदुस्तानी, हिंदुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद, जनवरी-दिसंबर १९७८ ई०।

२२५. हिंदी, गुजराती और मराठी के क्रियावाच्य, परिषद् पत्रिका, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, अक्टूबर, १९७९ ई०।

२२६. भारतीय साहित्य में सूर-पूर्व ब्रजभाषा कवि, मंदाकिनी, (वार्ष्णेय कालेज का विशेषांक), १९७९ ई०।

२२७. हिंदी में 'का' 'की' 'के' का प्रयोग और अर्थ—परिषद् पत्रिका, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटल–८०००४ (बिहार)

२२८. तुलसीदास की ब्रजभाषा : स्वरूप विश्लेषण—किशोर कौमुदी (तुलसी परिवार-परिचयांक), १९७९–८० ई० संत तुलसीदास, म्यू. का. सोरों (सूकर-क्षेत्र), जिला–एटा।

३. आकाशवाणी से प्रसारित विशिष्ट वार्ताएँ—

डा० 'सुमन' की लगभग सत्तर रेडियो-वार्ताएँ दिल्ली और मथुरा के आकाशवाणी केंद्रों से प्रसारित हो चुकी हैं। कुछ विशिष्ट वार्ताओं की सूची ही दी जा सकी है—

१. भारत वंदना 'भारत मैया के चरनन को मैया करि वंदन' (कविता) ब्रजमाधुरी, आकाशवाणी, दिल्ली
२. आजाद हिंद (संगीत रूपक), आकाशवाणी, दिल्ली, दिनांक ८·२·७०
३. लोकगीत मंजरी (संगीत रूपक), आकाशवाणी, दिल्ली, दिनांक ५·५·७०
४. ब्रजभाषा-काव्यों की भाषा का भाषावैज्ञानिक अध्ययन, आकाशवाणी, दिल्ली, दिनांक २९·६·७०

५. बुंदेली प्रभावित ब्रजभाषा, आकाशवाणी, दिल्ली, दिनांक २६-४-७१
६. ब्रज में रसिया लोकगीत और उसका प्रभाव, आकाशवाणी, मथुरा, दिनांक २०-११-७२ सायं ४ बजे।
७. अयोध्यासिंह उपाध्याय—ब्रजभाषा के कीर्तिस्तंभ, आकाशवाणी, दिल्ली, दिनांक ६-४-७३
८. रीतिकालीन ब्रजभाषा में राष्ट्र-गौरव, आकाशवाणी, मथुरा, दिनांक १६-४-७३
९. अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी की व्यापकता, आकाशवाणी, मथुरा, दिनांक ७-७-७६ रात्रि ८ बजे।
१०. बिदेसी लेखकन द्वारा ब्रजवर्णन, आकाशवाणी, मथुरा, दिनांक १५-१०-७६ सायं ६·४५ बजे
११. सूरसाहित्य में ब्रज कौ व्यवहार, आकाशवाणी, मथुरा, दिनांक २६-७-७७
१२. सूरसाहित्य की भाव-भूमि, आकाशवाणी, मथुरा, ४-१-७८ रात्रि ८ बजे।
१३. सूर की भाषा, आकाशवाणी, मथुरा, १२-४-७८ रात्रि ८ बजे।
१४. ब्रजभाषा की भाषा-शास्त्रीय विशेषताएँ, आकाशवाणी, मथुरा ७-७-७८ रात्रि ८ बजे।
१५. सूरसाहित्य में ब्रज-संस्कृति : उत्सव और त्योहार, आकाशवाणी, मथुरा, २१-१०-७८ सायं ६·४५ बजे।
१६. भारतीय साहित्य में ब्रजभाषा का योगदान, आकाशवाणी, मथुरा २२-२-७६ रात्रि ८ बजे।
१७. भारतीयता के बदलते स्वरूप : आचार-विचार में, आकाशवाणी, मथुरा, २६-१०-८० राशि ८ बजे।

४. प्रकाशनाधीन—(क) ग्रंथ

१. उद्‌गार (कविता-संग्रह)
२. अंतर्धारा (कविता-संग्रह)
३. उसमानकृत चित्रावली की भाषा (भाषा वैज्ञानिक विवेचन)
४. अलीगढ़ और बुलंदशहर जिलों की बोलियों का तुलनात्मक अध्ययन (डी० लिट्० उपाधि का शोध-प्रबंध)

(ख) लेख—

१. वाल्मीकि रामायण और विषेण कृत पद्म पुराण: एक तुलना (परिषद् पत्रिका, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना में)
२. भावहीन नयी कविता काल की कसौटी पर नहीं ठहर सकेगी।
३. ब्रज के दो पक्षी—पपीहा और चातक। ४. गहना कर्मणोगतिः।
५. दिव्य जीवन-संगीत भाव की बांसुरी से ही उत्पंन होता है।
६. या निशा सर्वभूतानां तस्यां जार्गात संयमी।

७. श्रीकृष्ण द्वारा गीतोपदेश कब दिया गया ?
८. लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुराप्रोक्ता भयानघ ।
९. ज्ञानं, ज्ञेयं, ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्यविष्ठितम् ।
१०. गीता, सांख्य और जैन-दर्शन । ११. पाप क्या है ? पुण्य क्या है ?
१२. भारतीयता का बदलता स्वरूप : आचार-विचार में ।
१३. सूरकाव्य को संगीत पक्ष ।
१४. साहित्य के रसास्वादन में भाषा विज्ञान की उपयोगिता ।
१५. खड़ी बोली, ब्रजभाषा और मराठी के क्रियारूप ।
१६. अनुसंधित्सुओं की समस्याएँ : समाधान ।
१७. शब्दलोक और उसकी अर्थात्मक संस्कृति ।
१८. हिंदी के उच्चारण और वर्तनी के मानकीकरण की समस्या ।
१९. भाषा-अध्ययन के लिये उपयुक्त पद्धति : ऐतिहासिक या वर्णनात्मक ।
२०. रामचरितमानस की कुछ क्रियाएँ ।
२१. हिंदी और नेपाली भाषाओं के संज्ञा-क्रियारूप ।
२२. हिंदी में अंग्रेजी से अनूदित पारिभाषिक शब्दों की प्रक्रिया ।
२३. हिंदी और भारतीय प्रादेशिक भाषाओं में एकता के तत्व ।
२४. अपभ्रंश भाषा का स्वरूप । २५. ब्रजलोक अंचल की ढोला गायकी ।
२६. भारतीय प्रादेशिक भाषाओं में कृष्णपरक काव्य ।
२७. विद्यापति पदावली और रामचरित मानस की क्रियाओं की तुलना ।
२८. गीता में कृष्ण के पर्यायवाची नाम ।
२९. समयसार और संदेशरासक के क्रियापद ।

५. भावी योजना—

डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' अभी विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, भारत सरकार, दिल्ली की योजना के अंतर्गत अलीगढ़ मु० विश्वविद्यालय के हिंदी-विभाग में शोध कार्य में संलग्न हैं। वे तुलसीकृत 'कवितावली' का व्याकरणिक कोश बनाने में लगे हुए हैं। इसके साथ-साथ एक ग्रंथ तुलसीकृत 'रामचरितमानस' पर भी लिख रहे हैं। यह ग्रंथ विश्वविद्यालीय पद्धति और व्यासीय पद्धति के सेतु के रूप में हिंदी-जगत के समक्ष आयेगा।

—राकेश प्रकाशन, बाराबंकी

विभिन्न दृष्टियां

—डा० इंदरराज वैद 'अधीर'

काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने सन् १९७३ ई० में एक नागरी दैनंदिनी प्रकाशित की थी। उसमें विश्व के गण्यमान्य विद्वानों की उक्तियों का संकलन प्रति पृष्ठ पर किया गया था। श्री मैथिलीशरण जी गुप्त और श्री केशवचंद्र सेन के बाद १३ मई, १९७३ ई० वाले पृष्ठ पर डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' की उक्ति भी प्रकाशित की गयी है, जो इस प्रकार है—

"साहित्य के इतिहास में काल-विभाजन के लिए तत्कालीन प्रवृत्तियों को ही आधार मानना न्याय संगत है।" —(काशी नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी)

× × ×

I knew old Sir George Grierson very well and for nearly 40 years I have urged scholars to do for other parts of India, what he did for Bihar.

You can imagine then, how pleased I am to see your book.

—Dr. R. L Turner, Director School of Oriental & African studies, University of London.

× + ×

Not only Hindi literature but Indian literature as a whole can be said to be enriched by your very voluable production.

—Dr. Suniti Kumar Chatterji, Professor, Emeritus of Comparative Philology In the University of Calcutt a.

× × ×

मेरा दृढ़ विश्वास है कि ग्रियर्सन के 'बिहार पेजेंट लाइफ' के बाद ऐसे ग्रंथ का निर्माण नहीं हुआ। यह शोध ग्रंथ (कृषक जीवन संबंधी ब्रजभाषा शब्दावली) मुझे ग्रियर्सन से भी अधिक विस्तृत और प्रमाणिक जान पड़ता है।

—डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, काशी विश्वविद्यालय, वाराणसी

× × ×

"हिंदी भाषा : अतीत और वर्तमान' पुस्तक हिंदी के प्रमुख लक्षणों को दर्शाने का सफल प्रयत्न है। लेखक ने पुस्तक के पृष्ठ ४३ पर एक असाधारण घटना

का प्रतिपादन किया है। घटना व्रजभाषा की अनुनासिकता और निरनुनासिकता से संबद्ध है। इस पुस्तक में एक लेख का विशेष उल्लेख अपेक्षित है—वह है "हिंदी और आधुनिक आर्य भाषाएँ–संज्ञारूप"। बहुत उपयोगी तथा विशाल सामग्री प्रदान करने के कारण यह अध्याय भविष्य में संदर्भ का स्रोत बन जाएगा। पृष्ठ १५८ पर एक अत्यंत रुचिकर घटना का उल्लेख है कि अपभ्रंश की जनबोली में शब्द का अंतिम अकार लुप्त हो गया था।

उपसंहार रूप में यह कहा जा सकता है कि हिंदी भाषा की कुछ सूक्ष्म-प्रवृत्तियों को जतलाकर 'हिंदी भाषा : अतीत और वर्तमान' के लेखक ने आधुनिक पाठकों की माँग का संभारण किया है।" —डा० सिद्धेश्वर वर्मा डी० लिट्०

× × ×

"उन्होंने (श्री अंबाप्रसाद 'सुमन' ने) अपने अध्ययन-अध्यापन को लेखक के साथ संबद्ध कर उसे सर्जनात्मक रूप प्रदान किया है। उनका अध्ययन विस्तृत और ग्रहणशील है। उसमें विवेक और सुरुचि का मणिकांचन योग है।"

—डा० नगेंद्र, (दिल्ली)

× × ×

"भाषा शास्त्र के सुप्रसिद्ध विद्वान् डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' वस्तुतः बहुत परिश्रमी और तपोनिष्ठ अध्यापक, लेखक तथा विद्वान् हैं।"

—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी (वाराणसी)

× × ×

"विद्वान् लेखक ने हिंदी और उसकी उपभाषाओं का स्वरूप' पुस्तक में हिंदी और उसकी बोलियों का विस्तृत विवरण देकर परम स्तुत्य कार्य किया है। इससे हिंदी भाषा के अध्ययन में बहुत सहायता मिलेगी।"

—डा० विनय मोहन शर्मा, (कुरुक्षेत्र)

× × ×

"हिंदी और उसकी उपभाषाओं का स्वरूप' पुस्तक न केवल हिंदी भाषियों, अपितु हिंदीतर भाषा भाषियों के लिए भी बहुत उपयोगी सिद्ध होगी। इसके प्रकाशन पर विद्वान् लेखक को अनेक साधुवाद।"

—डा० बाबूराम सक्सेना (इलाहाबाद)

× × ×

"हिंदी और उसकी उपभाषाओं का स्वरूप 'डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' की विद्वत्तापूर्ण कृति है। इसमें लेखक ने व्याकरण से संबद्ध अनेक जटिल समस्याओं पर प्रकाश डाला है। थोड़े से संवर्धन के साथ 'हिंदी भाषा-खंड' हिंदी के एक मौलिक व्याकरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। इस पुस्तक में गंभीर अध्येताओं के लिए भी मूल्यवान् निधियाँ हैं।"

—डा० राकेश गुप्त, डी० लिट्० (पिथौरागढ़)

× × ×

"'रामचरितमानस' के सौंदर्य के परीक्षण में डा० सुमन की पैठ गहरी है। 'रामचरितमानस' जैसे उत्तम तथा सर्वप्रिय काव्य-ग्रंथ को आधार मानकर ही भारतीय काव्य शास्त्र के सिद्धांतों को सरल, स्वच्छ तथा बोध गम्य शैली में प्रस्तुत किया जा सकता था। यह ग्रंथ (रामचरितमानस: वाग्वैभव) लेखक की स्वारस्वत साधना का उत्तमांश भी माना जा सकता है।"

—डा० नगेंद्र (दिल्ली)

× × ×

"'हिंदी भाषा' ग्रंथ में डा० सुमन ने 'संदेश रासक' से **घोरंधारु और अंगंगि** आदि शब्दों के उदाहरण देकर एक अत्यंत रुचिकर घटना का उल्लेख किया है कि अपभ्रंश की जनबोली में शब्द का अंतिम अकार लुप्त हो गया था। डा० सुमन की विद्वत्तापूर्ण शोध-दृष्टि श्लाघनीय है।

—डा० सिद्धेश्वर वर्मा, डी० लिट्० (चंडीगढ़)

× × ×

"डा० सुमन का ग्रंथ 'कृषक जीवन संबंधी ब्रजभाषा शब्दावली' अन्य जनपदीय बोलियों पर कार्य करने वाले शोध छात्रों के लिए वरदान स्वरूप है। मैं इस श्रेष्ठ कृति का स्वागत तथा अभिनंदन करता हूँ।"

—डा० उदयनारायण तिवारी; डी० लिट् (इलाहाबाद)

× × ×

"मैंने श्री अंबाप्रसाद 'सुमन' की कृति 'कृषक जीवन संबंधी ब्रजभाषा शब्दावली देखी। हिंदी बोलियों की शब्दावली के क्षेत्र में यह अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य है।"

—डा० धीरेंद्र वर्मा, डी० लिट्० (इलाहाबाद)

× × ×

"श्री सुमन जी ने ब्रजभाषा-शब्दावली के इकट्ठा करने में उसका विवरण देने में तथा अपने विवरण को कहावतों, मुहावरों और दृष्टांतों द्वारा रोचक बनाने में जो अद्‌भुत्‌ लगन और अध्यवसाय दिखाया है, वह परम अनुकरणीय है। विवरण देने में उनकी गहरी तथा पैनी दृष्टि ग्रंथ (कृषक जीवन संबंधी ब्रजभाषा शब्दावली) के प्रत्येक पृष्ठ पर झलकती है।"

—डा० बाबूराम सक्सेना, डी० लिट्० (इलाहाबाद)

× × ×

---

१ "रामचरित मानस: वाग्वैभव," विज्ञान भारती, १९६७, वजीरनगर नयी दिल्ली-११०००३ से प्रकाशित है। इस ग्रंथ पर दो पुरस्कार मिल चुके हैं—प्रथम-उत्तर प्रदेश राज्य-पुरस्कार। द्वितीय—श्री रामकृष्ण हरजीमल डालमिया पुरस्कार नयी दिल्ली।

" 'संस्कृति, साहित्य और भाषा' ग्रंथ नाम को तो डा० सुमन के पत्रों का संग्रह है; किंतु वस्तुतः यह एक छोटा विश्वकोश बन गया है। मैं तो डा० सुमन की बहुज्ञता पर मुग्ध हो गया हूँ। वह डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल के सच्चे उत्तराधिकारी हैं।"

—डा० प्रभुदयाल मीतल डी० लिट्० (मथुरा)

× × ×

"डा० सुमन बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। वे जो कुछ लिखते हैं, साधिकार लिखते हैं। उनकी वाणी में ओज और निष्ठा की तेजस्विता है। उनमें विश्वास की दृढ़ता है। यही उनका सबसे बड़ा गुण है। उनकी शैली प्रत्येक विचार तथा भाव को साहित्यिकता प्रदान करती है।"

—(साहित्यवारिधि, वृंदावनदास (मथुरा)

× × ×

"'संस्कृति, साहित्य और भाषा' ग्रंथ आपके ज्ञान और व्यक्तित्व का जीवन-चरित्र है; ऐसा जीवन-चरित्र कि आप पर कोई कभी कहीं एक भी पंक्ति न लिखे, तब भी आप देश की विद्वंमंडली में सदा उत्तम आसन पर सुशोभित प्रतिष्ठित रहेंगे।"

—श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' (सहारनपुर)

+ × ×

"संस्कृति, साहित्य और भाषा' ग्रंथ लिखकर आपने एक कीर्तिमान स्थापित कर दिया है। आपकी ईमानदारी और निर्भीक अभिव्यक्ति किसे प्रभावित न करेगी ?"

—डा० बनारसीदास चतुर्वेदी, डी० लिट्०, (फीरोजाबाद)

× × ×

" 'संस्कृति, साहित्य और भाषा' ग्रंथ के वाचक को लगता है कि वह डा० सुमन की पत्र-वीथिका से होकर नहीं जा रहा है, बल्कि डा० वासुदेवशरण जी के प्रशस्त-पत्र-पथ पर यात्रा कर रहा है। अनेक स्थलों पर दोनों विद्वानों के मार्ग समावांतर होकर चलते दिखायी पड़ते हैं।"

—श्री हरिश्चंद्र, (लखनऊ)

× × ×

"तुम्हारी किताब (संस्कृति, साहित्य और भाषा) के लएँ का लिखूँ ? यह अपने ढँग की पहली किताब ऐ। भौत अच्छी ऐ। पढ़ि बे वारेन कूँ भौत कछू देयगी। ऐसी बढ़िया पुस्तक लिखिवे के लएँ मे·ो धन्यबाद स्वीकारियौ।"

—डा० गोवर्धननाथ शुक्ल (अलीगढ़)

× × ×

" 'संस्कृति, साहित्य और भाषा' ग्रंथ में बड़ी गूढ़, गंभीर, रहस्यात्मक, सरस, सुरुचिपूर्ण और ज्ञानवर्द्धक सामग्रियों का पुष्ट भंडार है। नयी सूझ है।"

—आचार्य पं० सीतारामचतुर्वेदी, (वाराणसी)

× × +

" 'संस्कृति, साहित्य और भाषा' की प्रति मिली। एक ही सुमन ने शत-शत प्रकार का सौरभ-आमोद देखा है। इस ग्रंथ से तो आप वस्तुतः नौरंगीलाल के रूप में सामने आये हैं। माता-पिता ने नाम बहुत बढ़िया रखा था। नाम तो दब गया, पर काम सामने आ गया।"

—आचार्य पं० किशोरीदास वाजपेयी, (कनखल)

× × ×

" 'संस्कृति, साहित्य और भाषा' ग्रंथ की सामग्री अत्यन्त उपयोगी और प्रेरणादायक है। एक-एक पत्र महत्वपूर्ण विचारों से भरा है। साहित्य और संस्कृति के अध्येताओं के लिए यह कृति निश्चय ही एक संदर्भ-ग्रंथ का काम देगी।"

—श्री यशपाल जैन (दिल्ली)

× × ×

" 'संस्कृति, साहित्य और भाषा' ग्रंथ का प्रणयन कर डा० सुमन ने ग्रंथ रचना के क्षेत्र में एक नयी दिशा की ओर संकेत किया है। इस ग्रंथ के पत्र क्या हैं, नावक के तीर हैं। इस ग्रंथ में 'सुमन' जी ने कई दिवंगत और जीवित मित्रों को लाकर खड़ा कर दिया है। लेखक 'सुमन' ही नहीं, अपितु सु-मन है।"

—डा० उदयनारायण तिवारी (इलाहाबाद)

× + ×

'संस्कृति, साहित्य और भाषा' में जिज्ञासुओं की जिज्ञासा समाधानार्थ लिखे गये पाठकों का निश्चित रूप से ज्ञानवर्धन करेंगे। सभी पत्रों में लेखक का वैदुष्य झलक रहा है। यह वैदुष्य उच्च कोटि का है तथा श्लाघनीय है। भाषाविषयक अनेक गुत्थियाँ इन पत्रों को पढ़कर सुलझ जाती हैं। ग्रंथ में विपुल सामग्री है, जो अध्येता को लाभान्वित करेगी ही।"

—डा० मुंशीराम शर्मा 'सोम' (कानपुर)

× × ×

"प्रेरणात्मक शिक्षण में डा० सुमन सच्चे अर्थों में प्रेरक शिक्षक हैं। डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' के अध्यापन में ऐसा जादू है कि छात्रों को पता नहीं चलता कि कब घंटा शुरू हुआ और कब खतम हुआ। शिक्षण में ऐसा जादू तभी आया करता है, जब कोई अध्यापक स्वयं प्रेरित होकर पढ़ाता है।"

—डा० प्रेमनारायण टंडन, संस्मरणीय शिक्षक और उनके शैक्षिक गुण पृष्ठ २८५।

× × ×

"दक्षिण के विश्वविद्यालयों में होने वाली हिंदी शिक्षण-संगोष्ठियों में उत्तर भारत के अनेक हिंदी विद्वान् आये हैं। भारत में अनेक विद्वान् डा० सुमन से ज्ञान में अधिक हैं और हो सकते हैं; लेकिन सुमन जी जैसा कुशल अध्यापक हमने आज तक नहीं देखा। हमारे विश्वविद्यालय पंद्रह दिन तक हिंदी शिक्षण-संगोष्ठी में डा० सुमन जी संदेश रासक के छंदों की व्याख्या प्रति दिन एक घंटे करते थे और हम मंत्र मुग्ध बने सुनते थे। डा० सुमन का घंटा डा० भगीरथ मिश्र के बाद पड़ता था। डा० भगीरथ मिश्र बिहारी सतसई, के दोहों की व्याख्या करते थे।"

—(मैसूर विश्वविद्यालय पत्रिका, सन् १९६५ ई० से उद्धृत)

× × ×

"डा० सुमन की अध्यापन कला अनोखी, गंभीर ,रोचक और विद्वत्तापूर्ण है। वक्ता के रूप में भी वे बहुत सफल सिद्ध हुए हैं। कविता, समाजशास्त्र, भाषाशास्त्र; काव्यशास्त्र आदि गंभीर विषयों पर सरस ढंग से विद्वत्तापूर्ण भाषण देकर हिंदी प्रदेश और अहिंदी प्रदेश की अनेक संगोष्ठियों में श्रोताओं को उन्होंने हर्ष पुलकित किया है।"

—('भाषा' त्रैमासिक, मार्च १९७२ ई०, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, पृष्ठ १६४)

× × ×

"इस बीच में 'हिंदी-प्रयोग' पुस्तक में बहुत-सी त्रुटियाँ मेरे ध्यान में आयीं; और बहुत-सी बातों की ओर मेरे अनेक मान्य तथा सुयोग्य मित्रों ने मेरा ध्यान आकृष्ट किया। ऐसे कृपालु मित्रों में मुख्य स्थान अलीगढ़ के पं० अंबाप्रसाद जी 'सुमन' एम० ए० का है, जिन्होंने सारी पुस्तक पढ़कर बहुत सी नयी बातों की ओर संकेत किया और बहुत-सी भूलें सुधारने में अमूल्य सहायता प्रदान की। इस छठे संस्करण में मैंने स्वयं जो संशोधन और सुधार किये हैं, उनके अतिरिक्त मैंने अपने सभी मित्रों और विशेषतः सुमन जी की सूचनाओं का विशेषरूप से उपयोग किया है। श्री सुमन जी का मैं इसलिए विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ कि यदि उनकी प्रेरणा और सहायता न होती, तो अब भी मैं और-और कामों में लगा रहता; और 'हिंदी-प्रयोग' को बहुत कुछ नया वर्तमान रूप देने की ओर मेरा ध्यान भी न जाता।"

—(श्री रामचंद्र वर्मा, हिंदी प्रयोग, छठें संस्करण का वक्तव्य)

× × ×

"चूना, कंकड़, पत्थर, जाली और नगों से संबद्ध शब्दावली[1] नागरी प्रचारिणी पत्रिका अंक २-३ में डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' ने संकलित की है। यह अत्यंत रोचक होने के साथ-साथ एक व्यावहारिक जीवित कार्य पद्धति से परिचय भी

---

१. यह शब्दावली डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' के शोध-ग्रंथ 'कृषक जीवन संबंधी व्रजभाषा शब्दावली' भाग १ व २ (प्रकाशक हिंदुस्तानी एकेडेमी; इलाहाबाद) पर आधृत है।

कराती है। उसका अपना एक पृथक् आनंद भी है। भारत सरकार जो पारिभाषिक शब्दावली तैयार कर रही है, उसमें इस प्रकार के प्रचलित शब्दों से काफी मदद मिल सकती है।''

—[(ह०) रसिकलाल पाठक, कल्पना (हैदराबाद), वर्ष ८, अंक १२, दिसंबर १९५७ ई०, पृष्ठ ३]

× × ×

''मेरी दृष्टि में डा० 'सुमन' हिंदी साहित्य के एक महान् स्तंभ हैं। और हिंदी के लिए इनका सर्वांगीण सहयोग प्रत्येक दृष्टिकोण से अत्यंत सराहनीय है। रामकृष्ण हरजीमल डालमिया पुरस्कार 'समिति की ओर से पूज्य डा० अंबाप्रसाद जी 'सुमन' को ''रामचरितमानस : वाग्वैभव'' की अपनी महान् कृति पर पुरस्कृत किया गया है। ऐसे ही उनकी अन्य उत्कृष्ट रचनाओं को विभिन प्रतिष्ठित संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत किया गया है।''

—(श्रीमती सरस्वती जी डालमिया, डालमिया हाउस, २७ अकबर रोड़, नयी दिल्ली)

—कार्यक्रम अधिशासी,
मद्रास आकाशवाणी

मुक्ता संकलन

—डा० कृष्णचंद्र गुप्त

अप्रकाशित कविता-पुस्तक 'अंतर्धारा' के कुछ मोती—

(१) "धनिकों का वैभव ही क्यों कवि ! प्यासी अश्रुधार भी देखो;
कवि ! मधुमय प्रभात को छोड़ो पंकज पर तुषार भी देखो।
जिनके बचपन ने ही पायी वृद्धापन की पूर्ण निशानी;
जिनके अरमानों की होली जली मिट चुकी भरी जवानी।
आज भूख से सिकुड़ गई हैं जिनकी रूखी-सूखी आँतें;
रोते रोते बीत गई हैं जिनकी अनगिन काली रातें।
उनकी दृग-सरि के दोनों कूलों के आर-पार भी देखो।
धनिकों का वैभव ही क्यों कवि ! प्यासी अश्रुधार भी देखो।"

× × ×

"क्या खिलने से पहले मुरझाने वाली कलियाँ देखी हैं ?
क्या खुलने से पहले मुँद जाने वाली अंखियाँ देखी हैं।
क्या बलने से पहले दीपक बुझ जाने वाले देखे हैं ?
क्या टूटे दिल यों ही घुट-घुट मर जाने वाले देखे हैं ?
कवि ! मानव के अंतस् की बड़वानल का अंगार भी देखो।
धनिकों का वैभव ही क्यों कवि ! प्यासी अश्रुधार भी देखो ॥"

—('हे कवि', दिनांक ४·४·१९४३ ई०)

× × ×

(१) "छलपूर्ण दूती अनुराग बताती है,
वेश्या सती को सत् पाठ पढ़ाती है।
अजब कुदरत है दिनों के फेर देखो,
काकनी कोयल को राग सुनाती है।"

× ×

आज दिल की लहर दिल में खो गयी है,
चाँदनी थक कर कहीं पर सो गयी है।
चश्मेतर को हैं अँधेरा ही अँधेरा,
याद दामन खूब आज भिगो गई है।"

× ×

"आज दिल की याद दिल को ही सताती,
चाँद-तारो! यह चमक मुझको न भाती।
आज दुखती आँख के आगे न चमको,
रोशनी उस दर्द को फिर से उठाती।"

× ×

"आज क्यों तारों भरी रात आयी?
देख जिसको याद भूली बात आयी।
चाँदनी है, साफ सारा आस्माँ भी,
क्यों नयन के देस में बरसात आयी?

—('दुर्दिन' दिनांक २९·१·४६ ई०)

× ×

(३) "गजब भर्यो जादू है देख्यो, बापू! त्यारी लठिया मैं।
तीनि हाथ की त्यारी गाती; परि हजार की त्यारी छाती।
ब्रह्मा नें जिअ लिख दई पाती; स्वतंत्र भारत त्यारी थाती।
चाँदी-सोनौं लिपट्यो देख्यो, हम नें हर की मुठिया मैं।
गजब भर्यो जादू है देख्यो, बापू! त्यारी लठिया में॥

× × ×

"गाण्डीव ते आगें बढ़ि गई; औ बज्जुरते ऊँची चढ़ि गई।
आदि सक्ति जाइ ऐसी मढ़ि गई, ऊपर नींचें ऐसी गढ़ि गई।
जाकी चमक फैलि गई घर-घर खेत-खेत की बटिया में।
गजब भर्यो जादू है देख्यो, बापू! त्यारी लठिया में॥"

— ('बापू की लठिया', दिनांक १२·१२·१९४७ ई०)

× × ×

(४) "धरा पर रही धूल उड़ती ही वैसी, गगन में चमन खिल लिया तो हुआ क्या?
मिली पूर्णिमा चंद्र भी मुसकराया, मिलन के क्षणों में झड़े फूल मुख से।
अमा की निशा का कफन तो धरा पर पड़ा ही रहा क्या कहूँ आज दुख से।
तिमिर तो अड़ा है वहाँ का वहीं पर अगर दीप कुछ जल लिया तो हुआ क्या?"
धरा पर रही धूल उड़ती ही वैसी, गगन में चमन खिल लिया तो हुआ क्या?

× × ×

"युगों की हुई साध पूरी हमारी, नये स्नेह के दीप हमने जलाये।
नयी वंदना में, नयी अर्चना में, नयी आरती में न नवछंद गाये

वही भाव-मकरंद वैसा ही परिमल, नया फूल यदि चढ़ लिया तो हुआ क्या ?
धरा पर रही धूल उड़ती ही वैसी गगन में चमन खिल लिया तो हुआ क्या ?

× × ×

"अरुणिमा उषा की विनत हो धरा पर धरा जग उठे बस सवेरा वही है ?
जहाँ पर मिटे श्रांति अणु की, अचल की, सचर की, अचर की बसेरा वही है ?
तड़पते रहे नीड़ में यदि पखेरू महल में गरुड सोलिया तो हुआ क्या ?
धरा पर रही धूल उड़ती ही वैसी गगन में चमन खिल लिया तो हुआ क्या ?

—("धरा पर धूल गगन में चमन", ८-६-१९४८ ई०)

× × ×

(५) "नहीं सुहाते नभ के तारे मैं धरती के फूल चाहता।
राष्ट्र-विधान हुआ परिवर्तित फिर भी कर्म-विधान वहीं है;
धनुर्बाण तो बदल लिये लक्ष्यी ने पर संधान वहीं है।
मंजुल फूल खिलाने वाली नयी सिंचना करनी होगी;
रँगरेली से भरी केलि की अनुरंजना बदलनी होगी।
जन-जन के कल्याण हेतु मैं परिवर्तन आमूल चाहता।
नहीं सुहाते नभ के तारे मैं धरती के फूल चाहता॥"

× × ×

मुझको वे निर्झर भाते हैं जो चट्टानों से टकराते;
बढ़ते चलते संघर्षों पर हँसी जवानी की बिखराते।
चंद्र नहीं प्रिय, जो रमणी-मुख के उपमान सदा बनते हैं,
मुझको तो प्यारे वे दीपक जो झोंपड़ियों में जलते हैं।
लहरों से ठुकराये तिनकों को सरिता के कूल चाहता।
नहीं सुहाते नभ के तारे मैं धरती के फूल चाहता॥"

—('मैं धरती के फूल चाहता', दिनांक २-१-१९५२ ई०)

× × ×

(६) "यह जिंदगी की धार अब फिर से रवानी माँगती है।
अंगार से कर प्यार यह फिर से जवानी माँगती है॥
सुरसरी शिव की जटाओं से उठी पर झुक गयी है;
गोद में कैलाश की थककर कहीं पर रुक गयी है।
कर्मरत योगी भगीरथ कर्म तजकर सो गया है;
इसलिए ही जाह्नवी-जल आज सपना हो गया है।
कर्तव्य-हित बलिदान भारत की कहानी माँगती है।
यह जिंदगी की धार अब फिर से रवानी माँगती है॥"

—('जिंदगी की धार', दिनांक १५-१२-१९५७ ई०)

× × ×

(७) "देवता हमको हैवान समझते हैं;
दाना वे, हमें नादान समझते हैं।
उन इंसानों को पलकें बिछाता हूँ;
जो इंसान को इंसान समझते हैं ।।"

× ×

"जबर न मिला, जोजेर को न कुचलता हो,
पुरजोर, जो कमजोर को न मसलता हो।
उस इंसान को, इंसाँ न कहूँगा मैं,
जो इंसान के दर्द पर न पिघलता हो।"

('देवता और इंसान', दिनांक २४-१-६६ ई०)

× × ×

(८) "भारत मैया के चरनन कौ भैया करि बंदन।
भगतसिंह बलिदान-रक्त की यह माटी है रोरी।
तिलक करौ, नित सीस चढ़ाओ जा गुलाल की झोरी ।।
राजगुरू, सुखदेव, दत्त से हँसि-हँसि फाँसी झूले।
यतींद्र और चंद्रसेखर-से नाहिं समाये फूले ।।
जय-जयकारू अकासु करि रह्यौ पवनु दै रह्यौ साखी।
सागर की सब तरल तरंगन नैं मिलि बाँधी राखी।
प्रति बसंत मैं तरुवर-उनकी जन्म-जयंति मनावैं।
लहरि-लहरि लहरावैं औ सुमनन के द्वार चढ़ावैं ।।
गंगा, सिंधु, ब्रह्म सरिता, गोदावरि कौ तर्पन।
भारत मैया के चरनन कौ भैया करि बंदन ।।

[आकाशवाणी, दिल्ली से अनेक बार प्रसारित]

—('भारत माँ की बंदना', दिनांक ६-४-१९७४ ई०)

× × ×

(९) "हँसो और बाँसो उछलो,
अपनी विजय-श्री पर।
तुमने अद्‌भुत वीरत्व का परिचय दिया है,
धन्य पराक्रमशीलो ! धन्य;
तब वह तुम्हारा कितना अपार साहस था ?
तब वह तुम्हारा कितना शौर्यपूर्ण प्रहार था ?
जब वह निहत्था अभिमन्यु
तुम सबसे अकेला लड़ने के लिए;
अपने रथ का पहिया निकाल रहा था।"

—('तुम्हारा पराक्रम', दिनांक २१-६-१९७७ ई०)

× × ×

(१०) "मन कलुष-तम को आत्म प्रकाश बदल देता है;
चंद्र अंतराल का अवकाश बदल देता है।
तुम्हारे तो पंचप्राण, दो चरण, दो हाथ हैं,
बालारूण आँख से आकाश बदल देता है ॥"

—('उद्बोधन', दिनांक १०-७-१९७७ ई०)

× × ×

(११) सिंधु में गोते लगाये, सीप, पर मोती नहीं;
वस्तु क्या मिलती न वह, जो भाग्य में होती नहीं।
भाग्य की रेखा बदल दूँगा, विधाता! सुन मेरे—
पाँव का तलवा, हथेली हाथ की सोती नहीं।"

—('भाग्य और कर्म'; दिनांक २६-५-१९७७ ई०)

× × ×

(१२) "ओ बाल्मीकि!
तुम आ तो गये इस युग में जन्म लेकर,
क्या तुम जाओगे इस जग को अपना कुछ देकर?
तुम्हारी आत्मा को यहाँ अगणित विषाद हैं;
यहाँ एक निषाद नहीं, कोटि-कोटि निषाद हैं।
किस-किसको शाप दोगे?
इस अपार तमसारण्य को
चरणों से कहाँ तक नाप लोगे?
प्रतिशाप पर सरस्वती जगेगी,
और 'रामायण, लिखी जाएगी?
इस तरह कितनी रामायणें रचोगे?
फिर प्रश्न यह है कि
ये रामायणें किस 'राम' पर लिखी जाएँगी?
'राम' तो यहाँ एक भी नहीं जन्मा,
क्योंकि यहाँ न कोई दशरथ है,
न कोई वशिष्ठ है।
और न कोई विश्वामित्र जैसा,
इस युग में तपोनिष्ठ है।
आश्रम नहीं हैं, अड्डे हैं;
यज्ञकुंड नहीं हैं, गड्डे हैं।
ताड़का सुबाहु-दल फिरता मद चूर है;
लंकापुरी भी अपने रूप में भरपूर है।

ऐसी स्थिति में कवे !
मौन साधो, धर्मपरायण नहीं;
'रावणायन' ही रच सकते हो,
'रामायण' नहीं
'सीता' नाम सुनकर भ्रांति में मत पड़ जाना,
ये जनक नंदिनी नहीं हैं।
क्योंकि यहां न कोई जनक हैं,
और न कोई कुशध्वज;
यों देखने को यहाँ सभी हैं धर्मध्वज।"

—('ओ वाल्मीकि', दिनांक १०-४-१९७७ ई०)

× × ×

(१३) "कंठ की विद्या, ग्रंथ में ऊँची होती है;
कल्पना कर्म से सदा नीची होती है।
प्रेम जिह्वा में नहीं, नेत्रों में है;
नेत्रों की वाणी की व्याख्या कठिन है;
मौन रूप प्रेम की परिभाषा कठिन है।
चरित्र करने में है, कहने में नहीं;
चरित्र की 'ध्वनि' 'शब्द' से ऊँची होती है।"

—('शब्द और ध्वनि', दिनांक ३०-४-१९७७ ई०)

× × ×

(१४) मैं आत्मा पर जीने वाला हूँ;
रोटियों पर नहीं।
आत्मा का स्वर मेरा जीवन है;
अतः उस स्वर के लिए टूट जाऊँगा;
पर झुकूँगा नहीं।
क्यों कि वह टूटना,
मेरा जीवन है, मेरी विजय है।"

—('मैं', दिनांक १-५-१९७७ ई०)

× × ×

(१५) पियाकूप-जल प्यास बुझ गयी यदि गंगाजल के प्यासे की;
ऐसा लक्ष्यी कभी जगत् में चरम लक्ष्य को पा न सकेगा।
सुन मंगलाचरण जो श्रोता भक्त चल दिया अपने घर को;
कभी आरती नहीं उतारी इष्टदेव को पा न सकेगा।
पाकर सिद्धि उसी में भूला योग-प्राप्ति-ध्येयी जो योगी;

योग भ्रष्ट वह सदा रहेगा, कभी योग को पा न सकेगा ।
जीवन-भर ही गमन निरंतर जिस यात्री का ध्येय बना हो;
बैठ गया यदि एक कोस चल, वह मंजिल को पा न सकेगा ।

—('बिंदु नहीं, सिंधु', दिनांक ५-५-१९७७ ई०)

× × ×

(१६) "द्वारिका ते चली मीरा बिंदावन आइ गई,
महारासधारी आगें रासु करिबे लगी ।
गोपी ललिता कौ रूपु, रूपु लै बिसाखा हू कौ,
कबहू सुरूपु राधिका कौ धरिबे लगी ॥
"मेरे प्रान ! मेरे नाथ ! मेरे नटवर लाल ।
मेरे प्रानाधार"—ऐसौ गानु करिबे लगी ।
माधुरी भगति में ही मीरा सराबोर भई,
गहि पतवार पारावार तरिबे लगी ॥"

× × ×

"मेरे हे गोपाल गिरिधारी नटवर लाल !
मीरा है अधीरा, धीर बाँधों नाथ ! जाँचि रही ।
नाथ हौ अनाथन के, दीनन के प्रतिपाल,
ऐसी गुनगाथा 'स्याम-स्याम' जपि बाँचि रही ॥
एकटक चितै रही मुरली-मुकट-छबि,
नटनागरी-सी बनी स्याम रूप राँचि रही ।
बाँधे पग घूँघुरू, अधर धरी बाँसुरी हू;
स्याम कौ ममीरा आँखि आँजि, मीरा नाचि रही ।"

—('मीराबाई', दिनांक २३-७-७७ ई०)

× × ×

(१७) "नैंक छिन लख्यौ स्यामु तन-मन बारि बैठी,
गजब कौ जादू भर्‌यौ मोर-पँखियान में ।
योग ते बड़ौ बियोग 'स्याम-स्याम' जपि रही,
राधा है दुखारी भारी हम दुखियान में ॥
"ध्यान में समायौ स्यामु, प्रान में समायौ स्यामु"
चरचा चलति नित यह सखियान में ।
"जाकी नैन-कोरन में सिगरौ जहान झूलै,
सोई स्यामु झूलै राधा जू की अँखियान में ।"

—('राधिका जी', दिनांक २८-८-१९७७ ई०)

× × ×

'संस्कृति, साहित्य और भाषा' ग्रंथ के कुछ मोती

"बुद्धि से हृदय सदैव बलवान् रहा है। बुद्धि अविश्वासिनी, अनिश्चयात्मक और तार्किक होती है। उसके निर्णय कुछ समय बाद बदल भी जाते हैं। श्रद्धा-आस्था-हीन होने के कारण बुद्धि द्वंद्वों में ही पलती रहती है। हृदय सरल है, श्रद्धा-विश्वास का केंद्र है। एक हृदय की बात दूसरे हृदय में तुरंत समाती भी है और फिर जीवन में रस बनकर कर्म के सौंदर्य को शक्ति प्रदान करती है। × × × हृदय की आवाज जीवन की धरित्री पर सुरधुनी है। बुद्धि झंझावात है, वात्याचक्र है।"

— (संस्कृति, साहित्य और भाषा, लेखक का आत्मनिवेदन, पृष्ठ ठ, ड)

× × × ×

"ज्ञानी इतिहास के रथ को आगे चला नहीं सकता। इतिहास के रथ को कर्मयोगी चलाता है। ज्ञानी वह है, जो केवल विचारता है। कर्मयोगी वह है, जो विचारे हुए को करता है। ज्ञानी करता नहीं है।"

—(संस्कृति, साहित्य और भाषा, साहित्य खंड, पृष्ठ ३)

× × × ×

"सूरज की किरण आयी, लेकिन घाटी में न उतरी। राष्ट्रपिता की अहिंसा ने आजादी दिलायी, लेकिन राष्ट्र-पिता को ही गोली से मारा गया। भारत को योग मिला, क्षेम नहीं। राजनीतिक स्वतंत्रता मिली, सामाजिक और आर्थिक नहीं। राष्ट्र जय-जयकार तो बोला, किन्तु अपनी राष्ट्रभाषा में नहीं। नेता कहना सीखते गये, करना भूलते गये। दिन घटते गये, रातें बढ़ती गयीं। परमार्थ गिरता गया, स्वार्थ उठता गया। विज्ञान जागा है, दर्शन सो गया है।"

—(संस्कृति, साहित्य और भाषा, साहित्य खंड, पृष्ठ ६३)

× × × ×

"लय का जन्म गति से होता है। प्राण जब भाव को सँजोये हुए कंठ से लय बनकर बाहर निकलता है, तब गीत का जन्म होता है।"

—(संस्कृति, साहित्य और भाषा, साहित्य खंड, पृष्ठ १६४)

× × × ×

"गजल में काफिये के बाद रदीफ आती है अर्थात् रदीफ काफिये के पीछे रहती है। वास्तव में जब ऊँट पर दो आदमी बैठते हैं, तब पीछे बैठने वाले को अरबी भाषा में 'रदीफ' कहते हैं। 'रदीफ' मूलतः उसी अर्थ को उर्दू छन्दःशास्त्र में पकड़े हुए है।" —(संस्कृति, साहित्य और भाषा, साहित्य खंड, पृष्ठ २३१)

× × × ×

"काश्मीरी शैवदर्शन की एक शाखा प्रत्यभिज्ञा दर्शन है। विश्वमय सत्ता में आने से पहले अर्थात् जीव-जगत् के रूप में रूपांतरित होने से पहले वह महाशिव विश्वोत्तिर्ण सत्ता में रहता है। वही आत्मबोध रूप शिव है। आत्मरूप का प्रत्यभि-ज्ञान अर्थात् आत्मरूप की पहिचान जो दर्शन कराता है, वह प्रत्यभिज्ञान का दर्शन

कहलाया। इसीलिए उसका नाम प्रत्यभिज्ञा दर्शन है। स्पंद दर्शन उसके आगे का दर्शन है, जिसे विश्वरूप सत्ता-दर्शन कहा जा सकता है।"

—(संस्कृति, साहित्य और भाषा, भाषा खड, पृष्ठ ३७१)

× × × ×

"तुलसी कविता का शरीर भाषा को, प्राण अर्थ को और आत्मा भाव को मानते हैं।" —(संस्कृति, साहित्य और भाषा, साहित्य खंड, पृष्ठ २१७)

× × × ×

"काव्य स्रष्टा कवि सूचना नहीं देता ; यह कार्य इतिहासकार का है। कवि कोरा तथ्य निरूपण नहीं करता ; यह काम गणित शास्त्री का है। कवि वस्तु-विश्लेषण नहीं करता ; यह काम वैज्ञानिक का है। कवि उपदेश नहीं देता, यह काम धर्म प्रचारक का है। कवि अक्षुण्ण प्रति कृति नहीं करता ; यह काम फोटो-ग्राफर का है। कवि तो कविता के माध्यम से अपनी अनुभूति को सर्वानुभूति बनाता है।" —(संस्कृति, साहित्य और भाषा, साहित्य खंड, पृष्ठ २५३)

× × × ×

"सच्चे साहित्यकार का साहित्य भूत, वर्तमान और भविष्य से संबंध रखता है। साहित्यकार में प्रतिक्रिया तत्काल नहीं जगती। सच्चे साहित्यकार की प्रति-क्रिया समष्टिमूलक भाव राशि के रूप में तभी बाहर आती है, जब पहले शनैः शनैः हृदय-भूमि में जज्ब हो लेती है। वह प्रतिक्रिया उसकी स्मृति बनकर निकलती है, राष्ट्रोत्कर्ष के मंगलमय मंजुल स्वर में। साहित्यकार का साहित्य वर्तमान के साथ भूत और भविष्य को भी समेट लेता है।"

—(संस्कृति, साहित्य और भाषा, साहित्य खंड, पृष्ठ २८८)

× × × ×

"हम भूत में क्या थे ? हम भविष्य में क्या बनेंगे ? आधुनिकतावादी इस पर सोचना कालातिपात, काहिली और अकर्मण्यता मानता है। उसका लक्ष्य वर्तमान ही होता है—वर्तमान को वर्तमान सुख के रूप में जीना, समाज को सुखी बनाते हुए जीना आधुनिकता है। बौद्धिकता पर, वैज्ञानिकता पर और वर्तमान के लिए नये मानव-मूल्यों पर आधुनिकतावादी पूर्ण आस्था रखता है।"

—(संस्कृति, साहित्य और भाषा, साहित्य खंड, पृ० २२६)

× × × ×

"डा० वासुदेव शरण जी अग्रवाल जन्म से अग्रवाल वैश्य थे ; लेकिन कर्म और ज्ञान से ब्रह्मर्षि थे। विद्या की धरित्री पर उन्हें वेदव्यास की परंपरा का प्रख्यात पुरोधा कहना ही समीचीन है। वैदिक साहित्य से लेकर लोक-साहित्य तक उनके ज्ञान का रथ जिस गति से चलता रहा, उसकी लीकें संस्कृति, साहित्य, कला और भाषा की भूमियों पर अमिट रहेंगी।"

—(संस्कृति, साहित्य और भाषा, भाषा खंड, पृष्ठ ३३६)

× × × ×

अन्य सीपियों के मोती

"वाक्य के अंतर्गत आये हुए '**शब्द**' को शब्द न कहकर, '**पद**' कहना अधिक वैज्ञानिक है। पदों को यदि विभिन विश्रामों के साथ पढ़ा जाए, तो वे वाक्यांतर्गत एक से अधिक अर्थ भी दे देते हैं। वाक्य के शब्द वस्तुतः ऐसे वीणा-तार हैं, जिन्हें छेड़ा जाए तो कई अर्थ-झंकारें निकलती हैं।"

—(रामचरित मानसः वाग्वैभव, विज्ञान भारती, १४६७, वजीर नगर, नयी दिल्ली–३, सन् १९३७ ई०, पृ० X VII, 'ग्रंथ के संबंध में' शीर्षक')

× × × ×

"लक्षणा, व्यंजना, उपमान, प्रतीक, अलंकार-विधान, बिंब-सृष्टि, छंद आदि जितने भी रसानुभूति के साधन हैं, उन सबका माध्यम शब्द का अर्थ है और उस अर्थ का मूल आधार है शब्द की व्याकरणिक स्थिति। अतः व्युत्पत्ति एवं व्याकरणिक रूप सहित शब्द का अर्थ-ज्ञान ही काव्य की रसानुभूति का मुख्य सोपान है।" —[रानचरित मानस-भाषा-रहस्य, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना (बिहार), सन् १९७४ ई०, प्रारंभिक पृष्ठ ग,]

× × × ×

"काव्य का अस्तित्व और महत्व उसकी कला अर्थात् शैली में ही निहित है। अनुभूति या भाव तो सामान्य सहृदय जन में भी घनीभूत अवस्था में उद्बुद्ध हो सकता है; किंतु जब तक वह अर्थ व्यंजक सरस समर्थ भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त न हो, तब तक काव्य संज्ञा प्राप्त नहीं कर सकता।"

—(रामचरित मानस-भाषा-रहस्य, आत्म-निवेदन, पृष्ठ ३)

× × × ×

"सृष्टि के प्रथम चरण में विश्वभर में आदि मानव-समूह केवल एक ही स्थान पर उत्पंन हुआ होगा, ऐसी बात आज के विवेकशील मनुष्य के मस्तिष्क में जमती नहीं है।"

—(हिंदी और उसकी उपभाषाओं का स्वरूप, प्रवेशिका पृष्ठ ३)

× × × ×

"मूक भाषा अर्थ तो देती है, लेकिन ध्वनि नहीं करती। नेत्रों की भाषा मूक होती है; किंतु समझदार उसका ठीक अर्थ समझ लेते हैं। महाकवि बिहारी के नायक-नायिका भरे भवन में नयनों से ही परस्पर वार्तालाप करते थे।"

—(भाषाविज्ञान : सिद्धांत और प्रयोग, प्रवेशिका, पृ० १७)

× × × ×

"स्वाधीनता के सर्वश्रेष्ठ प्रतीक एवं मातृभूमि मेवाड़ के सच्चे सपूत राणा प्रताप आज बाघंबर से शोभायमान सिंहासन पर विराजमान हैं। उनके ललाट से स्वातंत्र्य का तेज प्रकट हो रहा है। राजपूती रक्त की उमंगपूर्ण तरंग उनकी रग-रग में तरंगित हो रही है। उनके अंग-प्रत्यंग में साहस और शक्ति का संचार हो रहा

है। उनके हृदय के कोने-कोने में मेवाड़ की मान-मर्यादा तथा स्वातंत्र्य-रक्षा की एक अद्भुत लहर उठ रही है। दरबार में अनेक वीर योद्धा यथास्थान बैठे हैं। सब राजपूतों की मुख-मुद्राएँ वीरता, उत्साह एवं उल्लास के प्रकाश से चमक रही हैं। सिंहासन के समक्ष सुशोभित हुए सरदारों के मस्तक गौरव से ऊपर उठे हुए हैं।"

—[आदर्श विभूतियाँ, गया प्रसाद एंड संस, आगरा, पृ० १७ (महाराणा प्रताप)]

× × × ×

"हरिजनोत्थान आंदोलन की भूमिका का द्वितीय पृष्ठ महर्षि दयानंद की लौह लेखनी से लिखा गया था। अपने जीवन काल में ही आर्य समाज की स्थापना करके इस कर्मठ तपस्वी एवं वेदोपदेशक ब्रह्मचारी ने प्रमाद तथा पाखंड में डूबी हुई हिंदू जाति को सत्य-ज्ञान के प्रकाश में सत्पथ का अनुसरण कराया और हिंदुओं के हृदय से हीन-संकीर्ण-भावनाओं को निकालकर उन्हें सच्ची मानवता का महामंत्र सिखाया।" —[अछूत और हम, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़, प्रथम संस्करण, पृ० ३५ (हरिजनोत्थान की भूमिका, उत्तरार्द्ध शीर्षक से उद्धृत)]

× × × ×

"गत, आगत और अनागत नाम की काल की तीन अवस्थाएँ मानी गयी हैं। ये तीनों परस्पर भिन होते हुए भी अपने प्रेरणात्मक सूक्ष्म सूत्र से परस्पर संबद्ध हैं। काल-पटल पर से मिटता हुआ अतीत अपनी अंतिम चिनगारियों से वर्तमान को प्रज्वलित करता हुआ उसमें अभिनव चेतना तथा नूतन प्रेरणा भरता रहता है। फिर वही अतीत वर्तमान बनता हुआ भविष्य का निर्माण भी किया करता है। इसलिए वर्तमान का विश्लेषण और भविष्य की कल्पना करने से पहले यह आवश्यक हो जाता है कि भूत की ओर दृष्टि डालकर उसकी निर्वाण कालीन विकीर्ण ज्योति का भी अध्ययन किया जाए।"

—[साहित्यरत्न-दिग्दर्शन, भाग ३, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़, प्रथम संस्करण, पृ० १ ('हिंदी कविता-भारतेंदु से दिनकर तक' शीर्षक से उद्धृत)]

× × × ×

—हिंदी-विभाग
सनातनधर्म महाविद्यालय,
मुजफ्फरनगर (उ० प्र०)

भाषाशास्त्रीय मान्यताएं

—डा० कमलसिंह

डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' की भाषशास्त्रीय पुस्तकों के आधार पर हम उनकी भाषाशास्त्रीय मान्यताओं को यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं।

(१) **हिंदी भाषा** (अतीत और वर्तमान), विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, सन् **१९६५** ई० के अध्याय, 'हिंदी पद विश्लेषण-प्रक्रिया' में प्राति पदिक, विभक्ति और परसर्ग को स्पष्ट करते हुए डा० सुमन लिखते हैं—

१२—"पाणिनि—'बालकं, बालकौ, बालकान्' आदि पदों में **'बालक'** (अकारान्त शब्द) को प्रातिपदिक मानते हैं और—**अम्** को द्वितीया विभक्ति में एक वचनीय प्रत्यय मानते हैं। ऐसी दशा में **'बालकाम्'** (बालक+अम्) रूप बनना चाहिए था ; किंतु द्वितीया के एक वचन में **'बालकम्'** रूप प्रचलित है। ऐसी स्थिति से बचने के लिए पाणिनि को प्रातिपदिक **'बालक्'** के अंतिम—अ का लोप करना पड़ा, तब-अम् के योग की बात कही। ऐसी दशा में यदि **'बालक्'** (व्यंजनांत) को प्रातिपदित मान लिया जाए, तो आगे जुड़ने वाले अम् प्रत्यय की समस्या से कोई व्यवधान ही उत्पंन नहीं होगा। आज के भाषा शास्त्री ने **पद-विश्लेषण-प्रक्रिया में** ऐसी ही सरल प्रणाली अपनायी है। वह **'लड़के को'** या **'लड़की को'** का विश्लेषण इस प्रकार करेगा—

प्रातिपदिक	विभक्ति प्रत्यय	परसर्ग
(१) लड़क्	+—ए	को
(२) लड़क्	+—ई	को

"सारांश यह है कि हिंदी के पद-विश्लेषण के समय हमें प्रातिपदिक में लिंग-विधान को पृथक् कर देना चाहिए। 'लड़क्' में कोई लिंग नहीं है। पाणिनि ने विशेषण शब्दों के विश्लेषण में प्रातिपदिक में लिंग नहीं माना है। **'महत्'** में कोई लिंग नहीं है। पुं० **महान्** स्त्रीलिंग **महती** और नपुंसक लिंग **महत्** है।"

—(हिंदी भाषा, अतीत और वर्तमान, पृ० ७३, ७४)

× × × ×

"प्राचीन ब्रजभाषा संज्ञा के पुंलिंग, एक वचन पदों में उकार मिलता है। यह—उ प्रत्यय प्रथमा और द्वितीया विभक्ति का सूचक है। यह-उ प्रत्यय अपभ्रंश में भी मिलता है। 'संदेश रासक' में उकारांत संज्ञा पदों के अनेक उदाहरण मिलते हैं—

"बिगरत है सब काजु" —(सूरसागर, ना० प्र० स०, १०/८०८)
"अरु रोकौ जल नाजु" —(सूरसागर, ना० प्र० स०, १०/८०८)
"अंबुहरु घुरहुरइ" —(संदेश रासक, ३/१३६)
"झंखरु अंगु दहइ" —(संदेश रासक, ३/१३२)

अपभ्रंश	ब्रजभाषा	साहित्यिक खड़ी बोली हिंदी
(१) चंदणु तवई ।	(१) चंदनु तपै ।	(१) चंदन तपता है ।
(२) गिंभु तवियउ ।	(२) गिरीसमु तप्यौ ।	(२) ग्रीष्म तपा ।
(३) तुहुँ माणु मा कुरु ।	(३) तू मानु मति करि ।	(३) तू मान मत कर ।

—(हिंदी भाषा, अतीत और वर्तमान, पृष्ठ १५९–१६३)

हिंदी शब्दों में कुछ प्रत्यय ऐसे हैं, जो मूलतः शब्द थे । इसके उदाहरण कुछ इस प्रकार हैं—

सं० जात > हिं० जा
सं० भ्रातृ जात > हिं० भतीजा ।
सं० पाल > हिं० बाल ।
सं० कोटपाल > हिं० कोतवाल ।
सं० गोपाल > हिं० गोबाल, ग्वाल ।
सं० गृह > हिं० हर
सं० पितृगृह > हिं० पीहर ।
सं० ज्ञातिगृह > प्रा० णाइहर > नाइहर > नैहर
सं० काष्ठगृह > प्रा० कट्टहर > हिं० कठहरा ।
सं० भाण्डिका > हिं० एंड़ी
सं० चक्र भाण्डिका > प्रा० चक्क हंडिया > हिं० चकेंडी ।
सं० पुत्र > हिं० औत
सं० ज्येष्ठ पुत्र > हिं० जेठौत ।
सं० भगिनी पुत्र > हिं० बहिनौत ।

—(हिंदी भाषा, अतीत और वर्तमान, पृ० २०६ से २०७ तक)

× × × ×

(२) **मानस शब्दार्थ तत्व**, विज्ञान भारती, १४६७, वजीरनगर, सन् १९७१ ई०, नयी दिल्ली–३, के परिशिष्टांश में डा० सुमन शब्द, पद, कारक और विभक्ति संकल्पना पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं—

"पाणिनि की अष्टाध्यायी में कौन-सी विभक्ति किस कारक में आती है ? इसके लिए कुछ सामान्य सूत्र लिखे गये हैं—

"प्रातिपादिकार्थलिंगपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा" (अष्टा–२/३/४६) ।
"कर्मणि द्वितीया" (अष्टा० २/३/२) ।
किंतु 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' (अष्टा० २/३/१८) जैसे विशिष्ट सूत्रों द्वारा

यह भी स्पष्ट किया गया है कि कर्त्ताकारक में और करण कारक में तृतीया विभक्ति भी होती है। "××× ×××" "**राम ने रोटी** खायी" में '**राम**' **ने** पद कर्त्ता कारक, तृतीया विभक्ति में है। **रोटी** कर्म कारक है जो प्रथमा विभक्ति में है।

"मैं **राम** **को** जानता हूँ" ...में '**को**' कर्म कारक में है। "**राम को** घर जाना है" यहाँ '**को**' कर्त्ता कारक में है।" ×××× "**लड़के को** पढ़ना है ...में '**को**' कर्त्ता कारकीय परसर्ग है।" "**राम से कहो**" ...में '**से**' कर्म कारकीय परसर्ग है।[1]

"**मोहि लागि**" —में —हि विभक्ति प्रत्यय और '**लागि**' परसर्ग है।"

—(मानस शब्दार्थ तत्व, पृष्ठ १३३ से १३७ तक)

(३) हिंदी और उसकी उपभाषाओं का स्वरूप, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, सन् १९६६ ई० के अध्याय हिंदी में विशेषण पदों की स्थिति में डा० सुमन लिखते हैं—

विशेषण		**विशेष्य**
व्यंजनांत विशेषण—	सुंदर्	लड़का (पुं०)
	सुंदर्	लड़की (स्त्री)
	मलूक्	लड़का (पुं०)
	मलूक्	लड़की (स्त्री)
आकारान्त विशेषण—	काला	लड़का (पुं०)
	काली	लड़की (स्त्री)
अकारान्त विशेषण—	चुस्त	लड़का (पुं०)
	चुस्त	लड़की (स्त्री)

—(हिंदी और उसकी उपभाषाओं का स्वरूप, पृष्ठ ७७ से ९१ तक)

हिंदी में यौगिक और संयुक्त क्रियाएँ

(१) मोहन ने लड़के को **पिटवाया**। (यौगिक क्रिया)

(२) काला कुत्ता मुझ पर **दौड़ पड़ा**। (संयुक्त क्रिया)

—(हिंदी और उसकी उपभाषाओं का स्वरूप, पृ० ५१)

⊠ × ⊠ ×

हिंदी में कर्तृत्वाच्य और कर्मवाच्य के उदाहरण—

कर्तृत्वाच्य की क्रियाएँ—(१) लड़का घर **जाता है**; लड़के घर **जाते हैं**।

(२) लड़की घर **जाती है**; लड़कियाँ घर **जाती हैं**।

(३) लड़का गया; लड़की गयी।

---

१. डा० सुमन जी ने हिंदी में विभक्ति और कारक के अंतर को अच्छी तरह स्पष्ट किया है और संस्कृत व्याकरण के साथ तुलना की है कि संस्कृत में भी कारक और विभक्ति अलग-अलग हैं। जैसे '**रजकस्यवस्त्रं ददाति**'

कर्मवाच्य की क्रियाएँ—(१) लड़के ने अमरूद खाया ; लड़के ने अमरूद **खाये** ।
(२) लड़के ने रोटी खायी ; लड़की ने **रोटियाँ खायीं** ।

—(हिंदी और उसकी उपभाषाओं का स्वरूप, पृष्ठ ९४)

× × × ×

(४) भाषा विज्ञान : सिद्धांत और प्रयोग, सस्ता साहित्य भंडार, दिल्ली; सन् १९६९ ई० में डा० सुमन लिखते हैं कि हिंदी में कर्त्ताकारक में **ने** परसर्ग आता है, लेकिन दक्षिण भारत की द्रविड़ कुल की भाषाओं तमिल, तेलेगु, कन्नड़ और मलयालम में **ने** परसर्ग के समानांतर कोई परसर्ग नहीं आता । उदाहरण—

हिंदी	**तमिल**
(१) लड़के ने लड्डू खाया ।	(१) पइयन् लड्डु साप्पिट्टान् ।
(२) लड़के ने रोटी खायी ।	(२) पइयन् रोट्टि साप्पिट्टान् ।
हिंदी	**तेलेगु**
(१) लड़के ने रोटी खायी ।	(१) बालुडु रोट्टि तिनिनु ।
(२) लड़की ने रोटी खायी ।	(२) बालिकि रोट्टि तिनिनु ।
हिंदी	**कन्नड़**
(१) लड़के ने रोटी खायी ।	(१) बालक रोट्टि तिन्दनु ।
(२) लड़की ने रोटी खायी ।	(२) बालकि रोट्टि तिन्दलु ।
(३) लड़कों ने रोटी खायी ।	(३) बालक्कक्कु रोट्टि तिन्दरु ।
(४) लड़कियों ने रोटी खायी ।	(४) बालकिक्कलु रोट्टि तिन्दरु ।
हिंदी	**मलयालम**
(१) लड़के ने रोटी खायी ।	(१) आणकुट्टि रोट्टि तिन्नु ।
(२) लड़की ने रोटी खायी ।	(२) पेणकुट्टि रोट्टि तिन्नु ।
(३) लड़कों ने रोटी खायी ।	(३) आण कुट्टिकलु रोट्टि तिन्नु ।
(४) लड़कियों ने रोटी खायी ।	(४) पेणाकुट्टिकल् रोट्टि तिन्नु ।

दक्षिण भारत की भाषाओं में मलयालम बहुत सुगम है, इसमें क्रिया कर्त्ता के लिंग-वचन के कारण परिवर्तित नहीं होती । क्रिया एक ही है अर्थात् तिन्नु ।

—(भाषा विज्ञान : सिद्धांत और प्रयोग, पृष्ठ २५८ से २६१ तक)

× × × ×

(५) रामचरित मानस भाषा रहस्य, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना, सन् १९७४ ई० ।

'रामचरित मानस भाषा रहस्य' ग्रंथ के 'आत्मनिवेदन' में **बोला और बोली** क्रियाओं को मानस की अर्द्धाली से उद्धृत करते हुए तुलसी की अवधी भाषा के क्रिया-प्रयोगों पर विचार व्यक्त किये गये हैं—

"मरम बचन जब सीता **बोला**" —(मानस, अरण्य काण्ड, २८/५)

"**बोली** मधुर बचन महतारी ।" —(मानस अयोध्याकाण्ड, ५२/६)

डा० सुमन का मत है कि "मरम बचन जब सीता बोला" का मानक हिंदी में रूपांतर होगा—"सीता ने मर्म बचन **बोला**।" अर्थात् सीता द्वारा मर्म **बचन बोला गया**।" यहाँ **सीता** कर्त्ता कारक, तृतीया विभक्ति में है। **बचन** कर्म कारक प्रथमा विभक्ति में है। क्रिया **बोला** कर्म **'बचन'** के अनुसार है अर्थात् **बचन** पुंलिंग, एक वचन में है। इसलिए **बोला** क्रिया भी पुंलिंग, एक वचन में है। कर्मानुगामी होने के कारण यहाँ **बोला** भूतकाल में कर्मवाच्य की क्रिया है।

"**बोली** मधुर बचन महतारी"—में **'महतारी'** कर्त्ता, स्त्रीलिंग, एक वचन है। **'बचन'** कर्म पुंलिंग, एक वचन है। क्रिया **'बोली'** कर्त्ता के लिंग, वचन के अनुसार है। इसलिए **'बोली'** भूतकाल में कर्तृवाच्य की क्रिया है।

डा० सुमन **'जोगीं'** की अनुनासिकता को तृतीया विभक्ति का सूचक मानते हैं। **जोगीं**=योगी से, योगी द्वारा।

"जनु **जोगीं परमारथु पावा**।" —(मानस, अयो० २३९/३)

"जोगीं परमारथु पावा"=योगी से परमार्थ पाया गया !

'परमारथु'=कर्म कारक, प्रथमा विभक्ति। **जोगीं**=कर्त्ता कारक, तृतीया विभक्ति। **पावा**=भूतकाल की कर्मवाच्य की क्रिया, पुंलिंग, एक वचन।

अकारांत प्रातिपदिकों में—उ प्रत्यय प्रथमा तथा द्वितीया विभक्ति का सूचक है। **'परमारथु'** जैसे संज्ञापद पुंलिंग, एकवचन में ही होते हैं और यह संज्ञा का ऋजु रूप है; तिर्यक् की अवस्था में—उकार हट जाता है अर्थात् **परमारथ** प्रयोग होगा, जैसे—**परमारथ लागि**। —(रामचरित मानस भाषा रहस्य ग्रंथ के आधार पर)

(६) रामचरित मानस : वाग्वैभव, विज्ञान भारती, १४६७ वजीरनगर, नयी दिल्ली, सन् १९७३ ई० ग्रंथ के लेखकीय निवेदन में डा० सुमन अपना मत इन शब्दों में व्यक्त करते हैं—

तुलसीदास वशिष्ठ मुनि और निषाद राज गुह की भेंट को चित्रकूट पर इन शब्दों में लिखते हैं—

"राम सखा रिषँ बरबस भेंटा॥"

—(काशिराज संस्करण, मानस, अयो० २४२/६)

"यहाँ सामान्य पाठक को पता नहीं लगता कि भेंटने की क्रिया में पहल किसने की? राम-सखा ने या ऋषि वशिष्ठ ने। 'रिषँ' की अनुनासिकता तृतीया विभक्ति की सूचक है। अतः ऋषि द्वारा ही भेंट की गयी है।"

इस अर्द्धाली खंड का अर्थ इस प्रकार किया जाना चाहिए—ऋषि वशिष्ठ के द्वारा राम-सखा निषाद भेंटा गया अर्थात् ऋषि वशिष्ठ जी निषादराज गुह से मिले।

रिषँ=ऋषि द्वारा (**रिषँ** में तृतीया विभक्ति है)।

—(रामचरित मानस : वाग्वैभव के आधार पर,
पृष्ठ XI, शीर्षक ग्रंथ के संबंध में)

× × × ×

डा० सुमन ने अपने कारक संबंधी एक लेख में कर्म कारक और संप्रदान कारक के अंतर को स्पष्ट करते हुए पं० कामता प्रसाद गुरु के 'हिंदी व्याकरण' में वदतोव्याघात दोष की ओर इंगन किया है। डा० सुमन का मत है कि 'देना' अर्थ वाली क्रिया के साथ आने वाला संज्ञा पद 'संप्रदान कारक' में माना जाएगा। जैसे—"गुरु ने शिष्य को पोथी दी"—यहाँ 'शिष्य को' संप्रदान कारक है। "राजा ने ब्राह्मण को धन दिया" में 'ब्राह्मण को' संप्रदान कारक है। संप्रदान कारक के विवेचन में पं० कामता प्रसाद गुरु के 'हिंदी व्याकरण' में वदतोव्याघात दोष है। अनुच्छेद १६५ में गुरु जी 'शिष्य को' में गौण कर्म कारक और अनुच्छेद ३०५ (४) में 'ब्राह्मण को' में संप्रदान कारक बतलाते हैं।

(७) **संस्कृति, साहित्य और भाषा**—वासंती प्रकाशन, हरिनगर, अलीगढ़। सन् १६७६ ई०।

डा० सुमन का मत है कि प्राचीन ब्रजभाषा में भी 'नैं' परसर्ग का प्रयोग मिलता है। 'सूरसागर' में सूरदास ने 'नैं' का प्रयोग किया है—

"दियौ सिरपाव नृपराव नैं महर कौं,
आपु पहिरावने सब दिखाये।" (सूरसागर, काशी ना० प्र० स० स्कंध १०/पद ५८७) —(संस्कृति, साहित्य और भाषा, पृष्ठ २६१)

× × × ×

डा० सुमन ने अरबी ध्वनियों का उल्लेख करते हुए बताया है कि **काफ, ऐन, गैन, तोइ, स्वाद** आदि अरबी ध्वनियाँ हैं। ये वर्ण जिस शब्द में होंगे, वह शब्द अरबी भाषा का होगा। जैसे **कलम, आलिम, गरीब, तूफान, सुबह** आदि अरबी भाषा के शब्द हैं। —(संस्कृति, साहित्य और भाषा, पृष्ठ ३४२)

ब्रजभाषा के कुछ ग्रंथों में पुंलिंग, बहुवचन तिर्यक् संज्ञा रूप—**नि प्रत्यय** के साथ मिलते हैं—जैसे **कंजनि, पंजनि, कपोलनि** आदि। यह भोजपुरी का प्रभाव है। ब्रजभाषा का बहुवचनीय रूप तो **कंजन, पंजन, कपोलन** आदि होना चाहिए।

—(संस्कृति, साहित्य और भाषा, पृष्ठ ४६०)

डा० सुमन का मत है कि ब्रजभाषा में भविष्यत् कालीन क्रियाएँ **तिङन्त-रूपिणी** तथा **कृदंत रूपिणी** मिलती हैं। पूर्वी ब्रजभाषा में तिङंत रूप और पश्चिमी ब्रजभाषा में कृदंत रूप मिलते हैं—

पूर्वी ब्रजभाषा में—छोरा जइहै, छोरी **जइहै** (लड़का जाएगा, लड़की जाएगी)।

पश्चिमी ब्रजभाषा में—छोरा **जाइगो**, छोरी **जाइगी** (लड़का जाएगा, लड़की जाएगी)।

जइहै तिङंत क्रिया और **जाइगो** कृदंत क्रिया है। **जाइगो**—केंद्रीय ब्रजभाषा का रूप भी है। —(संस्कृति, साहित्य और भाषा के आधार पर, पृष्ठ ४४१)

× × × ×

हिंदी भाषा की लिपि देवनागरी है। हिंदी भाषा की लिपिगत वर्तनी में लेखन के समय कुछ लेखक व्यंजनांत शब्दों में हल लगाना उपयुक्त और उचित नहीं समझते अर्थात् **विद्वान्, श्रीमान्, जगत्** आदि शब्दों को बिना हल् के **विद्वान, श्रीमान, जगत** आदि रूप में लिखना ही उचित मानते हैं।

इस संबंध में डा० सुमन का मत है कि हलंत शब्दों में हल अवश्य लगाया जाना चाहिए। यदि हल् का प्रयोग न किया जाएगा, तो **कीर्तिमान** और **कीर्तिमान्** शब्दों में अर्थ स्पष्ट न होगा। **कीर्तिमान**=यश का मानदण्ड। **कीर्तिमान्**=यश वाला, यशस्वी।

अनुस्वार और अनुनासिक चिह्न (चंद्र बिंदु) का प्रयोग भी किया जाना चाहिए। **अंगना** (=स्त्री) और **अँगना** (=सहन, आँगन) में अर्थभेद है। इन दोनों शब्दों की मात्रा-संख्याएँ भी अलग-अलग हैं। छंद में तो स्पष्ट अंतर आ जाएगा। कुछ पत्रिकाएँ जैसे **कादंबिनी** (मासिक) आदि अनुनासिक चिह्न के स्थान पर अनुस्वार का ही प्रयोग करती हैं; जो ठीक नहीं है।

जिस स्त्रीलिंग संज्ञा शब्द के अंत में—य है, उसका बहुवचन—यें होना चाहिए, जैसे **गाय** का **गायें**; **राय** का **रायें**। लेकिन जिस स्त्रीलिंग शब्दों के अंत में स्वर—आ है, जैसे **रेखा, लता** आदि। उनका बहुवचन—एँ के साथ होना चाहिए, जैसे **रेखाएँ, लताएँ** आदि। कुछ शब्द भूल या अज्ञान से हिंदी में तत्सम समझे जाते हैं, जैसे **कार्यवाही**। यह शब्द **काररवाई** है। **कार्यवाही** का अर्थ तो 'काम को आगे ले जाने वाला' है। हमें हिंदी में **काररवाई** लिखना चाहिए।

—(संस्कृति, साहित्य और भाषा के आधार पर, पृष्ठ ३३१)

× × × ×

डा० सुमन के ग्रंथों (हिंदी और उसकी उपभाषाओं का स्वरूप और भाषा विज्ञान : सिद्धांत और प्रयोग) के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शब्द-भेद के संबंध में उनका निर्णय शब्दाधार पर और वाक्याधार पर अलग-अलग है।

डा० सुमन का कहना है कि कोशों में प्रायः '**अच्छा**' को विशेषण और '**हाँ**' को अव्यय लिख दिया जाता है। यह निर्णय केवल शब्द के आधार पर है। वाक्य के आधार पर अर्थात् व्याकरणिक दृष्टिकोण से सदा ऐसा मानना उचित नहीं है।

'**अच्छा**' और '**हाँ**' वाक्य के स्तर पर संज्ञा पद भी हैं। जैसे,

(१) मैं तुम्हारी **अच्छा-वच्छा** कुछ नहीं समझता।

(२) तुम्हारी इस '**हाँ**' का मतलब मैं क्या समझूँ ?

इन दोनों वाक्यों में '**अच्छा**' और '**हाँ**' संज्ञा हैं।

'**अच्छा**' का प्रयोग विशेषण रूप में—

(१) लड़का **अच्छा** है।

'**अच्छा**' का प्रयोग क्रिया विशेषण के रूप में—

(१) लड़की अच्छा गाती है।

'ही' का प्रयोग क्रिया विशेषण के रूप में—

(१) यह लड़की गाएगी ही।

'ही' का प्रयोग निपात के रूप में—

(१) बस, अब लड़की ही गाएगी।

"वह लड़का बहुत अच्छा है"—इसमें 'बहुत' पद 'अच्छा' विशेषण पद का विशेषण है। इसलिए यदि 'बहुत' को क्रिया विशेषण न कहकर **विशेषण-विशेषण** कहा जाए, तो अधिक वैज्ञानिक माना जा सकता है।

× × × ×

डा० सुमन के मतानुसार हिंदी में 'के' की दो व्याकरणिक कोटियाँ हैं। एक 'के' हिंदी में विशेषणीय प्रत्यय है, जो विशेष्य के लिंगवचन के अनुसार परिवर्तनशील है।

जैसे मूल प्रातिपदिक 'अच्छ' है। इसमें—आ, —ई, —ए लिंग-वचन सूचक प्रत्यय लगते हैं और अच्छा, —अच्छी और अच्छे पद बनते हैं। अच्छा लड़का, अच्छी लड़की, अच्छे लड़के।

इसी प्रकार हिंदी में का, की और के लिंग-वचन सूचक विशेषणीय प्रत्यय हैं, जो अपने विशेष्य के लिंग-वचन के अनुसार परिवर्तनशील हैं। जैसे—

लड़के का ग्रंथ, लड़के की किताब और लड़के के ग्रंथ। इसके अतिरिक्त 'के' हिंदी में एक परसर्ग भी है, जो अपरिवर्तनशील है। जैसे—

(१) **कमला के** लड़का हुआ है।

(२) **कमला के** लड़की हुई है।

(३) **कमला के** दो जुड़वाँ बच्चे हुए हैं।

(४) हम कुछ दिन **मित्रों के** ही गुजार देंगे।

सारांश यह है कि हिंदी में एक 'के' विशेषणीय प्रत्यय है, जो परिवर्तनशील है और दूसरा 'के' परसर्ग है, जो सदा एक रूप है अर्थात् अपरिवर्तनशील है।

—(संस्कृति, साहित्य और भाषा, पृष्ठ ३७९, ३८०)

डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' की यह मान्यता है कि हिंदी में विभक्ति-प्रत्यय और परसर्ग में अंतर है। दोनों बिल्कुल अलग-अलग हैं। विभक्ति-प्रत्यय संश्लिष्ट अवस्था में होता है और लिंग-वचन का सूचक है। "लड़कों को खाना खिलाइए"—वाक्य में आये हुए '**लड़कों को**' में लड़क् प्रातिपदिक,—ओं बहुवचनीय पुं·सूचक विभक्ति-प्रत्यय है। लेकिन **को** परसर्ग है, जो विश्लिष्ट अवस्था में है।

डा० सुमन ने 'हिंदी और उसकी उपभाषाओं का स्वरूप' पुस्तक के 'हिंदी की विभक्तियाँ और परसर्ग, शीर्षक अध्याय में इस तथ्य को स्पष्ट किया है।

कुछ लोग परसर्ग को संश्लिष्टावस्था सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं और कहते हैं कि '**को**' परसर्ग भी '**लड़कों को**' में संश्लिष्ट है।

डा० सुमन का तर्क है कि हिंदी, ब्रजभाषा और अवधी में परसर्ग मूल संज्ञा पद से पृथक् रहता है। मूल संज्ञा पद और परसर्ग के बीच में अव्यय भी आ जाता है। जैसे—

लड़कों ही को, घर ही को जैसे प्रयोग खड़ी बोली हिंदी में; **छोरन ही कूँ, घर ही कूँ** जैसे प्रयोग ब्रजभाषा में और **घर हि के** जैसे प्रयोग अवधी भाषा में मिलते हैं। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपनी आत्मकथा में एक वाक्य यह लिखा है—

"दाल **ही में** आटे के पेड़े या टिकियाएँ पकाकर के पेट-पूजा करता था।"

इस उक्त वाक्य के **'दाल ही में'** में 'दाल' और **'में'** के बीच में **ही** अव्यय है। अतः परसर्ग 'में' पृथक् है। विश्लिष्ट अवस्था में है।

तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में लक्ष्मण की उक्ति परशुराम के प्रति इस प्रकार लिखी है—

'द्विज देवता **घरहि के** बाढ़े" (बाल काण्ड, दो-२७६/७)

इस उक्त उद्धरण से प्रकट है कि **'घर'** और **'के'** के बीच में **'हि'** अव्यय (विपात) आ गया है और **'घर'** से **'के'** अलग है—

इससे सिद्ध है कि विभक्ति और परसर्ग अलग-अलग हैं।

— (हिंदी और उसकी उपभाषाओं का स्वरूप ग्रंथ के आधार पर)

× × × ×

डा० सुमन ने मानक हिंदी और ब्रजभाषा में पर्याप्त साम्य व्याकरणिक स्तर पर बताया है। **'संस्कृति, साहित्य और भाषा'** ग्रंथ में इस साम्य पर प्रकाश डाला गया है।

ब्रजभाषा में	**मानक हिंदी में**
(१) भाले **चमके** (पुं०, बहुवचन)	(१) भाले **चमके** (पुं० बहुवचन)
(२) छोटे **भाले** (पुं०, बहुवचन)	(२) **छोटे भाले** (पुं०, बहुवचन)
(३) छोटी **साली** (स्त्री०, एक वचन)	(३) छोटी **साली** (स्त्री० एक वचन)
(४) कमला नें **कही** (स्त्री०, एक वचन)	(४) कमला ने **कही** (स्त्री० एक वचन)
(५) अब तू **जा** (पुं०, एक वचन)	(५) अब तू **जा** (पुं० एक वचन)
(६) तू तो **चलैगी** (स्त्री०, एक वचन)	(६) तू तो **चलेगी** (स्त्री०, एक वचन)
(७) कुतिया आयी, बिल्ली **गयी** (स्त्री०, एक वचन)	(७) कुतिया आयी, बिल्ली **गयी**। (स्त्री०, एक वचन)

उपर्युक्त वाक्यों के संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रियापद सिद्ध करते हैं कि ब्रजभाषा और मानक हिंदी में पर्याप्त साम्य है।

—(संस्कृति, साहित्य और भाषा ग्रंथ के भाषा खंड के आधार पर)

कारकों के संबंध में डा० सुमन की मान्यता है कि कारक उसे ही मानना चाहिए जिसका संबंध क्रिया से हो। इस आधार पर हिंदी में छह कारक ही माने जाने चाहिए—(१) **कर्त्ता**, (२) **कर्म**, (३) **करण**, (४) **संप्रदान**, (५) **अपादान** (६) **अधिकरण**।

डा० सुमन के मत से कारक का निर्णय अर्थ के आधार पर किया जाना चाहिए। रूप के आधार पर कारक का निर्णय करना उचित नहीं। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि डा० सुमन पाणिनि की अष्टाध्यायी के अनुगामी हैं, जहाँ कारक का निर्णय अर्थ के आधार पर किया जाता है। पाणिनि भी "**रजकस्य** वस्त्रं ददाति" के **रजकस्य** पद में संप्रदान कारक मानते हैं। "**धनुषा 'विध्यति' के धनुषा**" में पाणिनि के मतानुसार अपादान कारक है। धनुष से छूटे हुए बाण से विद्ध करने की क्रिया की गयी है।

'हिंदी और उसकी उपभाषाओं का स्वरूप 'पुस्तक' में डा० सुमन का भी मत है कि यदि कोई '**को**' परसर्ग को कर्मकारक का और से परसर्ग को करण कारक का बता देता है, तो ठीक नहीं है।

प्रयोग और अर्थ के अनुसार **को, से, पर** आदि विभिन्न कारकों में आ सकते हैं। जैसे—

परसर्ग	प्रयोग	पद		कारक
परसर्ग को	(१) तुम उस लड़के **को** बुलाओ।	लड़के को	=	कर्म कारक
	(२) लड़के **को** पढ़ना है।	लड़के को	=	कर्त्ता कारक
	(३) लड़के को किताब दो।	लड़के को	=	संप्रदान कारक
	(४) लड़के **को** ज्वर है।	लड़के को	=	अधिकरण कारक
परसर्ग से	(१) लड़के **से** सवाल नहीं निकला।	लड़के से	=	कर्त्ता कारक
	(२) मैंने राम **से** सारी बात कह दी।	राम से	=	कर्म कारक
	(३) वह आँख से देखता है।	आँख से	=	करण कारक
	(४) पर्वत से पत्थर गिरे।	पर्वत से	=	अपादान कारक
परसर्ग पर	(१) पक्षी पेड़ **पर** है।	पेड़ पर	=	अधिकरण कारक
	(२) कमला **पर** नहीं चला जाता।	कमला पर	=	कर्त्ता कारक
	(३) चार पैसों **पर** ईमान खो दिया।	पैसों पर	=	संप्रदान कारक

परसर्ग का, के—

प्रयोग	पद		कारक
(१) यह रसोई **का** स्थान है।	रसोई का	=	संप्रदान कारक
(२) चींटी **के** भी जीव है।	चींटी के	=	अधिकरण कारक
(३) डाल **का** गिरा आम खाइए।	डाल का	=	अपादान कारक

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि कारक और कारकीय परसर्ग के निर्णय का आधार वाक्य में पद का अर्थ ही है।

डा० सुमन ने हिंदी के शब्दों में एक विशिष्ट तथ्य की ओर ध्यान दिलाया है कि हिंदी में ऐसे अनेक शब्द हैं, जिनके प्रत्यय मूलतः शब्द थे। जैसे **चकरेटी** (=चाक घुमाने की डंडी) में —एटी प्रत्यय मूलतः **यष्टिका** थी : **चकेंड़ी** (=चाक के पास का पानी का बर्तन) में—एँड़ो मूलतः **भाण्डिका** थी। **बिजैरा** में—ऐरा प्रत्यय मूलतः **गृह** था। हि० **चकरेटी**—सं० चक्रयष्टि। हि० **चकेंड़ी**—सं० चक्र भाण्डिका। हिः **बिजैरा**—सं० बीजगृह।

(हिंदी और उसकी उपभाषाओं का स्वरूप के आधार पर, पृष्ठ ६१–६३)

× × × ×

देवनागरी लिपि के अक्षरों में शिरोरेखा लगाना डा० सुमन अनिवार्य मानते हैं। उनकी मान्यता है कि यदि हिंदी भाषा लिखते समय देवनागरी लिपि के अक्षरों में शिरोरेखा न लगायी जाएगी, तो लिखावट के शब्दों के पढ़ने में भ्रांति उत्पंन होगी। वे ठीक तरह से पढे नहीं जा सकते।

यदि "**बता सा ले।**" लिखा जाएगा तो बिना शिरोरेखा के "**बता साले**" भी पढ़ा जा सकता है।

"**तीन सेर चना**" को कोई "तीन से रचना" भी पढ़ा जा सकता है।

शिरोरेखा की समस्या पर उनके ग्रंथ 'संस्कृति; साहित्य और भाषा' के भाषा-खंड में अच्छा आलोक डाला गया है।

(संस्कृति, साहित्य और भाषा, पृष्ठ ४५६–४५७)

× × × ×

उपर्युक्त ग्रंथ में ही उनका मत है कि हिंदी में —आ अंतवाली क्रिया के रूपों में पुंलिग बहुवचनीय स्थिति में —ए और स्त्रीलिंग, एकवचन की स्थिति में —ई लिखना चाहिए। —या अन्तवाली क्रियाओं में —ये, भी लिखना चाहिए जैसे—

सामान्य क्रिया का भूतकाल, पुं०, एकवचन रूप	स्त्रीलिंग	पुंलिग
होना से हुआ	हुई, हुईं	हुए
लेना से लिया	ली, लीं	लिये
करना से किया	की, कीं	किये
जाना से गया	गयी, गयीं	गये

(संस्कृति, साहित्य और भाषा, पृष्ठ ३३१)

× × × ×

क्रिया के वाच्यों के सम्बंध में डा० सुमन आचार्य पं० किशोरीदास वाजपेयी के समर्थक हैं। उनका मत है कि पं० कामताप्रसाद गुरु के हिंदी व्याकरण' में वाच्य और प्रयोग का झमेला है। जब गुरु जी 'हिंदी व्याकरण के अनुच्छेद ३४६ (क) में वाच्य को क्रिया का रूपांतर मानते हैं, तब उसमें अर्थ की बात क्यों कहते हैं।

अनुच्छेद ३४६ (क) की टी० में गुरु जी कहते हैं कि "रानी ने सहेलियों को **बुलाया**" में '**बुलाया**' क्रिया रूप के अनुसार तो भाववाच्य है, परंतु अर्थ के अनुसार कर्तृवाच्य ही है। फिर अनुच्छेद ३६५ (३) में "रानी ने सहेलियों को **बुलाया**" में '**बुलाया**' क्रिया को भावे प्रयोग में बताते हैं। अनुच्छेद ३५० में गुरु जी 'चिट्टी भेजी गई' में क्रिया के रूप को कर्मवाच्य कहते हैं। फिर अनुच्छेद ३६५ (२) में "पुस्तक पढ़ी गई" में क्रिया को कर्मणि प्रयोग की कहते हैं।

अनुच्छेद ३४६ (क) में गुरु जी 'लड़का पुस्तक पढ़ता है' में क्रिया का कर्तृवाच्य और अनुच्छेद ३६५ (१) में 'लड़की कपड़ा सीती है।' में क्रिया को कर्त्तरिप्रयोग की मानते हैं।

इससे सिद्ध है कि गुरु जी का वाच्य और प्रयोग एक ही बात हैं। क्रिया के वाच्य की परंपरा का मूल संस्कृत व्याकरण है। वहाँ स्पष्ट है कि जब क्रिया का रूप लिंगवचन में कर्त्ता के अनुसार हो, तो कर्तृवाच्य और कर्म के अनुसार हो तो कर्मवाच्य। भाव के अनुसार हो तो भाववाच्य कहलाती है।

अतः हिंदी में वाच्य इस प्रकार होंगे—(१) कर्तृवाच्य "लड़की कपड़ा सीती है।" (२) कर्मवाच्य "पुस्तक पढ़ी गयी" (३) भाववाच्य "रानी ने सहेलियों को बुलाया।" "मुझसे चला नहीं जाता।"

—हिंदी विभाग
सनातन धर्म महाविद्यालय
मुजफ्फरनगर (उ० प्र०)

साहित्यशास्त्रीय मान्यताएं

—डा० (श्रीमती) शारदा शर्मा

(१) रामचरितमानस : वाग्वैभव, विज्ञान भारती, १४६७ वजीर नगर, सन् १९७३ ई०, नयी दिल्ली–३

उपर्युक्त ग्रंथ में डा० सुमन का मत है कि आश्रय और आलंबन काव्यगत और रसगत अलग-अलग होते हैं। तुलसीकृत रामचरितमानस के अयोध्या काण्ड की एक चौपाई उद्धृत करके डा० सुमन ने आश्रय और आलंबन को स्पष्ट किया है—

"बहुरि बदनु बिधु अंचल ढांकी। पिअ तन चितइ भौंह करि बाँकी ॥
खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सिय सयननि।"
(आयो० ११६/६, ७)

काव्यगत आश्रय और आलंबन—सीता जी आश्रय हैं और सीता जी के रति भाव के आलंवन श्री रामचंद्र जी हैं।

रसगत आश्रय और आलंबन—सहृदय पाठक या दर्शक आश्रय है और रामचंद्र जी, सीता जी, ग्राम-बधुएँ आदि समस्त वातावरण आलंबन है। इस आलंबन से ही पाठक के हृदय का रति भाव उद्बुद्ध होगा; और शृंगार रस की अनुभूति पाठक को होगी।

—(रामचरितमानस : वाग्वैभव के आधार पर, पृ० ३४०, ३४१)

× × ×

डा० सुमन के मतानुसार यह कहा जा सकता है कि कोई अलंकार तभी अलंकार है, जब वह रस का उपकारी हो, अन्यथा उसे अलंकार मानना ही नहीं चाहिए।

—(रामचरितमानस : वाग्वैभव के आधार पर, पृ० ४३२)

"अलंकार वैभव" अध्याय में डा० सुमन ने रूपक और वाचकधर्मलुप्तोपमा अलंकारों में भेद स्पष्ट किया है। उनका मत है कि जब उपमान प्रमुख होता है, तब रूपकालंकार और जब उपमेय प्रमुख होता है, तब वाचकधर्मलुप्तोपमालंकार होता है। जैसे—

"बंदौं गुरुपद कंज कृपा सिंधु नर रूप हरि।" (बाल० १/सो० ५)

यहाँ वंदना 'पद' (उपमेय) की गयी है; उपमान कंज (कमल) की नहीं। इसलिए वाचक धर्मलुप्तोपमा अलंकार है। इसमें **उपमेय** की प्रधानता है।

"चरन कमल मृदु मंजु तुम्हारे।" (अयो० ६३/६)

यहाँ चरण पर कमल को आरोपित किया गया है। अर्थात् तुम्हारे चरण मृदु मंजु कमल ही हैं। यहाँ उपमान **कमल** की प्रधानता है। इसलिए यहाँ रूपक अलंकार है।

—(रामचरितमानस : वाग्वैभव के आधार पर, पृ० ४४६)

× × ×

(२) **संस्कृति, साहित्य और भाषा,** वासंती प्रकाशन, ८/७, हरिनगर, अलीगढ़, १९७९ ई०

उपमान और प्रतीक में अंतर स्पष्ट करते हुए डा० सुमन उपर्युक्त ग्रंथ के 'साहित्य खंड' में पृ० २१० पर अपने विचार इन शब्दों में व्यक्त करते हैं—

"उपमान और प्रतीक के संबंध में थोड़े से वाक्यों में ही मैं अपनी बात आपसे यहाँ कहता हूँ। कवि अपने कथ्य को स्पष्ट करने के लिए जिन साम्यों का सहारा लेता है, वे ये हैं—(१) **वर्ण साम्य** (२) **आकृति साम्य** (३) **गुण साम्य** (४) **क्रिया साम्य** (५) **प्रभाव साम्य**।

उपमान का संबंध वर्ण-साम्य, आकृति-साम्य और गुण साम्य से है; लेकिन प्रतीक क्रिया-साम्य और प्रभाव-साम्य से संबंध रखता है।

एक वैदिक मंत्र में कहा गया है कि एक वृक्ष पर दो सखा पक्षी बैठे हैं, जिनमें से एक पक्षी उस वृक्ष के फल खाता है, दूसरा नहीं खाता। इस कथन में दोनों पक्षी प्रतीक हैं। फल न खाने वाला पक्षी प्रतीक है, परमात्मा प्रतीयमान है। फल खाने वाला पक्षी प्रतीक है, जीवात्मा प्रतीयमान है। एक ब्रज-लोक गीत है—

"सरकै नाहिं बटुआ डोरी बिना।
सोने को लोटा गंगाजलु पानी,
पीवै नाहिं रसिया गोरी बिना।"

—सरकै नाहिं............

इस गीत में **डोरी** प्रतीक है, और गोरी प्रतीयमान है। यहाँ प्रतीक-विधान माना जाएगा, उपमान-विधान नहीं।

डोरी प्रतीक है रसिया (प्रेमी) की, **गोरी** प्रतीयमान है प्रेयसी की। प्रतीक-प्रतीयमान हैं, उपमान-उपमेय नहीं है। इसलिए उपर्युक्त ब्रजभाषा-पंक्तियों में प्रतीक विधान ही है। उपमान-विधान नहीं।

—(संस्कृति, साहित्य और भाषा, पृ० २१०)

× × +

इसी ग्रंथ 'संस्कृति, साहित्य और भाषा' के पृ० २१६ पर डा० सुमन लिखते हैं कि—

"रूपकातिशयोक्ति अलंकार का उपमान **कमल** जब केवल नेत्र को सूचित करे, तब वह 'कमल' उपमान होगा, और जब **कमल** से नेत्रानंद, सुंदरता, शीतलता, सुगंध, निर्लेपता आदि की समन्वयात्मक भाव-समष्टि व्यंजित हो, तब **कमल** वहाँ प्रतीक होगा।" —(संस्कृति, साहित्य और भाषा, पृ० २१६)

× × ×

डा० सुमन का मत है कि **काव्यानुभूति और प्रत्यक्षानुभूति** भिन-भिन अनुभूतियाँ हैं। उपर्युक्त ग्रंथ के 'साहित्य' खंड में डा० सुमन लिखते हैं—"पाश्चात्य समीक्षा के प्रभाव से अथवा कहिए कि नवीनता के मोह से आचार्य शुक्ल जी भारतीय रसशास्त्र की लीक से दो-एक जगह हटे हुए-से मुझे दिखायी दिये—एक तो रसानुभूति में मध्यम कोटि बताते समय (साधारणीकरण और व्यक्ति वैचित्र्यवाद निबंध में) और दूसरे काव्यानुभूति और प्रत्यक्षानुभूति को समान बताते समय। लौकिक अनुभूति और काव्यानुभूति (काव्यगत रसानुभूति) समान अनुभूतियाँ नहीं हैं। मेरी राय में दोनों भिन-भिन हैं। काव्यानुभूति में करुण आनंदप्रद है; लेकिन लौकिक करुण दुःखप्रद है। लौकिक करुण तो प्रत्यक्षानुभूति का करुण है। प्रत्यक्षानुभूति और काव्यानुभूति समान मानी जाएँगी, तो काव्यनंद ब्रह्मानंद सहोदर नहीं माना जा सकता। रसशास्त्र में आघात आता है।"

—(संस्कृति, साहित्य और भाषा, पृ० २०१)

× × ×

साहित्य के स्वरूप के संबंध में डा० सुमन की मान्यता है कि साहित्य को उदात्त, मनोरंजक तथा मंगलमय होना उसकी पहली शर्त है। जीवन के मंगल-सूत्रों की ओर से आँखें बंद करके जो गाली-गलौज बकता है, अथवा नंगा नाचता है, मेरी दृष्टि में वह साहित्य नहीं। वह लेखक साहित्य और समाज का दुश्मन है। साहित्य में कहीं न कहीं हित का अस्तित्व अवश्य होना चाहिए। तभी वह साहित्य है। —(संस्कृति, साहित्य और भाषा, पृ० २१३)

× × ×

डा० सुमन का मत है कि **रसानुभूति में कोटियाँ** नहीं होतीं। डा० सुमन आचार्य शुक्ल जी की मध्यम कोटि की रसानुभूति (साधारणीकरण और व्यक्ति वैचित्र्यवाद निबंध में) से सहमत नहीं। उनका कहना है कि—

'रस के चार अवयव होते हैं—(१) **विभाव**—आलंबन एवं उद्दीपन (२) **अनुभाव** (३) **संचारीभाव** (४) **स्थायी भाव**।

यदि काव्य-पक्ष की बात कहें, तो दो ही पक्ष हैं—(१) **भाव-पक्ष अर्थात् आश्रय** (२) **विभावपक्ष अर्थात् आलंबन**।

आश्रय से संबंध रखते हैं स्थायीभाव, संचारी भाव और अनुभाव आलंबन से संबंध रखते हैं उद्दीपन विभाव।

रसानुभूति की प्रक्रिया में विभाव, अनुभाव, संचारी और स्थायी भाव—चारों का ही साधारणीकरण होना चाहिए। आचार्य शुक्ल जी के निबंध में विभाव के साधारणीकरण पर ही विशेष बल है। साधारणीकरण वास्तव में तभी साधारणीकरण है, जब रसानुभूति में सहायक है। रसानुभूति अर्थात् रसात्मकता का निर्णय दर्शक या पाठक किया करता है।

काव्यांतर्गत तीन ही तत्व हैं—(१) **आश्रय** (२) **आलंबन** (३) **आलंबन-आश्रय से संबद्ध भाव**। साधारणीकरण का निर्णय तो दर्शक या पाठक पर निर्भर है।

रस-प्रक्रिया में कभी रसानुभूति होती है और कभी रसाभास की अनुभूति होती है। रावण यदि सीता जी पर क्रोध करता है, तो भारतीय काव्यशास्त्र की दृष्टि से रावण के क्रोध-भाव का आलंबन (सीता) अनुचित है। अतः ऐसी स्थिति में पाठक को रसाभास की ही अनुभूति होगी। रसाभास में साधारणीकरण कहाँ? आचार्य शुक्ल जी ने ऐसी अवस्था में उसे माध्यम कोटि की रसानुभूति कहा है। रसानुभूति में कोटियाँ नहीं होतीं।"

—(संस्कृति, साहित्य और भाषा, पृष्ठ १६१)

× × ×

हिंदी साहित्य में **नयी समीक्षा** के संबंध में डा० सुमन का मत इस प्रकार है—

"प्रमुख रूप से नयी समीक्षा विचार को ही पकड़ने की शक्ति रखती है, भाव को नहीं। गद्यात्मक सपाट बयानी को नयी समीक्षा कविता की अभिव्यक्ति में ऊँचा दर्जा देती है। नयी समीक्षा आधुनिकता के नाम पर प्राचीनता को नकारती है। नयी समीक्षा के पाँव रेतीली जमीन पर हैं। वह आन्दोलन, गुटबाजी और नारेबाजी पर ही बहुत कुछ चल रही है। नयी कविता के कुछ नये समीक्षक कहते हैं कि न हम रसवादी हैं, न हम अभिव्यंजनावादी हैं और न हम मार्क्सवादी हैं—इन सबसे अलग हैं। लेकिन अलग रहकर कहते क्या हैं? यह ठीक पता नहीं चला। इसके सिद्धांत सर्वमान्य रूप में अभी स्थिर नहीं हुए। स्वयं नये समीक्षक एक दूसरे की काट भी कर रहे हैं और कीचड़ उछाल रहे हैं। अपनी बात शेर रहे, यही फिक्र है उन्हें।

नयी समीक्षा का कोई एक मान्य शास्त्र है ही नहीं, तब क्षणिक ऑक्सीजन पर वह क्या जीवित रह सकेगी? इसे अभी तक आचार्य शुक्ल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी अथवा डा० नगेंद्र जैसा भारीभरकम समीक्षक भी नहीं मिला। वर्तमान में नयी समीक्षा अपने ढंग से कथ्य को ही अधिक कहती है, शिल्प और शिल्प के

प्राण को नहीं। काव्य की सूक्ष्म भावात्मकता को उद्घाटित करने वाला हृदय और मस्तिष्क नयी समीक्षा के पास नहीं है।"

—(संस्कृति, साहित्य और भाषा, पृ० १८२)

× × ×

भारतीय साहित्य में काव्यालोचना का बीज डा० सुमन बाल्मीकि रामायण के निम्नांकित श्लोक में मानते हैं, जहाँ बाल्मीकि ने अपने शिष्य भरद्वाज से अपने प्रथम अनुष्टुप छंद की आलोचना करते हुए कहा है—

"पादबद्धोऽक्षरसमस्तंत्रीलयसमन्वितः।
शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोकोभवतु नान्यथा।"

—(बाल्मीकि रामा०, बाल० सर्ग २/श्लोक १८)

उपर्युक्त श्लोक को काव्य की समालोचना ही मानना चाहिए। भारतीय साहित्य में अर्थात् काव्य-साहित्य में काव्यालोचना का प्रथम बीज मेरी राय में यही है।

इसी प्रसंग में आगे चलकर डा० सुमन ने यह भी बताया है कि **समालोचना** शब्द में मूल धातु लोच् है, लुच् नहीं है। पाणिनि के धातु पाठ में लुच् धातु नहीं है। **लोच्** को ही पाणिनि ने 'लोचृ' लिखा है।

—(संस्कृति, साहित्य और भाषा, पृ० २११)

× × ×

डा० सुमन का मत है कि कविता की सृष्टि में शब्द बड़ा कमजोर साधन है। कवि के वास्तविक कथ्य को भाषा के शब्द व्यक्त नहीं कर सकते। इस विचार की पुष्टि में डा० सुमन लिखते हैं—

'कवि के मनोराज्य में जो भाव-भावनाएँ एवं चित्र-विधान होते हैं, वे ऐसे दिव्यतम तथा परम अलौकिक होते हैं कि उन्हें वैखरी वाणी के शब्द पूर्णरूपेण व्यक्त करने में प्रायः असमर्थ से हो जाते हैं। तब कवि अपने भाव-लोक को रूपायित करने के लिए अनेक पर्यायवाची शब्दों में से किसी एक शब्द को स्वीकारता है। फिर भी वैखरी वाणी का वह शब्द अधूरा या अपूर्ण ही ठहरता है। इसीलिए कवि के शब्द कवि की कविता के भाव और अर्थ की व्याख्या नहीं है; संकेत मात्र हैं। कविता वह है, जिसके ३/४ को कवि नहीं कह सका।"

—(संस्कृति, साहित्य और भाषा, पृ० ४६४)

× × ×

रेखाचित्र और **संस्मरण** के संबंध में डा० सुमन के मतानुसार यह कहा जा सकता है कि रेखा-चित्र का प्रमुख संबंध कथन-शैली से है, जिसके माध्यम से लेखक शब्दात्मक फोटोग्राफी प्रस्तुत करता है। रेखाचित्र को साहित्यिक विधा कहना अधिक वैज्ञानिक नहीं माना जा सकता। रेखाचित्रात्मक शैली संस्मरण कहानी या उपन्यास में भी अपनायी जा सकती है। डा० सुमन का मत यह भी है कि—

"रेखाचित्र शुद्ध विषयगत होता है। संस्मरण विवरण प्रधान और विषयिगत होता है। रेखाचित्र वर्तमान से, लेकिन संस्मरण भूत से प्रमुखत: अधिक संबद्ध होता है।"

—(संस्कृति, साहित्य और भाषा के आधार पर, पृष्ठ २४३)

× × ×

काव्य-ग्रंथ और उसके समालोचक के संबंध में डा० सुमन की कुछ विशिष्ट मान्यताएँ हैं। उनका कहना है कि हर कवि की कविता को हर समालोचक नहीं समझ सकता। विशिष्ट कवि की कविता को देखने-परखने के लिए विशिष्ट समालोचक की विशिष्ट आँखों की आवश्यकता है। काव्य-ग्रंथ के स्रष्टा कवि के संस्कारों वाला समालोचक ही उस निर्दिष्ट काव्य-ग्रंथ की ठीक समालोचना कर सकता है। भक्त कवियों की भाव-भूमियों तथा भाव-लोकों को समझने के लिए कुछ वैसे ही संस्कारी समीक्षकों की जरूरत है। कम्यूनिस्ट समीक्षक आचार्य वल्लभ अथवा तुलसीदास की कविताओं के भाव-सौंदर्य को समझने में असमर्थ रहेगा।

—(संस्कृति, साहित्य और भाषा के आधार पर, पृ० ४६५)

× × ×

रामचरितमानस : वाग्वैभव[1] और **संस्कृति, साहित्य और भाषा** ग्रंथों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि डा० सुमन काव्यानुभूति और रसानुभूति में अंतर मानते हैं। उनका मत है कि काव्यानुभूति कवि (स्रष्टा) को और रसानुभूति पाठक (दर्शक) को होती है।

काव्य का सहृदय पाठक काव्य-पठन के समय काव्यगत पात्र से भाव तादात्म्य अर्थात् 'समानुभूति' करता है। इसे Empathy भी कहते हैं। लेकिन रसाभास या रसभंग की स्थिति में काव्यगत पात्र और पाठक अपनी-अपनी पृथक्-पृथक् सत्ताएँ रखते हैं। इस दशा को 'सहानुभूति' कह सकते हैं। इसे Sympathy भी कहा गया है। सहानुभूति में भावानुभूति के धरातल पर दो का व्यक्तित्व भिन-भिन होता है। लेकिन समानुभूति में दो का व्यक्तित्व समभाव अर्थात् एकभाव हो जाता है। साधारणीकरण की स्थिति में समानुभूति अर्थात् भाव तादात्म्य ही होता है। वही रसानुभूति की स्थिति भी है। समानुभूति के समय पाठक या दर्शक का मन वे ही क्रियाएँ करता है, जिन्हें काव्यगत पात्र करता है। भाव तादात्म्य का अर्थ है, काव्यगत पात्र से भाव की तत्स्वरूपता।

डा० सुमन की यह भी मान्यता है कि काव्य कला नहीं; वह कलाओं से बहुत उच्च और दिव्य है। काव्य में श्रोता, पाठक या दर्शक को भाव में डुबाने की महाशक्ति है। मूर्ति कला तथा चित्रकला तो दर्शक को केवल सौंदर्यानुभूति ही करा

---

१. डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' की यह कृति (रामचरितमानस : वाग्वैभव) को दो संस्थाओं ने संमानित तथा पुरस्कृत किया है—(१) उत्तर प्रदेश राज्य, लखनऊ (२) रामकृष्ण हरजीमल डालमिया पुरस्कार समिति नयी दिल्ली।

सकी है; रसमग्न नहीं कर सकतीं। लेकिन कविता अर्थात् काव्यकृति पाठक, श्रोता या दर्शक को रसानुभूति करा सकती है। रसानुभूति सौंदर्यानुभूति से बहुत ऊँची है। रसानुभूति में रमणीयता की परम शक्ति निहित है।

संस्कृति, साहित्य और भाषा ग्रंथ के पृष्ठ २१८ के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि डा० सुमन सौंदर्य की स्थिति द्रष्टा और दृश्य दोनों में ही मानते हैं। इस मान्यता को उदाहरण के साथ व्यक्त करते हुए उन्होंने बिहारी का एक दोहा भी उद्धृत किया है—

"रूप रिझावन हारु वह, ए नैना रिझवार।"

—(बिहारी रत्नाकार, दो० ६८१)

काव्य के आदर्श और यथार्थ के संबंध में डा० सुमन की मान्यता है कि सच्चे काव्य में यथार्थ होता ही नहीं। वहाँ सब कुछ आदर्श ही होता है। काव्य-स्रष्टा कवि के भाव-लोक का कथ्य अथवा कहिए कि कवि के मनोराज्य के व्यक्ति या वस्तुएँ ऐसी दिव्यतम तथा भव्यतम होती हैं कि उन्हें लोक से परे अर्थात् लोकातीत ही मानना पड़ेगा। तुलसी के 'रामचरितमानस' में जो परम रूपलावण्यमयी सीता अभिव्यक्त हुई हैं, वह तुलसी के मानस की अपनी मानसी सृष्टि है। 'रामचरितमानस' में जनक की पुष्पवाटिका जिस शोभा, सुषमा और दिव्य परया के साथ चित्रित की गयी है, वह इस लोक से परे की पुष्पवाटिका है। अतः यही कहा जा सकता है कि काव्य में सब कुछ आदर्श ही होता है, यथार्थ नहीं।

—(संस्कृति, साहित्य और भाषा ग्रंथ के साहित्य खंड के आधार पर)

× × ×

काव्य के सत्य के संबंध में डा० सुमन की मान्यता है कि सच्चे काव्य में भावनाएँ कल्पनाओं के साथ चला करती हैं। सच्चे काव्य में घटना-सत्य नहीं होता है, वहाँ तो भावना-सत्य ही प्रधान होता है। जो पाठक काव्य में घटना-सत्य को ही पाने का प्रयत्न करेगा, उसे निराशा ही होगी। काव्य के सत्य को जानने और पहचानने की दृष्टि सहृदय पाठक में ही हो सकती है। हृदयप्रधान पाठक ही कविता के सत्य को जानकर उसमें रम सकता है, शुद्ध बुद्धिवादी पाठक नहीं।

डा० सुमन ने 'रामचरितमानस' में से लक्ष्मण-शक्ति-प्रसंग की अर्द्धालियाँ उद्धृत करते हुए सिद्ध किया है कि भले ही लक्ष्मण यथार्थ की भूमि पर अर्थात् घटना-सत्य के आधार पर राम के सहोदर भाई नहीं थे, किंतु तुलसी की मानस धरित्री पर तथा भाव-जगत् में लक्ष्मण उनके (राम के) सहोदर भाई ही थे। भले ही लक्ष्मण अपनी माता सुमित्रा के एक कुमार नहीं थे। उनके साथ दूसरे शत्रुघ्न भी थे; किंतु राम की भावना में लक्ष्मण अपनी माता सुमित्रा के एक ही पुत्र थे। राम का लक्ष्मण के लिए यह कहना कि **"निज जननी के एक कुमारा"** (मानस,

लंका कांड) -- भावना-सत्य है, घटना सत्य नहीं।

—(संस्कृति, साहित्य और भाषा ग्रंथ के साहित्य खंड के आधार पर)

× × ×

डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' का मत है कि सौंदर्य की स्थिति दृश्य और द्रष्टा दोनों में रहती है। उनका कथन इस संबंध में इस प्रकार है—

"मेरा अपना मत वस्तु और प्रमाता (द्रष्टा) के समन्वय से ही संबद्ध है। रूप भी रिझावन हार हो और नयन भी रिझवार हों, तभी सौंदर्य की अनुभूति हो सकती है।"

—(संस्कृति, साहित्य और भाषा ग्रंथ के साहित्य खंड के आधार पर)

—अध्यक्ष, हिंदी विभाग
मुंनालाल एवं जयनारायण खेमका
कन्या महाविद्यालय,
सहारनपुर (उ० प्र०)

काव्य–कृति "उद्‌गार"

—डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

आदिम काल से लेकर आज तक काव्य समाज का एक आवश्यक और उपयोगी अंग रहा है। संसार के प्रायः सभी साहित्यों में काव्य की प्रधानता पायी जाती है। उसका आश्रय ग्रहण करके न मालूम कितने व्यक्ति अमरत्व प्राप्त कर चुके हैं। मनुष्य को उच्च भाव-भूमि पर स्थित करने के कारण कविता को आनंदमूलक और ब्रह्मानंद सहोदर कहा गया है। आनद से तात्पर्य लोकोत्तर आनंद का है, जो आनंद साधारण अर्थ में आनंद नहीं होता। उसमें कवि के व्यक्तित्व का सार निहित रहता है। किंतु लोकोत्तर आनंद प्रदान करने की शक्ति रखने और ब्रह्मानंद सहोदर होने के कारण काव्य को अपार्थिव समझना उचित न होगा। काव्य लोक की वस्तु और उसका संबंध मनुष्य के द्वंद्वात्मक जीवन से है। सामाजिक जीवन के घात-प्रतिघात से चेतना प्राप्त करके ही कवि काव्य-रचना करता है। उसमें युग विशेष की चिंताओं, आकांक्षाओं, मनोवृत्तियाँ आदि के सहित लोक-जीवन प्रतिबिंबित रहता है। वास्तव में कवि अपने चारों ओर के जीवन का एक अनुभव प्राप्त कर, उसे आत्मसात कर अपने अनुभव को समाज का अनुभव बनाकर अपने भावों और विचारों की अभिव्यक्ति करता है। काव्य की रचना करते समय कवि का अनुभव केवल व्यक्तिगत ही नहीं होता, वरन् एक ओर तो उसका संबंध समाज के निरंतर परिवर्तनशील रूपों में अंतर्निहित मानव-जाति की मूल शाश्वत वृत्तियों से स्थापित होता है और दूसरी ओर युग विशेष के सामान्य अनुभव से। एक से यदि उसे चिरंतनत्व प्राप्त होता है, तो दूसरे से सामयिक महत्व। काव्य के प्रति यही दृष्टि-कोण अब सामान्यतः स्वीकार किया जाता है। विशेष रूप से मानव-जाति की वर्तमान संकटकालीन परिस्थिति में तो यह दृष्टिकोण और भी महत्वपूर्ण माना जाने लगा है।

वैज्ञानिक, आर्थिक, राजनीतिक, नैतिक आदि दृष्टियों से आज का मानव-जीवन एक भारी संक्रांति-काल से गुजर रहा है। आज अन्य अनेक संघर्षों के अति-रिक्त व्यष्टि और समष्टि का संघर्ष भी प्रमुख और उग्र रूप धारण किये हैं। ऐसे असंतोषपूर्ण वातावरण में आधुनिक कविता के माध्यम द्वारा आधुनिक सत्य के निरूपण की चेष्टा की जाती है। 'सत्य' के अंतिम रूप और निरूपण के संबंध में विभिन वर्गों में मतभेद हो सकता है और है भी। किंतु एक तथ्य सर्वमान्य है, वह है

कि कवि को अपने चारों ओर के जीवन से प्रेरणा ग्रहण करके ही काव्य-रचना करनी चाहिए, न कि नक्षत्र-लोक में विचरण करके।

आधुनिक हिंदी काव्य ने जो मार्ग ग्रहण किया है, वह ठीक है या गलत; उसका साक्षी तो आगे आने वाला इतिहास बनेगा। किंतु हम देखते रहे हैं कि हिंदी का आधुनिक कवि अपनी संकीर्ण और सीमित परिधि से बाहर निकलकर व्यापक क्षेत्र में पदार्पण कर चुका है। यह ध्रुव सत्य है और यही सत्य प्रगतिवाद के नाम से प्रसिद्ध है। यही व्यापक मानवतावाद के रूप में अथवा सांप्रदायिक रूप में प्रचलित है। वैसे सामाजिक और साहित्यिक दृष्टिकोण से तो छायावादी-रहस्यवादी कवि भी प्रगतिशील थे। सन् १९३६ ई० के लगभग छायावाद और रहस्यवाद का शव निकला। प्रगतिवादी प्रवृत्तियों का सूत्रपात हुआ। प्रारंभ में मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद और वर्ग संघर्ष को आधार मानकर प्रगतिवाद का स्वरूप निर्धारित किया गया और फिर सांप्रदायिकता से अलग पूत मानव के नाते दलितों, पीड़ितों और शोषितों की मूक वेदना को भी साहित्य में वाणी प्रदान की जाने लगी। ऐसी रचनाएँ भी प्रगतिवाद की व्यापक परिधि के भीतर रखी जाती हैं।

सन् १९३६ ई० के पश्चात् हिंदी में प्रगतिशील कही जाने वाली रचनाओं की भी कोई कमी नहीं रही। विषय-निर्वाचन और रचना-पद्धति की दृष्टि से उन्होंने हिंदी साहित्य को व्यापकत्व प्रदान किया है। प्रगतिशील रचनाएं प्रस्तुत करने वालों की संख्या दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। यह हिंदी की चेतना तथा जागरूकता का जाज्वल्यमान प्रमाण है। ऐसी रचनाओं से आधुनिक हिंदी-साहित्य की श्री-वृद्धि हो रही है। पर इतना होने पर भी प्रगतिवाद अभी कोई सच्चा प्रतिनिधि कवि नहीं दे सका। किंतु कौन कह सकता है कि भविष्य में भी ऐसा कोई प्रतिभाशाली व्यक्ति पैदा न होगा? इस समय संस्कार उसके सामने सबसे बड़ी बाधा है।

प्रस्तुत 'उद्‌गार' पुस्तक श्री अंबाप्रसाद जी 'सुमन' की समय-समय पर लिखी हुई कविताओं का संग्रह है। इस संग्रह को आदि से अंत तक पढ़ जाने पर वर्तमान काव्यधारा की गति-विधि का भी थोड़ा-सा आभास मिल जाता है। संग्रह की कविताएँ छायावादी युग से प्रगतिवादी युग की ओर बढ़ती गयी हैं। श्री 'सुमन' जी सच्चे साहित्य विलासी हैं। काव्य-रचना के अतिरिक्त निबंध और समालोचना के क्षेत्र में भी आपने स्तुत्य कार्य किया है। आपकी पूर्व प्रकाशित कृतियों का स्वागत हिंदी जगत में अच्छा हुआ है। आप अत्यंत मर्मस्पर्शी तथा भावपूर्ण कवि हैं। आपकी कविताओं में आवेश और हृदयोन्मेष है। अपनी कविताओं के माध्यम से आपने समाज के व्यापक जीवन के साथ तादात्म्य स्थापित किया है। प्रस्तुत संग्रह में यद्यपि कुछ कविताएँ ऐसी भी हैं, जिनका संबंध केवल कवि के व्यक्ति से है; किंतु अन्य रचनाओं में आपका अपना विशेष दृष्टिकोण है जो आधुनिकतम विचारधारा से प्रभावित है और साथ ही जिसमें सांप्रदायिकता की बू नहीं है। एक संकीर्ण परिधि से निकलकर दूसरी संकीर्ण परिधि में जाकर बैठ जाना 'सुमन' जी को रुचिकर नहीं

है। इसके अतिरिक्त मानव-हृदय-स्पर्शी तथ्यों की ओर संकेत कर देने से आपकी कविताओं में एक विशेष चमक उत्पंन हो गयी है। कवि को संबोधन करते हुए आपने एक स्थल पर दीन, दलितों का चित्रण इन शब्दों में किया है—

"आज भूख से सिकुड़ गयी हैं जिनकी रूखी-सूखी आँतें;
रोते-रोते बीत गयी हैं जिनकी अनगिन काली रातें।
जिनके शैशव ने ही पायी वृद्धापन की पूर्ण निशानी;
जिनके अरमानों की होली जली मिट चुकी भरी जवानी।
जिनकी दृग-सरि के दोनों कूलों के आर-पार भी देखो।
धनिकों का वैभव ही क्यों कवि ! प्यासी अश्रुधार भी देखो।"
"क्या खिलने से पहले मुरझाने वाली कलियाँ देखी हैं ?
क्या खुलने से पहले मुँद जाने वाली अँखियाँ देखी हैं ?
क्या जलने से पहले दीपक बुझ जाने वाले देखे हैं ?
क्या टूटे दिल यों ही घुट-घुट मर जाने वाले देखे हैं ?
कवि मानव के अंतर की जठरानल का अंगार भी देखो;
धनिकों का वैभव ही क्यों कवि प्यासी अश्रुधार भी देखो।"

'सुमन' जी ने अपने जीवन में नैराश्य का भी अनुभव किया है, जो संघर्षों में पिसे हुए आधुनिक मध्यमवर्गीय कवि के लिए अस्वाभाविक नहीं है। एक स्थल पर आपके उद्‌गार हैं—

"आज सब कुछ खो चुका हूँ।
दीन-सा निरुपाय होकर आज सब कुछ खो चुका हूँ।"

तथा

"मुझको यह जीवन अतुल भार।"

किंतु इससे आपकी दृष्टि धुंधली नहीं हो गयी। जीवन की कुरूपता की ओर आपने बराबर दृष्टिपात किया है। आप में जीवन की कुरूपता देखने का साहस और उसके स्थान पर नयी दुनिया बसाने की आशा और शक्ति है। आप कहते हैं—

"सरिते ! नव जीवन देती चल।
मानवता-पथ पर बहती चल।
आये न विश्व के कोने से अब कोई करुणा की पुकार।
मानस उमड़े मानवता का फिर साम्यभाव का हो प्रसार।
× × ×
मानव स्वभाव को सिखला दे अब विश्वबंधुता, रसमयता;
जग जन-शोषण का विनाश हो मिट जाये शीघ्र स्वार्थपरता।
भर तरल हृदय में इतना बल।
सरिते ! नव जीवन देती चल।"

एक अन्य स्थान पर आपका कहना है—

"ओ दानव ! अब मानव बनजा मन से बन न्यायी, शक्ति छिपा;
मानवता के नाते मानव के प्रति मन में अनुरक्ति छिपा।
ये ऊँच-नीच के भाव मिटाकर मन से दूर विभक्ति छिपा;
सब विश्व-बंधुओं के मानस में अपने मन की भक्ति छिपा।
संपत्ति-विषमता का उन्मूलन करके भोग-विलास छिपा;
इस अंतस्तल के पृष्ठों में मानवता का इतिहास छिपा।"

आप उस समय का सपना देखते हैं जबकि—

"मनुष्यत्व की ज्योति अभिनय जगेगी।"

जीवन में विषमताएँ हैं, नैराश्य है, अंधकार है, व्यथा है, पीड़ा है कुरूपता है अर्थात् सब कुछ ऐसा है, जिससे टकराकर मानव मूर्च्छित हो जाता है। मानव जीवन-मार्ग पर रक्त से लथ-पथ चल रहा है। ऐसी दशा में मिट जाना ही एक मात्र गति है, ऐसा कवि का विश्वास नहीं है। जीवन को पुनर्जीवित करने और उसे पुष्ट करने का कवि का संकल्प है और संकल्प के साथ आशा का संबल। कवि के इस संकल्प और आशा-संबल का परिणाम भविष्य के मार्ग में है। प्रार्थना यही करनी चाहिए कि कवि का संकल्प और आशा सत्य सिद्ध हों। मानवता का कल्याण इसी में है।

आशा है हिंदी-संसार 'सुमन' जी की इस युगधर्मी सुंदर रचना का स्वागत करेगा।

—हिंदी विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

"आदर्शविभूतियां*1" की भाषा-शैली

— श्री बिशनकुमार शर्मा

साहित्य की प्रत्येक विधा की भाषा-शैली अलग-अलग होती है, लेखन-शैली अलग होती है और उसके लेखक की विषय-प्रतिपादन-शैली भी अलग होती है। निबंध, नाटक, कहानी, उपन्यास, रेखाचित्र आदि विधाएँ अपनी एक विशिष्ट शैली रखने के कारण भी एक दूसरे से अपनी स्वरूप-संरचना में भिन दिखायी देती है। दूसरे, शैली के अतिरिक्त ये विधाएँ अपने-अपने विशिष्ट तत्त्वों के आधार पर भी एक दूसरे से भिन होती हैं। कथात्मक साहित्य की भाषा में शैली का क्या रूप होता है ? कथापरक साहित्य अपनी किन-किन शैलीगत विशेषताओं के कारण अन्य विधाओं से अलग दीखता है ? संभवतः इन प्रश्नों के आलोक में डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' की 'आदर्शविभूतियां' नामक पुस्तक की भाषा-शैली पर विचार किया जा रहा है।

'सुमन' जी की **'आदर्श विभूतियाँ'** कृति में आदर्श पूर्वजों के कथात्मक चित्र हैं। कृति में आठ महान् व्यक्तित्वों पर प्रकाश डाला गया है। उन आठ विभूतियों में से दो महात्मा हैं—(१) महात्मा गौतम बुद्ध, (२) महात्मा ईसा मसीह और शेष पाँच वीर व्यक्तित्व हैं—(१) महाराणा प्रताप, (२) साहसी शिवा, (३) छत्रपति शिवाजी, (४) हाड़ीरानी और (५) सरदार चूड़ावत। इनके अतिरिक्त हैं भारत के सर्वप्रथम राष्ट्रपति श्रीवर डा० राजेंद्रप्रसाद। आठवें व्यक्तित्व त्याग और निष्ठा के मूर्तभाव विग्रह डा० राजेंद्रप्रसाद हैं।

'आदर्श विभूतियाँ' कृति में कथाओं का प्रारंभ एक विशेष प्रकार के स्टाइल से होता है। वह स्टाइल है लेखक द्वारा पहले एक खास तरह के वातावरण की सृष्टि करना; फिर उस वातावरण के माध्यम से किसी विशेष विभूति की चर्चा शुरू कर देना। अधिकतर प्राकृतिक परिवेश में वह वातावरण बनाया जाता है। इस प्रकार के वातावरण की प्रस्तुति में लेखक बिंब-सृष्टि करने में सफल सिद्ध हुआ है। कथात्मक साहित्य की शैली में यह विशेषता प्रारंभ से ही पायी गयी है। कहानीकार जयशंकर प्रसाद के उपन्यास **'इरावती'** का प्रारंभ इसी शैली से होता है। इस प्रकार की लेखन-शैली में लेखक चित्रात्मकता का सहारा लेता है। अतः कहानी और रेखा-चित्र में पर्याप्त साम्य हो जाता है। चित्रों को उभारने वाली डा० सुमन की भाषा में काव्यात्मकता मिलती है।

डा० 'सुमन' की 'आदर्श विभूतियाँ' कृति के गद्य में, विशेषकर प्रत्येक कथा

---

*1. आदर्श विभूतियाँ, प्रकाशक—भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़।

के प्रारंभिक भाग में बिबात्मकता का निर्वाह हुआ है। सब मिलाकर इस कृति में अधिकतर कोमल ध्वनियों का चयन है। उदाहरण—

(१) 'उस सुंदर वन-प्रदेश में झरने-झर रहे थे। चिड़ियाँ चहचहा रही थीं। पास में ही एक पर्वतीय सरिता का जल कल-कल निनाद करता हुआ बह रहा था।' (पृष्ठ १)

(२) 'प्रभात की स्वर्णिम बेला थी। बाल विहग अपने नीड़ों में मृदु एवं मधुर स्वर के साथ गीत गा रहे थे। प्राची दिशा की गोद में से मुँह चमकाने वाले बाल रवि की अरुण किरणें यरूशलम की पर्वत श्रेणियों तथा वृक्षावलियों के उत्तुंग शिखरों पर पड़ रही थीं।' (पृ० ८)

(३) 'संध्या का समय था। अरुण देव की रक्तिम आभा शनैः शनैः नीलिमामय अंधकार में डूबती जा रही थी। पक्षी नीले आकाश में पंक्तिबद्ध होकर 'सरर-सरर' की ध्वनि के साथ कलरव करते हुए उड़े जा रहे थे।' (पृ० ३०)

डा० सुमन के प्रारंभिक जीवन में कविता सर्जना प्रमुख रही है। कवि होने के नाते लगभग दो दशक तक वे कवि-संमेलन-मंचों से जुड़े रहे हैं। पर अब उनके कवि-हृदय की भाव-मंदाकिवी को भाषाशास्त्र के विश्लेषण-विवेचना ने क्षीण कर दिया है। शायद वे कवि तो पहले—जैसे नहीं रहे, पर कवियों के कुल—गुरु अवश्य हैं। मुख्यतः अब वे गद्यकार हैं, भाषा-शास्त्री हैं, वैयाकरण हैं, आलोचक हैं। लेकिन यह कृति उस समय की रचना है, जब 'सुमन' जी के कवि ने गद्य लिखने को लेखनी उठायी थी। इसीलिए 'आदर्श विभूतियाँ' कृति की गद्य में कविता की धारा भी प्रवाहित हो उठी है। गद्य की भाषा में काव्यात्मकता खूब झलकती है। यही इस कृति की विशिष्ट शैली है।

दूसरे, कथापरक रचना की भाषा-शैली में लयात्मकता मिलती है। काव्य की तरह तुकांतों की झलक भी मिल जाती है। आनुप्रासिकता भी है। अर्थात् ध्वनियों का समानांतर प्रयोग है। डा० 'सुमन' की इस कृति की भाषा में ये सब प्रयोग पर्याप्त रूप में मिलते हैं—

[१] काव्य की तरह तुकांत निर्वाह करने की प्रवृत्ति—

(१) 'उस क्षण महात्मा के चरणों के नीचे से आने लगी 'नालगिरि' की क्षमा याचना की पुकार। और पाटलिपुत्र के चारों ओर गूँज उठी महात्माबुद्ध की जय-जयकार।' (पृ० ६)

(२) 'अकबर से प्राणों की भिक्षा माँगकर झूठी तथा घृणित राजसत्ता का निंदनीय मुकुट धारण करने के लिए। एक ठुकराये हुए पद-दलित प्राणी की भाँति जीवन व्यतीत करने के लिए।' (पृ० १६)

[२] आनुप्रासिकता अर्थात् ध्वनियों का समानांतर प्रयोग—

(१) 'मादक मधु की मादकता में मुगल सरदार मदोन्मत्त हो रहे थे।' (पृ० १८)

(२) 'भोमा नदी कल-कल करती हुई बड़े वेग से बह रही थी।' (पृ० २४)

(३) 'इस महा महिम महात्मा ने······।' (पृ० ४३)

(४) 'हाड़ा वंश की सुलक्षणा और सुशीला राजकौर के कर का कंकण भी अभी नहीं खुला है।' (पृ० ३९)

[३] कृति में व्यवहृत समानांतरता को पदबंध और उपवाक्य आदि के स्तर पर भी देखा जा सकता है।

(१) 'देवदत्त ईर्ष्यालु है, द्वेषी है, क्रूर है और है बड़ा दुष्ट।' (पृ० ६)

(२) 'राजपूती आन को धूल में मिलने वाले, मुगल सम्राट् के चरणों में बैठकर चाटुकारी करने वाले, अपनी मातामही को चंद चाँदी के टुकड़ों पर बेचने वाले अतिथि ! जाओ।' (पृ० १८)

(३) 'उस समय पर्वत की कंदराओं में से यह ध्वनि आ रही थी—प्रताप तेरी जय हो, तेरे अलौकिक कार्यों की जय हो ! तेरी जन्मभूमि की जय हो ! स्वतंत्रता के अमर पुजारी प्रताप ! प्रताप ! तेरी जय हो ! जय हो ! मर्यादा के रक्षक वीर प्रताप ! तेरी जय हो, जय हो, कोटिशत जय हो।' (पृ० २३)

'आदर्श विभूतियाँ' कृति की शैली में अधिकांशतः संस्कृत के (तत्सम) शब्दों का और तद्भव शब्दों का प्रयोग हुआ है। इन्हीं दोनों प्रकार की शब्दावली से कृति को अधिक संपंन किया गया है। कृति में तत्सम शब्द-संपदा के अधिक होने का कारण है, लेखक द्वारा कथाओं का प्रारंभ प्रकृति वर्णन से करना। भारतीय प्रकृति को स्पष्ट करने में संस्कृत की (तत्सम) शब्दावली ही समक्ष है। संस्कृत की शब्द-संपदा ने प्रकृति से जितनी गहरी आत्मीयता का संबंध स्थापित किया है, उतना अरबी-फारसी और अंग्रेजी की शब्दावली ने नहीं किया। प्रकृति की रंगारंग रुचियों को ऐसी शैली ही अधिक स्पष्ट कर सकती है।

भारत का कवि या लेखक सूर्य को दिवाकर, भास्कर, दिनपति, दिनेश, मार्तंड; और चंद्रमा को शशि, राकेश, राकापति, चंद्र, विधु आदि अनेक रूपों में देखने में विभिन्न भाव-भावनाओं का अनुभव करता है; लेकिन अंग्रेजी के कवि अथवा लेखक की आँखों ने सूर्य को 'सन' (Sun) और चंद्रमा को 'मून' (Moon) से अधिक बढ़कर नहीं देखा। प्रस्तुत कृति में शब्द-प्रयोग की यह विविधता पर्याप्त रूप में मिलती है। डा० सुमन ने प्रभात के सूर्य को सूर्य ही नहीं देखा—उन्होंने कहीं 'सूर्य-भगवान्' (पृ० १) के दर्शन किये हैं और कहीं उनको वही प्रभात का सूर्य 'बालरवि' (पृ० ८) दिखायी दिया है। संध्या का सूर्य डा० सुमन को 'अरुण देव' (पृ० ३०) लगता है। प्रकृति में देवतात्मा के दर्शन का भान भारतीय भाषा ही करा सकती है। प्रस्तुत कृति की भाषा-शैली में एक शब्द के विविध पर्यायवाची शब्दों के प्रयोग से भावों की विविधता को स्पष्ट करने की क्षमता, रोचकता, नूतनता और प्रभावात्मकता आ गयी है।

ईसा मसीह भारतीय महात्मा नहीं हैं और कहानी का चित्रण भी भारतीय न होकर यरुशलम-प्रांत के आधार पर हो रहा है। इतने पर भी लेखक की दृष्टि पूर्णतः भारतीय रही है। यह भारतीयता इस कहानी के सिद्धांत, परिवेश अर्थात् पर्यावरण, धर्म, दर्शन यहाँ तक कि भाषा-शैली में भी झलकती है। इस कहानी की भाषा में विदेशी अर्थात् अंग्रेजी की शब्दावली का प्रयोग (कुछ दो-एक नामों को छोड़कर) न के बराबर है। संभवतः पूरी कृति की भाषा में विदेशी शब्दावली का प्रयोग कम ही हुआ है।

वातावरण के अनुसार कृति की भाषा में देशज अर्थात् अनुकरण वाचक शब्दों का प्रयोग भी किया गया है। इससे स्पष्ट है कि डा० सुमन ने जहाँ जैसा भाव देखा है, वहाँ भावानुगामिनी उपयुक्त शब्दावली का प्रयोग किया है। तदनुसार कृति में शैली भी बदलती रही है। अनुकरणवाचक शब्दों के प्रयोग की शैली—

(१) "रण-भेरी बज रही है। घंटों की आवाज, शंखों की ध्वनि, नगाड़ों की धड़-धड़, धौंसों की धुधकार और शस्त्रों की झनझनाहट से दशों दिशाएँ गूँज रही हैं।" (पृ० ३८) **सनन-सनन** (पृ० २२), **सरर-सरर** (पृ० ३०), **झिल-मिल-झिल-मिल** (पृ० ३६) आदि।

संस्कृत में संज्ञा, सर्वनाम और विशेषण से भाववाचक संज्ञाएँ विशेष रूप से **ता, य, त्व और व** प्रत्यय के योगसे बनती हैं। जिनमें हिंदी ने अधिकतर **ता** प्रत्ययांत भाववाचक संज्ञा रूपों को अपनाया है। हिंदी **गुरुता, गुरुत्व, गौरव** में से **गुरुता** को सहज रूप में स्वीकार करती है। **य, त्व, और व** प्रत्ययांत रूपों को हिंदी ने कम स्वीकार किया है। **ता** को स्वीकार करने से हिंदी में कुछ कोमलता आ जाती है। **सौंदर्य, शौर्य** और **वैषम्य** में जो पुरुषत्व है, वह **सुंदरता, शूरता** और **विषमता** में नहीं है। **ता** प्रत्ययांत में स्त्रीलिंगत्व होने के कारण एक प्रकार का कोमल भाव है।

डा० सुमन की **'आदर्श विभूतियाँ'** कृति की भाषा में ९०% (प्रतिशत) **ता** प्रत्ययांत भाववाचक संज्ञा-शब्द-रूपों का प्रयोग हुआ है। संस्कारवश **सौंदर्य** (पृ० १६) आदि कुछ एक शब्द **य** प्रत्ययांत रूप में प्रयुक्त हो गये हैं। पृ० १६ पर प्रयुक्त **सौंदर्य** शब्द में राणाप्रताप के प्रतापी रूप का भाव निहित है। अतः **य** प्रत्ययांत पुंलिगता का सूचक है। **गुरुता** (पृ० ३), **पवित्रता** (पृ० ४), **उद्दंडता** (पृ० ६), **मदोन्मत्तता** (पृ० ६), **प्रसंनता** (पृ० ७), **निर्भीकता** (पृ० ८), **सत्यता** (पृ० १३), **नीरवता** (पृ० १६), **स्वतंत्रता** (पृ० १६), **मादकता** (पृ० १८) आदि कोमल भाव के प्रदर्शक स्थलों पर ही प्रयुक्त हुए हैं। इस तरह 'आदर्श विभूतियाँ' कृति की शैली हिंदी के अनुकूल है और 'सुमन' जी की अन्य रचनाओं से स्पष्टतया भिन है कोमल भावों की व्यंजना में **ता** प्रत्ययांत शब्दों ने बहुत सहायता पहुँचायी है।

वाक्य के स्तर पर शैलीगत विशेषता कृतियों में देखी जा सकती है। क्योंकि वाक्य में ही भाषा और व्याकरण की अन्य इकाइयाँ निहित होती हैं। वाक्य के स्तर

पर शैली में देखा जाता है कि निर्दिष्ट कृति में लेखक ने साधारण, मिश्र और संयुक्त वाक्यों में से किन वाक्यों का प्रयोग अधिक किया है।

'आदर्श विभूतियाँ' कृति में साधारण, मिश्र और संयुक्त तीनों ही प्रकार के वाक्यों का प्रयोग मिलता है। कथाओं के प्रारंभ में जहाँ प्रकृति वर्णन है वहाँ ज्यादातर साधारण वाक्यों की रचना है। बाद में तीनों प्रकार के वाक्यों से कथाओं की सर्जना हुई है।

प्रस्तुत कृति में साधारण और मिश्र वाक्यों की तुलना में संयुक्त वाक्यों का प्रयोग कम हुआ है। कृति में सबसे अधिक साधारण वाक्य और उससे कम मिश्र वाक्य हैं।

साधारण वाक्यों का प्रयोग जिन स्थलों पर किया गया है, वहाँ वर्णन की प्रधानता है। बिंब, गति और कौतुक से युक्त स्थलों को साधारण वाक्य ही अधिक स्पष्ट कर सकते हैं। जहाँ दो या दो से अधिक भाव-भावनाओं को एक साथ एक ही वाक्य में व्यक्त करना हो, तो वहाँ मिश्र वाक्य या संयुक्त वाक्य का प्रयोग किया जा सकता है। इन सब बातों को ध्यान में रखकर डा० सुमन ने साधारण और मिश्र वाक्यों के द्वारा कथाओं की सर्जना की है और इन्हीं सब बातों के कारण 'आदर्श विभूतियाँ' कृति की भाषा-शैली कथात्मक दृष्टि से सफल सिद्ध हुई है।

डा० सुमन ने जहाँ जैसे भावों की अनुभूति की है अथवा जहाँ जैसे दृश्यों का वर्णन करना चाहा है; उन स्थलों पर शब्द-विन्यास और वाक्य-संरचना के द्वारा भाषा के स्वरूप को तदनुकूल बना दिया है। डा० सुमन ने जो भी बात जिस प्रभाव के साथ कही है, वह उतने ही प्रभाव के साथ पाठक तक पहुँची है। इससे कथाकार डा० सुमन की संप्रेषण शक्ति का साफल्य स्पष्ट हो जाता है।

—१३/१४, गली कसेरान,
सराय बारहसेनी,
अलीगढ़ (उ० प्र०) २०२००१

'अछूत और हम' में सामाजिक दृष्टिकोण

—श्री पूरनसिंह भाकुनी

प्राचीन ग्रंथों के गंभीर अध्ययन से विदित होता है कि अनादिकाल से भारत नाना जातियों का आवास स्थल रहा है। भारत में अनेक विदेशी जातियों ने आकर आर्यों से संघर्ष किया और बाद में ये जातियाँ आर्यों में खूब अच्छी तरह घुल मिल गयीं। इस प्रकार अनेक आर्य-आर्येतर जातियों ने इस देश को धर्म-विश्वास की दृष्टि से मजबूत किया है। हमारा उच्चतम दर्शन, सर्वग्राह्य धार्मिक मान्यताएँ और अध्यात्म विभिन जातियों के संगम और उनकी निरंतर मिलती रहने वाली प्रेरणा के परिणाम हैं।

तत्पश्चात्, भारत में इन अनेक जातियों को एक करके कर्म के सिद्धांत को ध्यान में रखकर वर्ण-व्यवस्था की स्थापना हुई थी। ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र—ये चार वर्ण भारतीय समाज में कर्म की दृष्टि से निर्मित हुए थे और इन्हीं चार वर्णों के अद्भूत और सफल सहयोग से भारत की सामाजिक व्यवस्था प्राचीन काल से आज तक चली आ रही है। ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र के अपने-अपने कार्य थे। इनमें धर्म-कार्यों को ब्राह्मण, उत्पादन-कार्यों को क्षत्री, व्यापार-विनिमय-कार्यों को वैश्य और सेवा-कार्यों को शूद्र करता था और संभवतः अब भी करता है। शूद्र जो कि सेवा-कार्यों का अधिष्ठाता था, अब अछूत हो गया और क्यों अछूत हो गया समझ में नहीं आता? डा० 'सुमन' ने 'अछूत और हम' पुस्तक में कतिपय इन्हीं प्रश्नों के आलोक में अपने विचार व्यक्त किये हैं। प्रस्तुत पुस्तक में 'हम' का तात्पर्य ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य इन तीन उच्च जातियों से है और 'अछूत' से आशय है हरिजन जाति।

डा० 'सुमन' की 'अछूत और हम' पुस्तक में आठ अध्याय हैं। इन आठ अध्यायों में प्राचीन काल से लेकर आज के जीवन तक व्याप्त जाति-प्रथा के स्वरूप पर व्यापक प्रकाश डाला गया है। भारतीय जाति-प्रथा में व्याप्त ऊँच-नीच की भावना और अछूतपन की भावना को विशेष रूप से इस पुस्तक में विवेचित किया गया है। वस्तुतः विवेचन में इस समस्या का निराकरण किया गया है। संभवतः पुस्तक का मूल उद्देश्य भी यही है।

हमारे विचार से हिंदू-जीवन में ब्राह्मण को सर्वोच्च मानकर और शूद्र को नीचा मानकर हम शूद्र के किये उपकारों को भुला देना चाहते हैं। भले ही वर्णाश्रम

व्यवस्था में शूद्र का महत्व समाज की दृष्टि से कुछ कम हो, लेकिन अध्यात्म की दृष्टि से शूद्र निश्चय ही महान् है। अपने आपको दूसरों के हित में समर्पित कर देने की भावना हिंदू जीवन-दर्शन में सत्य की तरह मान्य है। शूद्र ने इस सत्य सदृश शाश्वत भावना का छककर अनुपान किया है। वह अपने को सदैव से सेवा-प्रधान माने हुए है। सदैव से ही उसने अपने व्यक्तित्व को परहित में विलय किया है। यदि हम निरंतर इस संकीर्णता में जकड़े रहे तो निश्चय ही अपने अस्तित्व को खो बैठेंगे।

हिंदू-जीवन-दर्शन आरम्भ से ही शुचिता में विश्वास रखता आया है। हिंदू बाह्य आचार और आंतरिक चित्त की शुद्धि का अविभाज्य अंग है। इसीलिए हिंदू को तुलनात्मक दृष्टि से हिंसा में आनंद नहीं आता। जब कभी हिंदू धर्म में हिंसात्मक प्रवृत्ति का प्रादुर्भाव हुआ है, तभी उसने ऐसी प्रवृत्ति वाले अपने एक खंड को ही अपने से अलग कर दिया है। इस तरह यह धर्म बटता गया है निम्न से निम्नतर जातियों में। डा० 'सुमन' ने 'अछूत और हम' पुस्तक में एक स्थल पर लिखा है—

"गुप्त साम्राज्य के शासन-काल में समाज-सुधार के दृष्टिकोण से मांसाहार विशेषतः गोमांसाहार त्याग-आंदोलन चला था। यह आंदोलन वर्षों चलता रहा। उस समय जो व्यक्ति अथवा जाति मांसाहार करती थी वह अपवित्र, घृणित, अस्पृश्य और निंदनीय समझी जाने लगी। कालांतर में मांसाहारी वर्ग की गिनती अछूतों में कर दी गयी। इस तरह हिंदुओं में अछूत भावना का जन्म ईसा की छठी शताब्दी के लगभग समझना चाहिए।" (पृष्ठ ७)

हिंदू जीवन-दर्शन में मिलकर चलने वाली शूद्र जाति कभी भी अस्पृश्य नहीं रही। इस धर्म में तो अस्पृश्यता का प्रादुर्भाव तभी होता है, जब इसके पवित्र मान-दंडों से हटकर मनुष्य चलने लगता है।

आज हम जिन्हें अछूत कहने लगे हैं, वे प्राचीन काल में द्विजातियों के समान सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक कार्यों में अपना पूर्ण अस्तित्व रखते थे। धर्म के क्षेत्र में उन्हें वे सभी अधिकार प्राप्त थे जो कि द्विजातियों को प्राप्त थे। डा० 'सुमन' ने एक स्थल पर लिखा है—

"जिस जाति के मनुष्यों को परमेश्वर के द्वारा वेद पढ़ने का अधिकार मिला हो; जिस जाति ने रामायण और महाभारत काल में द्विजातियों के साथ कंधे से कंधा भिड़ाकर धार्मिक और सामाजिक कार्य किये हों और जिस जाति ने भीषण परिस्थितियों में भी द्विजातियों की अनेक सहायताएँ की हों, वह जाति 'अछूत' नाम से क्यों पुकारी जाय? उन्हें 'अछूत' कहना अपने कर्म और वाणी की असभ्यता और अमानवता को प्रकट करना है।" (पृ० १८)

यह निश्चित है कि हमने अपने परम प्रिय शूद्रों के प्रति क्रूरता, असभ्यता

और अमानवता का व्यवहार किया है। भले ही हिंदुओं में फैली अछूतपन की इस भावना की आयु कुल १४०० वर्ष की ही हो। डा० सुमन एक स्थान पर हिंदू जाति की इस भूल को सुधारने की बात कहते हैं—

"हरिजन हिंदू जाति के ही एक अंग हैं। हमें अपने गत की भूलों को आगत में सुधारना चाहिए और अनागत में सच्चे युग-धर्म के साथ मानवता का नवनिर्माण करना चाहिए।" (पृ० ३)

इस तरह डा० 'सुमन' की इस पुस्तक की उपादेयता और अधिक बढ़ गयी है। जगह-जगह ऐतिहासिक और पौराणिक उदाहरण प्रस्तुत करके हरिजनों के उत्थान के लिए पर्याप्त प्रमाण दे दिये गये हैं। एक उदाहरण देते हुए लिखा गया है—

"कुटीर में एक आसन पर शबरी ने अपने हरि को बैठाया और दूसरे पर लक्ष्मण को। शबरी ने स्वयं फिर चाख-चाख कर मीठे बेर राम को दिये और राम ने वे प्रेम पूर्वक खाये। प्रेम पूर्वक अपने हाथों से 'हरि' ने जिस शबरी के झूठे बेर खाये हों, वह शबरी 'हरिजन' कहलाने की अधिकारिणी क्यों न हो? वह अकेली नहीं वरन् उसकी संपूर्ण जाति ही 'हरिजन' कहलाने का अधिकारी रखती है।" (पृ० १६)

आधुनिक काल में यह समस्या हिंदू धर्म-जीवन में गहरी व्याप्त है। वैसे भारतीय सरकार, समाज और धर्म आदि सभी की ओर से इस समस्या की गहरी जड़ों को उखाड़ फेंकने का पूरा प्रयत्न हो रहा है। इस प्रयत्न से निश्चय ही इस समस्या को पहले की तुलना में बहुत कुछ सुलझाया भी जा सका है; लेकिन अभी और व्यापक प्रयत्न की, गहरी आत्मीयता की और स्पष्ट उदारता की आवश्यकता है।

इस पुस्तक के अंत में **'महात्मा गांधी और हरिजनोत्थान'** नाम से एक अध्याय है। इस अध्याय में हरिजनों के लिये महात्मा गांधी द्वारा किये गये त्याग की सोदाहरण एवं सप्रमाण व्याख्या की गयी है। "महात्मा गांधी विश्व के लिए दिव्य विभूति, भारत के लिए अद्भुत वरदान और हरिजनों के लिए प्राणदायिनी संजीवनी थे। हरिजन उन्हें प्राणों से भी अधिक प्रिय थे। वे हरिजनों के और हरिजन उनके थे। हरिजनों के कल्याण और पूर्ण उत्थान में ही वे अपने जीवन की सार्थकता समझते थे।" (पृ० ३८)

महात्मा गांधी की तरह हम सबको अपने हरिजन मित्रों के उत्थान के लिए सोचना चाहिए। डा० 'सुमन' की 'अछूत और हम' पुस्तक हम सबको अछूत-समस्या के निराकरण के लिए चेतना प्रदान करती है।

—I सी. सी. स्टाफ फ्लैट्स;
अपर बेला रोड, सिविल लाईन
दिल्ली—११००५४

'रामचरितमानस : वाग्वैभव' में डा० सुमन की आलोचक-दृष्टि

—डा० महेंद्रसागर प्रचंडिया,

किसी भी काव्य के गुण-दोष परक अध्ययन-अनुशीलन करने का आधार काव्यशास्त्र होता है। समालोचक उसी के अनुसार विवेच्य काव्य-कृति का मूल्यांकन किया करता है। भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा अर्वाचीन नहीं है। संस्कृत वाङ्मय में इसके आदिम दर्शन होते हैं। नाट्यशास्त्र, काव्यशात्र की पहली प्रख्यात पोथी है, जिसके प्रणेता आद्य आचार्य भरत मुनि हैं।

आचार्य भरत मुनि, आचार्य भामह. आचार्य वामन, आचार्य आनंद बर्द्धन, आचार्य कुंतक तथा आचार्य क्षेमेंद्र द्वारा संस्थापित काव्यशास्त्रीय मान्यताएँ क्रमशः रस, अलंकार, रीति, ध्वनि, वक्रोति और औचित्य संप्रदाय नाम से स्थिर हुई हैं। इन सभी मान्यताओं में काव्य की आत्मा का निरूपण किया गया है। डा० सुमन ने इन सभी आचार्यों की काव्यशास्त्रीय मान्यताओं का सूक्ष्म तथा गहन अध्ययन किया है और 'रामचरित मानस : वाग्वैभव'[1] नामक ग्रंथ में उनकी आलोचना शास्त्रीय मान्यताओं का उपयोग हुआ है। यहाँ इस ग्रंथ के आधार पर डा० सुमन जी की मान्यताओं का संक्षेप में उल्लेख करना हमारा मूलाभिप्रेत है।

काव्यशास्त्र का मुख्य विषय रस-प्रकरण है। आचार्य भरत की रस विषयक मान्यता अनेक परवर्ती आचार्यों द्वारा अनुमोदित हुई है। काव्य का आनंद ब्रह्मानंद सहोदर कहा गया है। ब्रह्म अव्यक्त है। महाकवि तुलसीदास ने मानस के पात्रों में किसी अव्यक्त शक्ति और सत्ता का निरूपण किया है। भाव, विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों का सम्यक् परिपाक वस्तुतः इस दशा को उत्पंन करता है। मानस के पात्रों में इस दशा का सुंदर परिपाक है। सुमन जी ने मानस की रस विषयक स्थिति का इसी दृष्टि से मूल्यांकन किया है। रस-परिपाक की दृष्टि से 'मानस' एक उत्तम काव्य-कृति है—ऐसी उनकी धारणा है।

अभिव्यक्ति के प्रमुख उपकरणों में भाषा का स्थान अति महत्व का है। अभिव्यक्ति की दृष्टि से उसे दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। यथा—

---

१. प्रकाशन विज्ञान भारती, १६७ वजीर नगर, नयी दिल्ली–३, सन् १९७३ [इस ग्रंथ को दो संस्थाओं ने संमानित तथा पुरस्कृत किया है—प्रथमतः उत्तर प्रदेश राज्य, लखनऊ ने द्वितीयतः श्री रामकृष्ण हरजीमल डालमिया पुरस्कार समिति, नयी दिल्ली ने।]

(१) काव्य भाषा

(२) काव्येतर भाषा

संवेदना, सरसता, चमत्कार प्रियता के लिए काव्य की भाषा सांकेतिक, वक्र तथा अलंकृत हुआ करती है। दूसरी कोटि की भाषा के लिए इन बातों की आवश्यकता नहीं रह जाती। उसमें सरलता और स्पष्टता की प्रायः पूर्णता रह जाती है। समाचार पत्रों, विज्ञापनों और राजनीति वृत्तों आदि में इस भाषा का प्रयोग प्रायः हुआ करता है। विवेच्य कृति में डा० सुमन जी का भाषा विषयक दृष्टिकोण इसी मान्यता पर आधृत है।

किसी भी काव्य का सौंदर्य उसकी अभिव्यक्ति पर निर्भर करता है। युग प्रवर्तक काव्य कृति में एकन्वित सौन्दर्य का मूल्यांकन काव्यशास्त्रीय किसी एक निकष पर नहीं किया जा सकता, क्योंकि उसमें कहीं कवित्व, कहीं सूक्ति सामर्थ्य, कहीं दार्शनिकता तो कहीं-कहीं चमत्कार प्रियता मुखर हो उठती है। डा० सुमन जी की धारणा रही है कि मानस में भी इसी प्रकार की शक्ति-सामर्थ्य के अभिदर्शन होते हैं।

रस, ध्वनि, वक्रोक्ति, गुण, रीति, वृत्ति, अलंकार तथा औचित्य का समीकरण वस्तुतः काव्यशास्त्र के रूप को स्थिर करते हैं। डा० सुमन जी का काव्यशास्त्रीय दृष्टिकोण इसी रूप पर आधारित है। उन्होंने इन मान्य षट् सिद्धांतों को तीन भागों में विभाजित किया है। यथा—

(१) भाववादी मानदंड, (२) भाव-अभिव्यक्तिवादी मानदंड, (३) अभिव्यक्तिवादी मानदंड।

भाववादी मानदंड के अंतर्गत दो प्रमुख सिद्धांतों को संमिलित किया गया है। यथा—

(१) आचार्य भरत मुनि द्वारा प्रवर्तित रस सिद्धांत। (२) आचार्य आनंदवर्धन द्वारा प्रवर्तित ध्वनि सिद्धांत।

भाव-अभिव्यक्तिवादी मानदंड के अंतर्गत आचार्य क्षेमेंद्र द्वारा प्रवर्तित औचित्य सिद्धांत संमिलित किया गया है। अभिव्यक्तिवादी मानदंड में आचार्य कुंतक द्वारा प्रतिपादित वक्रोक्ति सिद्धांत, आचार्य भामह के अलंकार सिद्धांत और आचार्य वामन का रीति सिद्धांत संमिलित किये गये हैं। इस वर्गीकरण के आधार पर काव्यास्वाद के मूल तत्व पर डा० सुमन जी की मान्यता इस प्रकार है। यथा—

भाववादी मानदंड के अंतर्गत आप परम रस सिद्धांत को ध्यान में रखकर कहते हैं कि "कल्पनात्मक भावना और शब्दार्थमयी अभिव्यंजना ही वस्तुतः काव्यास्वाद का मूल तत्व है" और ध्वनि सिद्धांत को दृष्टि में रखकर कहते हैं कि, "रमणीय कल्पना और शब्दार्थमयी अभिव्यंजना ही काव्यास्वाद का मूल तत्व है।" भाव-अभिव्यक्तिवादी मानदंड के अंतर्गत औचित्य सिद्धांत को ध्यान में रखकर आपकी मान्यता रही है कि "भावाश्रित विवेक और शब्दार्थमयी अभिव्यंजना ही

काव्यास्वाद का मूल तत्व है।" इसी प्रकार अभिव्यक्तिवादी मानदंड के अंतर्गत काव्यास्वाद के स्वरूप को सुमन जी इस प्रकार व्यक्त करते हैं कि "वक्रोक्ति सिद्धांत के अनुसार कलापूर्ण अभिव्यंजना ही काव्यास्वाद का मूल तत्व है।" अलंकार सिद्धांत की दृष्टि से "शब्द और अर्थ ही चमत्कारमयी अभिव्यंजना ही काव्यास्वाद का मूल तत्व है।" रीति सिद्धांत की दृष्टि से शैली सौंदर्य ही काव्यास्वाद का मूलाधार है।"

इसके अतिरिक्त काव्य सौंदर्य हेतु डा० सुमन बिंब–वैभव की उपयोगिता असंदिग्ध मानते हैं। उनकी स्पष्ट धारणा रही है कि "काव्य स्रष्टा कवि पहिले जगत् की अनुभूत सत्ता को भावानुकूल मानस छवि प्रदान करता है, फिर अपनी अभिव्यक्ति के बल से उसे काव्य में ऐसा प्रस्तुत करता है कि पाठक के मानस पटल पर वैसा ही चित्र बने। मानस चित्र जितना अधिक सफल और स्पष्ट होगा, उतनी ही अधिक रसानुभूति पाठक को होगी। अतः काव्य बिंब कविता का प्राण है।"

काव्याभिव्यक्ति में छंदो विधान का स्थान भी बड़े महत्व का है। विद्वान् समालोचक की धारणा रही है कि "छंद वास्तव में स्वर की लयात्मक गति है। नाद की गतियाँ जब लयमय बनती हैं, तब छंद जन्म लेता है। गीत यदि कविता है तो छंद उस गीत की तान। यह काव्य की रसात्मकता में संवृद्धि करती है।" इस प्रकार काव्यशास्त्रीय निकष पर रामचरित मानस : वाग्वैभव नामक ग्रंथ में विद्वान् ने विवेच्य कृति का गवेषणात्मक अध्ययन किया है।

हिंदी साहित्य के गवेषणात्मक अध्ययन-अनुशीलन की अपनी एक सुदीर्घ परंपरा रही है। हिंदी काव्य का काव्यशास्त्र की दृष्टि से अभी तक जो शोधात्मक अध्ययन प्रकाश में आया है, उसे संभवतः तीन कोटियों में विभाजित किया जा सकता है। यथा—

(१) किसी कवि विशेष की तमाम कृतियों का काव्यशास्त्रीय निकष पर अध्ययन।

(२) किसी एक कवि के काव्य का काव्यशास्त्र के अंग की दृष्टि से अनुशीलन।

(३) वह गवेषणात्मक अध्ययन, जिसमें एक धारा के अनेक कवियों का काव्यशास्त्रीय दृष्टि से अध्ययन।

डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' द्वारा एक कवि की एक रचना काव्यशास्त्र के सभी अंगों की दृष्टि से किया गया अध्ययन सर्वथा अभिनव कहा जाएगा।

डा० सुमन जी के प्रस्तुत गवेषणात्मक अध्ययन से पूर्व अनेक शोध-प्रबंध रचे तो गये हैं किंतु इन सभी कृतियों में काव्यशास्त्र के एक अंग का विशेषकर भाषा की दृष्टि से अध्ययन किया गया है। उन ग्रंथों में काव्यशास्त्र के वे तमाम तत्व अध्ययन के आधार पर नहीं बनाये गये हैं, जिनका प्रयोग डा० सुमन जी ने

अपने ग्रंथ में किया है। इस दृष्टि से भी डा० सुमन जी का यह कार्य हिन्दी-शोध-संसार में पहल करता है।

इस प्रकार सुमन जी ने 'रामचरित मानस : वाग्वैभव' नामक गवेषणात्मक कृति में मौलिक किंतु अन्वीक्षित विवेचन किया है। बड़ी बात यह है कि आपकी काव्यशास्त्रीय उपस्थापना के आधार पर किसी भी काव्य का सूक्ष्म तथा सही अनुशीलन किया जा सकता है।

—जैनशोध अकादमी,
आगरा रोड, अलीगढ़–२०२००१

[illegible]

डा० सुमन का उक्त विवेचन उनकी सूझबूझ का ...

चूड़ामनि—[सं० चूड़ामणि > चूड़ामनि] = शीशफूल ।

चूड़ामनि उतारि तब दएऊ । हरष समेत पवनसुत लएऊ ॥

सुंदर २७/२

'मानसशब्दार्थतत्व' में अर्थ-संधान

—डा० रामस्वरूप आर्य

शब्द-ब्रह्म की महिमा अनंत है। जिस प्रकार ब्रह्म के अनेक रूप हैं उसी प्रकार शब्द में भी अनेक अर्थच्छटाएँ निहित रहती हैं, जिनकी ओर सामान्य पाठकों का ध्यान नहीं जा पाता है। शब्दार्थ का कोई मर्मज्ञ विद्वान् ही उनकी पर्तों को उघारता है, जिन्हें देखकर हम चमत्कृत हो उठते हैं। डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' एक ऐसे ही विद्वान हैं, जिन्होंने अनेक शब्दों के अर्थों का सटीक अनुसंधान किया है। इस लघु लेख में डा० सुमन द्वारा लिखित 'रामचरितमानस : शब्दार्थतत्व' ग्रंथ से कुछ शब्द उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं, जिन पर डा० साहब की टिप्पणियाँ उल्लेखनीय हैं—

काखासोती—[सं० कक्षसूत्रीय > कक्खसोती > काखासोती]

पिअर उपरना काखासोती। दुहुँ आँचरन्हि लगे मनि मोती ॥ बाल० ३२७/७

अर्थात् 'रामचंद्र जी के शरीर पर जनेऊ की भाँति लटकता हुआ दुपट्टा है। उसके दोनों छोरों पर मणियाँ और मोती लगे हुए है।' गीता प्रेस तथा अ० भा० विक्रम परिषद् के संस्करणों में उक्त अर्द्धाली के अर्थ में 'काँखासोती' का ही प्रयोग हुआ है तथा कोष्ठक एवं पाद टिप्पणी में क्रमश: 'जनेऊ की तरह' 'जनेऊ के समान' अर्थ दिया गया है जबकि डा० सुमन जी ने इस शब्द की मूल व्युत्पत्ति खोजने का प्रशंसनीय प्रयास किया है।

खगहा—[सं० खड्गहा > खग्गहा > खगहा]

खगहा करि हरि बाघ बराहा। देखि महिष वृष साजु सराहा ॥

अयो० २३५/३

अर्थात् 'गैंडा, हाथी, सिंह, बाघ, सूअर, भैंसे और बैलों को देखकर लोग राजा के साज को सराहते हैं।'

मानस की टीकाओं में खगहा का अर्थ गैंडा दिया गया है किंतु यह नहीं बताया गया है कि खगहा का अर्थ गैंडा क्यों है। डा० सुमन जी ने इसका मूल संस्कृत तत्सम शब्द 'खड्गहा' बताया है, जिसका अर्थ है—खड्ग से मारने वाला खड्गेन हंति इति खड्गहा'। गैंडे की नाक पर ऊपर की ओर उठा हुआ तलवारनुमा एक सींग होता है, जिससे वह प्रहार करता है। उसका वह सींग ही खड्ग है। डा० सुमन का उक्त विवेचन उनकी सूझबूझ का परिचायक है।

चूड़ामनि—[सं० चूडामणि > चूड़ामनि] = शीशफूल।

चूड़ामनि उतारि तब दएऊ। हरष समेत पवनसुत लएऊ ॥

सुंदर २७/२

अर्थात् 'तब सीता ने शीशफूल उतार कर दिया जिसे हनुमान ने हर्षपूर्वक ले लिया।'

मानस के कुछ पुराने टीकाकारों ने चूड़ामनि का अर्थ हाथ का कंगन दिया है, जो उचित प्रतीत नहीं होता। डा० सुमन जी ने अमर कोश, अध्यात्मरामायण, वाल्मीकीय रामायण तथा मेघदूत से उद्धरण देते हुए चूड़ामणि के शीशफूल अर्थ की सिद्धि की है, इससे उनकी शोधवृत्ति का पता लगता है।

जामिक—[सं० यामिक>जामिक]=पहरेदार।

चरनपीठ करुनानिधान के। जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के।। अयो० ३१६/५

अर्थात् 'करुणानिधान (रामचंद्र) के खड़ाऊँ मानो प्रजा के प्राणों की रक्षा के लिए दो पहरेदार हैं।'

मानस की टीकाओं में जामिक का अर्थ पहरेदार दिया गया है किंतु इस अर्थ की सिद्धि का संधान डा० सुमन जी ने ही किया। उनके अनुसार जामिक शब्द संस्कृत यामिक से विकसित है। याम रात्रि की रखवाली या पहरेदारी को कहते हैं। पहरेदारी तीन-तीन घंटों के बाद बदल जाया करती थी। इसीलिए रात्रि अन्वर्थ नाम यामिनी पड़ गया। अमर कोशकार ने याम को प्रहर का पर्यायवाची माना है—अर्थात् तीन घंटे का समय। इस प्रकार यामिक (जामिक) का अर्थ हुआ प्रहरिक—तीन घंटों की अवधि तक पहरा देने वाला प्रहरी। डा० सुमन का यह अर्थ-संधान नितांत तर्कपूर्ण है।

पंचानन—अर० ३३/५ [सं० पंचानन]=सिंह

संस्कृत-साहित्य में पंचानन शब्द 'शिव' के अर्थ में प्रयुक्त है और 'सिंह' के अर्थ में भी। शिवजी के पांच मुख हैं। अतः उन्हें पंचानन कहा गया है पर सिंह को पंचानन क्यों कहते हैं, यह विचारणीय है। डा० सुमन जी ने इसका सुंदर समाधान प्रस्तुत किया है। सिंह शिकार करने में मुख की तरह ही अपने चार पाँवों से भी काम लेता है। अतः चारों पाँव और एक मुख मिलाकर उसके पाँच आनन माने गए और उसे पंचानन नाम दिया गया।

बसन—[सं० वसन √वस्=रहना+ल्यु=वसन]

संस्कृत में वस् धातु प्रायः दो अर्थों में प्रचलित थी—(१) रहना, (२) पहनना। अतः वसन के दो अर्थ प्रचलित हुए—(१) घर, (२) वस्त्र। वस्त्र के अर्थ में तुलसी ने वसन का प्रयोग करते हुए लिखा है—

यह हमारि अति बड़ी सेवकाई। लेहिं न भूषन बसन चुराई।।

अयो० २५०/४

डा०सुमन जी ने मानस की निम्नलिखित अर्द्धाली में 'वसन' शब्द के एक नए अर्थ का संधान किया है—

बिधु बदनी सब भाँति सँवारी। सोह न बसन बिना बर नारी।।

बाल० १०/४

टीकाकारों ने इसका अर्थ प्रायः इस प्रकार किया है—चंद्रमा के समान मुखवाली स्त्री सब प्रकार से सुसज्जित रहने पर भी वस्त्र के बिना शोभा नहीं पाती।' डा० सुमन जी कहते हैं—"हमारे विचार से यहाँ तुलसी को 'वस्त्र' अर्थ अभीष्ट न था। तुलसी मर्यादावादी तथा शुद्ध एवं संयत श्रृंगार रस के सृष्टा थे। राम वाम हीन कविता के उपमान के रूप में आये हुए 'बसन-बिना वर नारी' का प्रयोग तुलसी के लिए लज्जास्पद है। वे नंगी नारी की कल्पना कभी नहीं कर सकते। हमारा विचार है कि यहाँ बसन का अर्थ 'स्वामी' या 'पति' है। नारी जिसके यहाँ निवास करती है या आश्रय पाती है, वह वसन अर्थात् 'पति' हुआ। बिना पति के वह नारी भी शोभा नहीं पा सकती जो चंद्रमा के समान मुखवाली हो और सब प्रकार से साजी-सँवारी गयी हो।"

पालि भाषा के 'उच्छङ्ग जातक' में एक नारी अपने बंदी पति को छुड़ाने के लिए राजा से पति रूपी वस्त्र की कामना करती है। इससे भी डा० सुमन जी के उक्त अर्थ की पुष्टि होती है।

इन कतिपय उदाहरणों से डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' की अर्थानुसंधान-प्रतिभा का पता चलता है। क्या ही अच्छा होता कि डा० साहब हिंदी के व्युत्पत्ति कोश का निर्माण करते। भले ही वह आकार में छोटा होता। आगे चलकर उस पर भव्य भवन के निर्माण की आशा तो रहती।

—नयी बस्ती, बिजनौर (उ० प्र०)

'रामचरितमानस-भाषा-रहस्य'[1] में भाषाविद् डा० सुमन

—डा० (श्रीमती) शारदा शर्मा,

'रामचरितमानस' धर्म, संस्कृति एवं साहित्य का संगम-स्थल है। यह जन-जीवन को धर्म और संस्कृत का ज्ञान कराता है, तो साहित्य प्रेमियों को रस के सागर में गोते लगवाता है; किंतु जैसे सफल तैराक अथाह सागर को अपनी कुशलता के बल पर पार कर जाता है, उसी प्रकार भाषा की बारीकियों को जानने वाला वैयाकरण अथवा भाषाशास्त्री इसमें छिपे रस को प्राप्त कर लेता है। भाषा के व्याकरणिक ज्ञान के अभाव में शब्दों या पदों के अर्थ में अनर्थ की संभावना अधिक रहती है। शब्द या पद का वाच्यार्थ वही समझ सकता है, जो पद के व्याकरणिक रूप की अवगति रखता है। जिसने वाच्यार्थ को ठीक समझ लिया, वह लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ की बारीकी को समझकर साहित्य का रस प्राप्त कर सकता है। लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ मूलतः वाच्यार्थ पर ही आधृत रहते हैं।

वैसे तो अन्य काव्य-ग्रंथों के समान रामचरितमानस की बहुत-सी टीकाएँ उपलब्ध हैं; किंतु किसी शब्द या पद विशेष का मूल अर्थ (आत्मा) क्या है और तुलसी ने उसका प्रयोग क्यों किया है? आदि प्रश्नों के उत्तर में वे टीकाएँ मौनव्रत धारण कर लेती हैं। शिक्षित एवं प्रबुद्ध पाठक और श्रोता को उन प्रश्नों का उत्तर 'रामचरितमानस-भाषा-रहस्य' में उपलब्ध हो जाता है। इस पुस्तक में 'रामचरितमानस' के भाषिक रूप-सहित आर्षी व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' की अब तक प्रकाशित महान् कृतियों में यह ग्यारहवीं प्रकाशित कृति है।

रस के विवेचक आचार्यों का समर्थन करते हुए डा० सुमन ने उचित ही कहा है कि—"रसानुभूति के समस्त साधनों का माध्यम 'शब्द' का अर्थ है और अर्थ का मूलाधार है शब्द की व्याकरणिक स्थिति।" 'रामचरितमानस' के पदों के व्याकरणिक रूप के साथ शब्दार्थ का ज्ञान होने पर ही सही काव्यार्थ का बोध हो

---

१. लेखक अंबाप्रसाद 'सुमन' रामचरितमानस भाषा-रहस्य; बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना ४, सन् १९७४ ई० (यह ग्रंथ उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से पुरस्कृत तथा संमानित है)।

सकता है। डा० सुमन ने 'मानस' की भाषा का व्याकरणिक स्वरूप एवं वाक्य विन्यास का विश्लेषण इस ग्रंथ में शोध-स्तर पर गंभीरतापूर्वक प्रस्तुत किया है। यह विश्लेषण मुख्यत: पाँच भागों में प्रस्तुत है—

ध्वनि-विचार के अंतर्गत विविध स्वर-व्यंजन ध्वनियों के प्रयोगों में कहाँ संस्कृत शब्द की य् ध्वनि मानस की भाषा में 'ज्'[1] हो गयी है, कहाँ 'व्' ध्वनि 'ब्'[2] हो गयी है, कहाँ 'श्'। ध्वनि व्यंजन-गुच्छों की सुदीर्घ तालिका के आधार पर डा० सुमन ने यह सिद्ध किया है कि बहुवचनीय संज्ञा पदों में और भूतकालिक क्रिया पदों में 'रामचरितमानस' में 'न् + ह्' व्यंजन-गुच्छ सर्वाधिक प्रयुक्त हुए हैं। जब किसी मूल शब्द से किसी व्युत्पादक प्रत्यय की संधि होती है तथा जब किसी मूल शब्द (प्रातिपदिक) में किसी विभक्ति प्रत्यय की संधि होती है, तब (दोनों ही स्थितियों में) मानस में कहीं-कहीं ध्वनि विकार उत्पन्न हो जाता है। जैसे—

मीत + आई = मिताई (सुंदर ५/१)[4]

सीता + हि = सीतहि (अर० १७/११)[5]

'शब्द-विचार' अध्याय के अंतर्गत शब्द का विवेचन इतिहास, रचना, समास तथा शब्द शक्तियों के आधार पर किया गया है।

शब्द विचार अध्याय में विशिष्ट शब्दों के अर्थों पर गहराई से विचार किया गया है। बाल कांड (२६६/४) में **'चाँड़'** शब्द का अर्थ प्राय: इच्छा किया गया है; लेकिन डा० सुमन ने शब्द के मूल पर विचार करके उसका अर्थ **प्रचंडता, बलवत्ता** किया है, जो अधिक संगत लगता है—सं० चांड > चांड़ = बलवत्ता। ''तोरें धनुष चाँड नहिं सरई।''—(मानस० बाल० २६६/४)।

रूप-विचार एवं वाक्य विचार में 'मानस' के संज्ञा शब्दों का अध्ययन उनकी ऋजु एवं तिर्यक् अवस्थाओं की दृष्टि से है। लेखक ने निष्कर्ष निकाला है कि 'रामचरितमानस' की भाषा में प्राय: पुंलिग शब्दों की तिर्यक् अवस्था के बहुवचन में ही परिवर्तन होता है—दीर्घ स्वरांत प्रातिपदिक 'न्ह' प्रत्यय-योग से पहले मूल प्रातिपदिक ह्रस्व स्वरांत हो जाता है, जैसे—रघुवंशी—रघुबंसिह महँ जहँ कोउ होई (बाल० २५३/१)[6]। ऐसा परिवर्तन उसी स्थिति में हुआ है, जबकि पद के पीछे कोई परसर्ग प्रयुक्त हुआ हो, चाहे वह लुप्त स्थिति में हो, चाहे प्रत्यक्ष।

---

१. जसु (अयो० १७१/-), अपजसु (अयो० १७१/-)—रामचरितमानस भाषा रहस्य, लेखक डा० अंबाप्रसाद 'सुमन', बिहार राष्ट्र भाषा परिषद पटना-४, प्र० संस्क०, पृ० ८३।

२. विगत (बाल० २२६/-), विवेक (बाल० ६/-) वही, पृ० ८४

३. श्रीराम (अर० २६/-), आश्रम (उत्तर ११३/-) वही, पृ० ८५। (यहाँ श् ध्वनि केवल लिपि में दिखायी गयी है)

४. रामचरितमानस भाषा रहस्य; पृ० ९८

५. वही, पृ० ९९

६. वही, पृ० १३२

डा० सुमन ने तुलसी के मानस में प्रयुक्त अकारांत और उकारांत पदों का अध्ययन बड़ी सूक्ष्मता से किया है—एक उदाहरण से ही उनकी इस गहनता-गंभीरता का परिचय मिल जाता है—"तुलसी के मानस में तो व्याकरणिक स्थितियों के अनुसार 'सर' और 'सरु' दोनों प्रकार के पद प्रयोग मिलते हैं। अर्थात् कर्त्ता, कर्म कारक की ऋजु अवस्था के पुंलिग एकवचन में 'सरु'[1] पद होगा, इससे इतर स्थिति में 'सर'[2]–[3]

'मानस' के विशेषण पदों का अध्ययन करते हुए निर्णय दिया गया है कि 'रामचरितमानस' में विशेषण-विशेष्य के प्रयोग दो प्रकार से मिलते हैं—(१) विशेष्यानुगामी विशेषण पद—जैसे **'सयानीं सखीं** (बाल० २२८/३=सयानी सखियाँ); (२) विलोम-विशेषण पद········, जैसे—**कठोरें कुठार** (बाल० २७५/८=कठोर कुठार से)[4] 'कठोरें कुठार' में विशेषण 'कठोरें' में तृतीया विभक्ति का प्रत्यय लगा है, 'कुठार' में नहीं।

'पुरोडास चह रासम खावा' (अरण्य २९/५) में भी 'चह' का अर्थ है 'चाहता है'। **रासम चह**=गधा चाहता है। **कौसल्यां देख**=कौसल्य **देखतीं** है'।

'माँगी नाव न केवटु आना' के **'आना'** पद का अर्थ 'आया' नहीं, अपितु **'लाया'** है। इसे भाषा के स्वरूप-ज्ञान के आधार पर ही जाना जा सकता है।[5]

डा० सुमन जी की शब्दार्थ विवेचनी दृष्टि ने इस तथ्य को ग्रंथ में स्पष्ट कर दिया है कि अवधी में **'आना'** का अर्थ 'लाया' है लेकिन ब्रजभाषा में 'आना' (आनो) का अर्थ 'आया' है। इस तथ्य को न जानने से बहुत से पाठक उपर्युक्त अर्द्धाली के अर्थ का अनर्थ कर सकते हैं। (अवधी० **आनि**=लाकर। ब्रजभाषा **आनि**=आकर)।

अर्थ-विचार में 'मानस' के विशिष्ट शब्दार्थों का उल्लेख है। जैसे—अंबारी (बाल० २१३/३) शब्द का बहुप्रचलित अर्थ है हाथी की पीठ पर रखा जाने वाला 'होदा'; किंतु रामचरितमानस में 'मकान का छज्जा' अर्थ में यह शब्द प्रयुक्त हुआ है—'चारु बजारु विचित्र **अंबारी** (बाल० २१३/३) बाजार सुंदर है। **छज्जे** विचित्र हैं।[6]

'रामचरितमानस-भाषा-रहस्य' में विशिष्ट परिशिष्ट अध्याय भी महत्वपूर्ण तथा उपादेय है। 'मानस' के विभिन संस्करणों में पाये जाने वाले पाठों की भिनताओं का निराकरण करके व्याकरणिक रूप की दृष्टि से सही पाठ का निर्धारण

---

१. मध्य बाग सरु सोह सुहावा। (बाल० २२७/७) वही, पृ० २
२. सर समीप गिरिजा गृह सोहा। (बाल० २२८/४) वही, पृ० २
३. वही, पृ० ३
४. वही, पृ० १८८.
५. वही, पृ० ४.
६. वही, पृ० २९५

किया गया है। ग्रंथ में कहीं-कहीं तुलसी के लिंग प्रयोग का आधार देश, काल तथा मनोवैज्ञानिकता को भी स्वीकार किया गया है, जैसे—'**मनोरथ**' का स्त्रीलिंग में प्रयोग (पृ० ३५०)।

प्रस्तुत ग्रंथ में 'सूरसागर' और 'मानस' के क्रियापदों की तुलना प्रस्तुत करके लेखक ने दोनों कवियों की भाषा के स्वरूप को स्पष्ट कर दिया है। इसी ग्रंथ में एक अद्भुत भाषिक तथ्य का भी उद्घाटन किया गया है। विद्वान् लेखक ने 'मानस' के क्रियापदों का गंभीर अध्ययन करके यह सिद्ध किया है कि रामचरितमानस में ऐसे भूतकालीन क्रिया पद प्रयुक्त हैं, जो अपने रूप में कर्त्ता के उत्तम पुरुष, एकवचन, पुंलिंग के सूचक हैं, जैसे—"मैं **चलेउँ**" (उत्तर० ७९/७)। दूसरे ऐसे रूप हैं जो कर्त्ता के उत्तमपुरुष, एक वचन, स्त्रीलिंग के सूचक हैं, जैसे—"**मैं गइउँ**" (अयो० १६५/५)। कर्मवाच्य में यदि कर्म अन्य पुरुष, पुंलिंग, एकवचन है और कर्त्ता उत्तम पुरुष, पुंलिंग, एक वचन है तो क्रिया में अंतिम प्रत्यय कर्त्ता के पुरुष के अनुसार और उपधा का प्रत्यय कर्म के लिंग-वचनानुसार आता है। जैसे—'**कहेउँ**' नामु बड़ ब्रह्म राम तें।" (गीता प्रेस, बाल० २३/५)। '**उमा कहिउँ** सब कथा सुहाई।" (गीता प्रेस उत्तर ५२/६)। उपर्युक्त दोनों उद्धरणों में कर्ता तो पुंलिंग, उत्तम पु० एक वचन में है, किंतु कर्म प्रथम उद्धरण में **नामु** है, जो पुं० एकवचन है, इसलिए क्रिया '**कहेउँ**' है। द्वितीय उद्धरण में कर्म 'कथा' है, जो स्त्रीलिंग एकवचन है, इसलिए क्रिया 'कहिउँ' है।

किसी काल के काव्य को समझने के लिए उस काव्य की भाषा का ज्ञान आवश्यक है। किसी भाषा की जानकारी उसकी व्याकरणिक संरचना के द्वारा ही संभव है। किसी काव्य में कवि ने किस विशिष्ट शब्द का प्रयोग वैसा क्यों किया है? उसके वाक्य-गठन में पद-क्रम कैसे है? ऐसे घटकों से ही भाषा की पकड़ होती है और काव्यार्थ में स्पष्टता आती है। बहुत से छात्र यह नहीं समझते कि विद्यापति की इस पंक्ति में '**बजाव**' का क्या अर्थ है?—"नंदक नंद कदंबक तरुतर घिरे-घिरे मुरलि **बजाव**।" 'बजाव' सामान्य वर्तमान काल में विदेशार्थ की अन्य पुरुषीय क्रिया है।

भाषा का संबंध वस्तु और भाव जगत् से है। दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं। काव्य वस्तु एवं शैली का समन्वय है। काव्य-विहित वस्तु एवं शैली को भाषा ज्ञान के माध्यम से ही जाना जा सकता है।

लेखक ने ठीक ही कहा है—

"लक्षणा, व्यंजना, उपमान, प्रतीक, अलंकार-विधान, बिंब-सृष्टि, छंद आदि जितने भी रसानुभूति के साधन हैं, उन सबका माध्यम शब्द का अर्थ है और उस अर्थ का मूल आधार है शब्द की व्याकरणिक स्थिति। अतः व्युत्पत्ति एवं व्याकरणिक रूप-सहित शब्द का अर्थज्ञान ही काव्य की रसानुभूति का मुख्य सोपान है।"

(वही, पृ० ४)

'रामचरितमानस-भाषा-रहस्य' एक मानस कोश युक्त ऐसा व्याकरण ग्रंथ है, जिसमें केवल शब्द और पद का अर्थ ही निहित नहीं है; अपितु उनका ऐतिहासिक अर्थ तथा व्याकरणिक स्वरूप भी विवेचित है। विद्वान् लेखक ने 'मानस' की किसी एक प्रति विशेष के आधार पर ही भाषा-रहस्य का उद्‌घाटन नहीं किया; अपितु तीन भिन्न प्रतियों से सहायता ली है—यह उनकी शोध-दृष्टि का प्रत्यक्ष उदाहरण है।

तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' के व्याकरण को इतने स्पष्ट और साधिकार रूप में प्रस्तुत करने वाला यह ग्रंथ अपने ढंग का पृथक और निराला है। 'मानस' के क्रिया-वाच्यों तथा क्रिया-रूपों को सही तथा निर्भ्रांत रूप में प्रस्तुत करने वाला यह पहला ग्रंथ है, जिसमें पूर्ववर्ती ग्रंथों की भूलों की ओर इंगित करके भाषा का सही स्वरूप दिग्दर्शित किया गया है। अवधी और ब्रजभाषा के व्याकरणिक स्वरूप को जानने के लिए यह ग्रंथ विशेष रूप से पठनीय है।

—अध्यक्ष, हिंदी-विभाग
मुंनालाल एवं जयनारायण खेमका
कन्या महाविद्यालय
सहारनपुर (उ० प्र०)

'संस्कृति, साहित्य और भाषा' ग्रंथ का लेखक

—प्रो० जगंनाथ तिवारी

डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' द्वारा लिखित '**संस्कृति, साहित्य और भाषा**'—नामक ग्रंथ को मैंने बड़े मनोयोग से आद्युपांत पढ़ा और मैंने इस त्रिवेणी के सरस, स्निग्ध तथा शीतल-प्रवाह में अवगाहन कर अत्यधिक प्रसंनता का अनुभव किया। इस ग्रंथ में 'सुमन' जी ने अनेक विद्वानों द्वारा पूछे गए जिज्ञासा-मूलक जटिल प्रश्नों का विद्वता-पूर्ण समाधान किया है। प्रश्न-कर्त्ताओं में कई हिंदी तथा संस्कृत के शीर्षस्थ अध्यापक भी संमिलित हैं। 'सुमन' जी के समाधान उनके सुविचारित विस्तृत अध्ययन के पूर्ण परिचायक हैं। इन समाधानों को प्रामाणिक सिद्ध करने के लिए 'सुमन' जी ने विविध शास्त्रों से उपयुक्त तथा आवश्यक उदाहरण भी प्रस्तुत किये हैं। इस ग्रंथ में सुमन जी सरस्वती के समर्पित साधक के रूप में दिखाई देते हैं। यह ग्रंथ **संस्कृति, साहित्य और भाषा,** तीन भागों में विभक्त किया गया है।

संस्कृति-भाग के प्रश्न और समाधान अनेक सांस्कृतिक विषयों से संबद्ध हैं। इनमें ज्ञान, कर्म, भक्ति, जीवात्मा और शरीर, वैदिक साहित्य के सोपान, भारतीय दर्शन और आधुनिक विज्ञान, कर्मवाद तथा भाग्यवाद, भारत की प्राचीन और नवीन सभ्यता, मानव धर्म, हिंदू-संस्कृति : एक समन्वय, कर्म, अकर्म और विकर्म, जगत् की उत्पत्ति और ईश्वर की सर्वव्यापकता, वैदिक काल में नारी का स्वरूप, जन्मांतर और योनि-परिवर्तन, जैन-दर्शन एक विवेचन, मानव का करणीय कर्म, गीता में कर्म, रामचरितमानस की दार्शनिकता, सनातनधर्म और आर्यसमाज, व्यष्टि धर्म, राष्ट्रधर्म और विश्वधर्म इत्यादि अनेक आध्यात्मिक, दार्शनिक तथा सांस्कृतिक विषयों के मार्मिक तथा गंभीर विवेचन 'सुमन' जी ने प्रस्तुत किये हैं। अपने विवेचन को प्रामाणिक बनाने के लिए 'सुमन' ने वेद, वेदांग, उपनिषद् दर्शन, जैनदर्शन, महाभारत, गीता, रामायण और मनुस्मृति इत्यादि अनेक ग्रंथों से उपयुक्त उद्धरण भी दिये हैं। संपूर्ण विवेचन सरस, तार्किक तथा बोधगम्य शैली में किया गया है।

साहित्य-भाग में अनेक साहित्यिक विषयों का अधिकारपूर्ण प्रतिपादन किया गया है। इस भाग में 'सुमन' जी ने साहित्य के अनेक जटिल तथा विवाद-ग्रस्त विषयों का बड़ा ही सुंदर विवेचन किया है। रस निष्पत्ति, ध्वनि, अलंकार, प्रतीक, काव्य

में रहस्यवाद, छायावाद, स्वच्छंदतावाद, काव्य में आदर्शवाद, यथार्थवाद, काव्य में लोकहित, हिंदी की नयी समीक्षा के सिद्धांत, विज्ञान और कविता, नाटक—साहित्य, उपन्यास-साहित्य और सामाजिक हित, काव्यानुभूति और प्रत्यक्षानुभूति और साहित्यकार का स्वरूप इत्यादि साहित्यिक विषयों का सुमन जी ने मार्मिक विवेचन किया है।

भाषा खंड में 'सुमन' जी ने भाषा-संबंधी अनेक प्रश्नों का अधिकारपूर्ण समाधान किया है। इस भाग में हिंदी में तत्सम और तत्समाभास शब्द, अनेक शब्दों की व्युत्पत्ति, कुछ शब्दों की वर्तनी, उपादान कारण और निमित्त कारण, अरबी-फारसी शब्दों की पहचान, देवनागरी लिपि और हिंदी भाषा, हिंदी की वाक्य-रचना, हिंदी की नयी कविता में विचार और भाषा, संज्ञाओं से विशेषण बनाने की पद्धति, शैली-विज्ञान और उसके प्रकार और मानस के कुछ शब्द और समाधान इत्यादि विषयों पर 'सुमन' जी ने अपने पांडित्यपूर्ण विचार प्रकट किये हैं।

'सुमन' जी की भाषा-शैली सर्वत्र परिमार्जित, प्राँजल, सरस तथा बोधगम्य है। उसमें उनके व्यक्तित्व की छाप दिखाई देती है। 'सुमन' जी की शैली कुछ स्थलों पर पूर्णरूप से व्यंग्यात्मक तथा चित्रात्मक भी हो गयी है। पृष्ठ १९०-१९५ पर 'सुमन' जी ने अपने जिस **धीवर महोदय** का चित्रात्मक तथा व्यंग्यात्मक चित्र खींचा है, वह देखने योग्य है। एक अन्य पत्र में (जो ठा० **नवाबसिंह चौहान** के नाम लिखा गया है) 'सुमन' जी ने जो सच्चे साहित्यकार का चित्र खींचा है, वह भी प्रशंसनीय है।

निष्कर्ष में मैं यही कहूँगा कि 'सुमन' जी के समाधानों से मैं बहुत ही प्रभावित हूँ। केवल कुछ ही स्थल ऐसे हैं जिनमें मेरा 'सुमन' जी से कुछ मतभेद है और यहां उनकी चर्चा कर देना भी आवश्यक है। प्रस्तुत ग्रंथ के पृष्ठ १६१ पर उन्होंने लिखा है कि "रसानुभूति में विभाव, अनुभाव, संचारीभाव और स्थायी-भाव—चारों का ही साधारणीकरण होना चाहिए।' मेरे विचार में प्रथम तीन का ही साधारणीकरण होता है। स्थायीभाव तो वासना रूप से सहृदय दर्शक और पाठक के हृदय में पहले से ही विद्यमान रहता है। विभाव, अनुभाव और संचारी-भाव के द्वारा उसके अज्ञान का पर्दा हट जाता है और वह सत्व-प्रधान और चिन्मय होकर आस्वाद्य हो जाता है। अभिनव गुप्त तथा मम्मट के अनुसार—"भग्नावरण-चिद्विशिष्टो रत्यादिः स्थायीभावो रसः"। पंडितराज जगंनाथ के अनुसार—"रत्याद्यवच्छिना भग्नावरणा चिदेव रसः।" दशरूपककार धनंजय ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि—

"विभावैरनुभावैश्च सात्विकैर्व्यभिचारिभिः।
आनीमानः स्वाद्यत्व स्थायीभावो रसः स्मृतः।"
"श्रोतृप्रेक्षकाणामन्तर्विपरिवर्तमानो इत्यादिः रसः"
"स्वभावः स्वदते" इत्यादि।

'सुमन' जी ने पृष्ठ २८१ पर नाट्य का अर्थ किया है—नाचना, गाना, बजाना इत्यादि। नाट्य का यह अर्थ बहुत ही संकीर्ण अर्थ है। आलोचनाशास्त्र में उसका अर्थ संपूर्ण अभिनयात्मक साहित्य को अपने में समाविष्ट कर लेने वाला बताया गया है। इसी कारण भरत मुनि ने अपने अभिनय-संबंधी शास्त्र का नाम 'नाट्य-शास्त्र' रखा था। दशरूपक में भी नाट्य का लक्षण "अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्" किया गया है। नाचना, गाना, बजाने के लिए उसमें 'नृत्त' शब्द का प्रयोग किया गया है—'नृत्तं ताललयाश्रयम्'।

'सुमन' जी ने पृष्ठ ४२९ पर गीता के निम्नांकित श्लोक में आये हुए शुच, पद के संबंध में अपने तथा डा० परमानंद शास्त्री के विचार प्रकट किये हैं। श्लोक इस प्रकार है—

"सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।"

'सुमन' जी के अनुसार 'शुचः' संज्ञा पद है और डा० परमानंद शास्त्री के अनुसार शुचः लुङ् लकार रूप है। दोनों के कथन भ्रांतिपूर्ण हैं। वास्तव में शुच धातु के दो अर्थों में प्रयोग होते हैं। शुच् परितापे, शुच शोके। सिद्धांत कौमुदी के अनुसार जहाँ शुच् का परिताप अर्थ में प्रयोग होता है, वहाँ शुच् का लुङ् लकार मध्यम पुरुष एक बचन में 'अशुचः' रूप होता है। 'मा' के संसर्ग से 'अ' का लोप हो जाता है और उसका अर्थ लोट्लकार में परिणत हो जाता है। अतः प्रस्तुत प्रकरण में 'माशुचः' का परिताप मत करो यह अर्थ हुआ। 'मां' के संसर्ग से लङ्लकार, लुङ् लकार दोनों में 'अ' का लोप हो जाता है।

'सुमन' जी ने पृष्ठ २१५ पर लिखा है कि 'अन्योक्ति समासोक्ति या रूपकातिशयोक्ति में प्रस्तुत के स्थान पर केवल अप्रस्तुत का ही विधान होता है। अन्योक्ति तथा रूपकातिशयोक्ति के विषय में तो यह कथन ठीक है, किंतु समासोक्ति में प्रस्तुत-विधान ही होता है और उसके द्वारा अप्रस्तुत की केवल व्यंजना होती है। पृष्ठ २७५ पर आर्य वर्ग तथा भारोपीय वर्ग को समानार्थी मान लिया गया है, जबकि 'आर्य वर्ग' भारोपीय वर्ग की केवल एक शाखा है।

पत्र-लेखक के व्यक्तित्व की पूर्ण झाँकी उसके द्वारा लिखे गये पत्रों से प्राप्त हो जाती है। सुमन जी द्वारा लिखे गये पत्रों से उनके व्यक्तित्व की अनेक विशिष्टताएँ भी स्पष्ट रूप से हमारे सामने आ जाती हैं। उनके कुछ पत्रों से यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि सुमन जी ने अपने संघर्षमय जीवन की कठिन स्थितियों में भी भ्रष्टाचार से समझौता नहीं किया। ऐसा प्रतीत होता है कि भ्रष्ट विभागीय-अध्यक्ष ने उन्हें अनेक प्रकार से कष्ट पहुँचाने का प्रयास किया किंतु उनके सदाचरण पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। ग्रंथ के पृष्ठ ८० पर उन्होंने लिखा है कि "जिन्होंने मुझसे स्वार्थ-सिद्धि न होने के कारण मेरा घर जलाया है, उनके लिए भी मैं प्रभु से यही प्रार्थना करता हूँ कि प्रभु उनका मंगल करें किंतु

वे परम प्रभु उन्हें वह बुद्धि अवश्य प्रदान करें कि मेरे घर की तरह किसी निर्दोष व्यक्ति का घर वे न जलाएँ।" पृष्ठ २८६ पर अपने लिखे पत्र में चाटुकारिता के प्रति उन्होंने तीव्र घृणा प्रकट की है। इसी पत्र में उनके स्वाभिमान का भी पूर्ण परिचय मिलता है। वे लिखते हैं—'यदि हमारे राज्य के राजनीतिक स्तंभ सच्चे साहित्यकारों से यह आशा रखेंगे कि वे साहित्य सर्जना और स्वाभिमान को त्यागकर केवल राजनीतिज्ञों के आसन की परिक्रमा लगाएँ, तो साहित्य तथा राष्ट्र की बहुत बड़ी हानि हो जाएगी।' 'सुमन' जी के अनेक अन्य पत्रों से उनके चरित्र की इन विशिष्टताओं का भी पूर्ण परिचय मिलता है—निष्काम कर्म-निष्ठा, गुरुओं के प्रति श्रद्धांजलि, शिष्यों के प्रति नेह-प्रवणता तथा तपस्यापूर्ण जीवन की प्रबल कामना इत्यादि।

अंत में मैं निःसंकोच कह सकता हूँ कि उपर्युक्त ग्रंथ 'सुमन' जी की सर्वतोमुखी प्रतिभा का पूर्ण परिचायक है और मेरा विश्वास है कि यह ग्रंथ हिंदी-संस्कृत के विद्वानों, अध्यापकों, शोधार्थियों तथा विद्यार्थियों के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगा।

(भूतपूर्व अध्यक्ष, हिंदी-विभाग, आगरा कालेज, तथा
भूतपूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष, हिंदी-विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर)
—२/२६ स्वदेशी बीमानगर,
आगरा (उ० प्र०)

पत्र-लेखक डा० सुमन

—डा० श्यामनारायण मेहरोत्रा

वासंती प्रकाशन, हरिनगर, अलीगढ़ द्वारा प्रकाशित डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' की कृति **संस्कृति, साहित्य और भाषा** (१९७९) देखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। मैंने इस पुस्तक को उलट-पलट कर देखा, यत्र-तत्र पढ़ा, तथा कुछ विचार-विमर्श भी किया।

डा० सुमन अलीगढ़ विश्वविद्यालय में हिंदी-विभाग से संबद्ध रहे हैं, उनका अधिकांश जीवन हिंदी के पठन-पाठन तथा चिंतन-मनन से जुड़ा है। उनकी जिज्ञासु मंडली इसी वर्ग से आयी है। वे हिंदी के जाने-माने लेखक हैं। उनकी शैली रोचक है। अतः उनके ग्रंथ के प्रति आकर्षण स्वाभाविक है।

प्रस्तुत कृति में जनवरी ५५ से दिसंबर ७८ तक की २४ वर्षों की लंबी अवधि में २७४ पत्रों को लेखक ने संस्कृति, साहित्य और भाषा इन तीन खंडों में में विभक्त करके दिनांक-क्रम से संजोया है। इसमें एक परिशिष्ट और है जिसमें लब्ध-प्रतिष्ठ साहित्यकारों के ४१ पत्र संगृहीत हैं। ये सभी उनके किसी पत्र के उत्तर में अथवा शंका-समाधान हेतु लिखे गये हैं। भदंत आनंद कौसल्यायन के 'भिक्षु के पत्र' तथा पंडित जवाहरलाल नेहरु के बहुचर्चित 'पिता के पत्र पुत्री के नाम' की तरह 'सुमन' जी के शिष्यजनों को संबोधित ये पत्र आत्मीयता की कड़ी का निर्वाह करते हुए पत्र-साहित्य में समाहित होते रहे हैं।

संस्कृति का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है और इसका विवेचन बड़ा ही गूढ़। ज्ञान, कर्म तथा भक्ति इसकी परिधि में आते हैं, व्यक्ति और समाज इसमें समाये हुए हैं, लोक और वेद इससे जुड़े हुए हैं। जिज्ञासु पाठक के लिए इस कृति में संस्कृति का क्षेत्र बहुत कुछ सिमट गया है। शायद बोधव्य की पात्रता अपात्रता ने लेखक को गहरे में उतरने का अवसर नहीं दिया है। आखिर ये सब पत्र संबोधित हैं, सामान्य पाठक को।

'साहित्य' एवं 'भाषा' खंडों में संगृहीत अधिकांश पत्र हिंदी भाषा और साहित्य के विभिन पक्षों को लेकर संरक्षित हैं। डा० सुमन के निष्कर्षों से, आवश्यक नहीं, सभी विद्वान् सहमत हों, पर महाकवियों के जीवन की अलभ्य सामग्री के प्रकाशन में स्वनाम धन्य सर्व श्री राहुल जी, वासुदेव शरण अग्रवाल, आचार्य किशोरीदास वाजपेयी के चरित्र एवं कृतित्व की मनोरम झांकी प्रस्तुत करने में, स्वजीवन के कड़वे-मीठे फलों का परिचय देने में, हिंदी शब्दों की निर्वचन पद्धतियों

में, कतिपय दुर्लभ सूचनाओं के प्रकाशन में, उनका यह प्रयास स्तुत्य एवं अनुकरणीय है।

कृति का एक आकर्षक पक्ष और है—भाषा की सहजता और सरलता; संबद्ध निर्वाहों में सजगता और तत्परता और अधिक छोटों को उजागर करने की लालसा। जहाँ तक लेखन-शैली का प्रश्न है, उसे मैं अध्यापन की शैली कहना चाहूँगा। अध्यापन-सामग्री को आत्मसात करके तर्क पूर्ण ढंग से उदाहरण देते हुए बहुत ही सरल एवं आम भाषा में अपनी बात छात्रों के सामने प्रस्तुत करने में डा० सुमन ने अद्वितीय सफलता का परिचय दिया है। विषय-स्पष्टीकरण के लिए वह कितना ही दूर चले जाएँ, पूर्व-निर्धारित क्रम पर पुनः आ जाते हैं। ये सब गुण इन पत्रों में यत्र-तत्र, सर्वत्र मिलते हैं।

इस ज्ञानवर्द्धक छात्रोपयोगी साहित्यिक रचना के लिए सुमन जी बधाई के पात्र हैं। मुझे विश्वास है कि पाठक इस कृति से लाभान्वित होंगे तथा इसका आनंद उठाएँगे।

—कुलपति
आगरा विश्वविद्यालय, आगरा
(उ० प्र०)

भारतीय संस्कृति के व्याख्याता

—आचार्य श्री मुरारी लाल

'संस्कृति, साहित्य और भाषा' की त्रिवेणी में पुनः स्नान किया। पवित्र हो गया। अपनी सीमाओं का मुझे बोध है किंतु जो 'होमवर्क' आपने दिया था उसे एक भगोड़े छात्र की भाँति विलंब से पूरा कर रहा हूँ। आकलन भले ही हल्का हो। उप-वास का लाभ तो मिल ही रहा है।

ग्रंथ की परिधि महाभारतीय है। आपके व्यक्तित्व की व्याप्ति असामान्य, चिंतन आश्वसनीय और जीवन सुनियोजित। प्रकीर्ण पत्रों को व्यवस्थित और संपादित करके, इस रूप में प्रस्तुत करने में संपादकों का श्रम सार्थक और श्लाघनीय है।

पत्रावली के 'संस्कृति' खंड की परिधि बहुत विस्तीर्ण है। उसमें आपने फ्रायड और आइंस्टाइन से लेकर 'पहलवानों के दांवपेच' तक को समेट लिया है। धर्म, दर्शन, नीति, सभ्यता और संस्कृति तो अनिवार्य थे। दो स्थलों पर मुझे भी उत्तर-प्रापक का गौरव मिला है, यद्यपि मेरी आकस्मिक उक्तियों को गंभीर समाधान अपेक्षित नहीं था।

वास्तव में आपके विचार बड़े स्पष्ट और युक्ति युक्त हैं। कभी-कभी तो यह देखकर आश्चर्य होता है कि सूक्ष्म विषय भी ऐसी रासायनिक तुला पर रख दिया गया है, जहां परिणाम बावन तोले पाव रत्ती आया है।

'धर्म' के विषय में भारतीय मान्यता है—जो धारण करे। इस प्रकार धर्म 'अस्तित्व' का नियम है। जड़, चेतन, व्यक्ति, समाज, देश आदि सभी अपने अस्तित्व के लिए धर्म पर निर्भर हैं। वह प्रत्येक पदार्थ की विधायिका वृत्ति है। जल से उसका धर्म 'जलत्व' (भिगोना) निकल जाए तो वह जल नहीं रहेगा। दाहकता समाप्त होने पर अग्नि को अग्नि नहीं कहा जा सकेगा। मनुष्यत्व तिरोहित होने पर मानव धर्मात्मा नहीं रह जाता। भारतीय धर्म की अन्यतम विशेषता है कर्म-सिद्धांत (Law of cause and Effect) ऋत और सत्य की अवधारणाएँ यही प्रतिपादित करती हैं कि कल्पांत में भी कर्म अविनश्वर है (Law of conservation)। यही हमारा 'सनातन' तत्व है। 'ऋतञ्च सत्यञ्च' को हम 'अघमर्षण मंत्र' कहते हैं और उसे नित्य (त्रिकाल) दुहराते हैं। इसी से हमारे 'स्वकर्म', 'स्वभाव', स्वधर्म' आदि विर्धारित होते हैं।

धर्म, दर्शन, नीति आदि सभी सैद्धांतिक रहते हैं जब तक इनके आचार पक्ष पर बल न दिया जाए। यह भारतीय धर्म की दूसरी विशेषता है। यहाँ सदाचार और साधना धर्म से अविभाज्य हैं। मत, पंथ, संप्रदाय, मजहब, रिलिजन आदि समर्पण को अनिवार्य मानते हैं तो हिंदू 'पुरुषार्थ' को। भारत के बाहर भारतीय धर्म भी अपनी विशेषता खो बैठता है। हम आचार या कर्म को जीवात्मा के 'विकास' का नियम मानते हैं।

हिंदू धर्म का मतों से भेद सैद्धांतिक और सांस्कारिक है। संस्कारों की समष्टि ही 'संस्कृति' है। हिंदू धर्म सिद्धांत पर 'संस्कृति' को वरीयता देता है। जहाँ धर्म जीवात्मा की 'विधायिका' वृत्ति है, संस्कृति उसकी 'विकासिका' वृत्ति है। आपका सूत्र है—

धर्माचार + लोकाचार = संस्कृति

मुझे यह सूत्र प्रिय है—

संस्कार + विकास (अभ्युदय + निःश्रेयस) = संस्कृति।

सेवा को जीविका के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। नौकरी समाप्त होने पर सेवा-भावना भी समाप्त हो सकती है, किंतु जब वह संस्कार बन पाती है तो उसका स्थाई भाव 'धर्म' हो सकता है।

जहाँ संस्कृति आंतरिक परिष्कार है, सभ्यता वाह्य सुविधा-साधन हैं। 'हम क्या हैं'? इससे सभ्यता का। जहाँ मैं संस्कृति को संस्कारों से संबद्ध करता हूँ सभ्यता को समाज से जोड़ता हूँ। इसकी व्युत्पत्ति तो आप जानें इसमें मेरा चंचु प्रवेश भी नहीं है। मोटे तौर पर आपका समीकरण सही है—

खान-पान + वस्त्राभूषण + रहन-सहन = सभ्यता।

'हिंदू संस्कृति एक समन्वय है' यह कथन यथार्थ है। इसका आधार हिंदूधर्म की तीसरी विशेषता है—हिंदू धर्म कोई 'वाद नहीं है। वह एक खुली वैज्ञानिक पद्धति है; आध्यामिक खोज की। विज्ञान में पद्धति (Method.) ही महत्वपूर्ण है। विज्ञान किसी व्यक्ति या पुस्तक को अंतिम नहीं मान सकता। सत्य की खोज ही उसका अंतिम लक्ष्य है। विज्ञान की भाँति हिंदू संस्कृति पर मत-सहिष्णु है। वहाँ 'सत्य की जय' बोली जाती है किसी किताब या पैगंबर की नहीं। कट्टरता या रूढ़ि पर उसे आग्रह नहीं है। भारतीय मनीषा की गायत्री (वे आलोक रश्मियाँ जो सूर्य लोक से भूलोक पर आती हैं) हमारे उर-अंतर को आलोकित करती हैं। इसी शोध-दीप को लेकर अध्यात्म-विज्ञान के नये आयामों को अनावृत किया जाता है। हम, सभी अध्यात्म विज्ञानियों (साधकों) की, अनुभूतियों प्रतीतियों का आदर करते हैं। उनका समन्वय-समायोजन करते हैं और दैवी-योजना के वाहक बनते हैं। इस विकास-क्रम में प्रत्येक जीव की एक भूमिका है जो इसके गुण-कर्म स्वभाव से निर्धारित होती है। इसीलिए हिंदू-धर्म में पद्धति की एकता है। मजहबी एकरूपता

नहीं। हमारे अनेक-विध देवी-देवता, मत-संप्रदाय, लोगों को विस्मित भले ही करें किंतु वे विकास की भिन-भिन सीढ़ियों पर बैठी जीवात्माओं का पथ-निर्धारण करते हैं। हमारी मान्यता है कि मानव सत्य में 'परावर्तित' (Convert) नहीं होता। सत्य की सिद्धि (Realigation) करता है। इसी से वह मानव-धर्म है, व्यक्ति परक 'मिल्लत' (Community) नहीं। हिंदू सांप्रदायिक (Communal) हो ही नहीं सकता।

गीता के चौथे अध्याय में और भागवत के ग्यारहवें स्कंध में **'कर्म', 'विकर्म'** और **अकर्म,** तीन पारिभाषित शब्द आये हैं। इसका अर्थ करने में बड़ा अनर्थ हुआ है। प्रसंग, कर्म और कर्म के बंधन से मुक्ति का है। गीता के 'योग' या 'संन्यास' किसी में भी कर्म का त्याग नहीं है। जीवन मुक्त कर्म करते नहीं उनसे कर्म होता है। उनका मौन भी मुखर हो जाता है।

गुरोस्तु मौनं व्याख्यानम्।
शिष्यस्तु छिन्न संशयः॥

यही **'अकर्म'** की स्थिति है। विवस्वान् (सूर्य) इसका उदाहरण है। 'विकर्म' दुष्कर्म नहीं है। निषिद्ध कर्म के उल्लेख का यहाँ प्रसंग ही नहीं है। अतः मनोयोग पूर्वक किया हुआ कर्म ही **'विकर्म'** है। सामान्य छात्र अध्ययन का 'कर्म' करता है वही शोधार्थी का 'विकर्म' होता है। **कर्म**→ विकर्म, **अकर्म** यह क्रम-विकास है। कवि, कलाकार, उपन्यासकार आदि कर्म की तल्लीनता का आनंद प्राप्त करते हैं। उनका यह 'विकर्म' कर्म से आगे की ओर अकर्म से पीछे की सीढ़ी है। हैं तीनों कर्म ही।

मैं दुर्गाओं को मातृ-सत्ताक युग का प्रतीक मानता हूँ। राष्ट्र पर पड़ने वाले उन संकटों का निवारण उन्होंने किया जहाँ पुरुष परास्त हो चुके थे। वे दुर्ग-रक्षिणी दुर्गाएँ हैं और आर्यों के पूर्वज देवों की भी पूज्य हैं। वह युग इतना दीर्घ कालीन और इतना पावन है कि वर्ष के तीन सप्ताह उनकी स्मृति (आराधना) के लिए निर्धारित किये गये।

डाक्टर सुमन ने, सैकड़ों समाधानों की यह ज्ञान-गंगा प्रवाहित की है। उसकी निर्मल धारा और पांडित्यपूर्ण छवि को मेरी श्रद्धा के 'सुमन' समर्पित हैं।

संपादकों को मेरा साधुवाद। उन्होंने भगीरथ-श्रम किया है और **'कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधा हूं'।**

प्रेषक, प्राचार्य (सेवानिवृत)
२/१९८, विष्णुपुरी, अलीगढ़
अलीगढ़ (उ० प्र०)—२०२००१

भाषा–विवेचक डा० 'सुमन'

—डा० कैलाशचंद्र भाटिया

संस्कृति, साहित्य तथा भाषा तीनों पक्षों पर लिखे गये पत्र इस ग्रंथ में संकलित तथा, संपादित किये गये हैं, फिर भी बल 'भाषा' पक्ष पर है और यही डा० 'सुमन' जी का विशिष्ट क्षेत्र है। ग्रंथ का एक तिहाई भाग 'भाषा' खंड को दिया गया है साथ ही संस्कृति और साहित्य खंडों में भी यत्र-तत्र शब्दों में चर्चा की गयी है। इधर काफी वर्षों से डा० 'सुमन' 'रामचरितमानस' का अध्ययन कर रहे हैं और उनके कई ग्रंथ विभिन पक्षों पर प्रकाशित भी हो चुके हैं; अतएव यह स्वाभाविक ही कहा जाएगा, यदि स्थान-स्थान पर मानस के उद्धरण देकर शब्दों के प्रयोगों को और उनकी अर्थच्छटाओं को समझाया गया है। यहाँ मात्र 'भाषा' खंड की उपयोगिता पर कुछ विचार प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ के 'भाषा' खंड (पृ० २९१–४९४) में १०८ पत्र संकलित किये गये हैं, जिनमें हिंदी भाषा से संबंधित जिज्ञासाओं को समाधान के साथ रखा गया है। जहाँ कहीं लेखक को और अधिक समाधान की जरूरत महसूस हुई अथवा संशयात्मक स्थिति समझ पड़ी है, वहाँ स्वयं अन्य विद्वानों के नाम देकर पूछने/लिखने का सुझाव दिया गया है।

इस खंड में सर्वाधिक जिज्ञासाएँ 'व्युत्पत्ति' से संबंधित हैं। डा० 'सुमन' ने पी–एच० डी० के शोध प्रबंध **'कृषक जीवन संबंधी ब्रजभाषा शब्दावली'** में भी यथा संभव व्युत्पत्तियाँ दी हैं। उनको यह दृष्टि डा० वासुदेव शरण अग्रवाल से प्राप्त हुई है, जिसका उन्होंने प्रयोग किया है। व्युत्पत्ति की दिशा में काम करने वाले आज के विद्वानों में डा० 'सुमन' अग्रणी हैं। इस संबंध में उन्होंने स्पष्टतः लिखा है, "व्युत्पत्ति वही ग्राह्य और मान्य हो सकती है, जो इतिहास, भूगोल, पुराण, किंवदंती या लोक आदि से समर्थित तथा प्रमाणित हो। केवल ध्वनि-परिवर्तन नियमों पर बात पूरी सही नहीं बैठ सकती।" (पृ० ४२८) 'व्युत्पत्ति के लिए भावयित्री प्रतिभा की आवश्यकता, पर बल दिया गया है। अर्थ के संदर्भ में इसकी उपयोगिता पर बल देते हुए आपके विचार हैं, "शब्दार्थ के लिए व्युत्पत्ति-ज्ञान आवश्यक है। व्युत्पत्ति अर्थ का पर्दा खोल देती है। व्युत्पत्ति-ज्ञान से अर्थ और भाव के दर्शनों के लिए तीसरा शिव-नेत्र खुल जाता है। ××× व्युत्पत्ति ही अर्थ का पर्दा खोलती है।"

(पृ० ४६५) । डा० रुवाली के पत्र के उत्तर में पृ० ४२२–२३ पर कहा कि "विषय का सीधा संबंध हिंदी के तद्‌भव शब्दों से है। हिंदी के तद्‌भव शब्द वे हैं जो संस्कृत से प्राकृत की परंपरा में होकर हिंदी में आये हैं।" इस दृष्टि से यहाँ 'जी' शब्द की विस्तृत व्युत्पत्ति दी है । संपूर्ण ग्रंथ में स्थान-स्थान पर व्युत्पत्तियाँ भरी हुई हैं फिर भी कुछ उल्लेखनीय हैं, **टीला** (पृ० २६४), **बिसासी** (पृ० ३००), **पाजी**/पदाजि (पृ० ३०१–३०२), **जीया** (पृ० ३०८), **बिटौरा** (पृ० ३०८), बालम (पृ० ३०८), **निरजोस** (पृ० ३०९), **उड्डीयमान** (पृ० ३१५), नाहर (पृ० ३१५), **कौसानी** (पृ० ३२७), पत्र-पन्ना (पृ० ३५४), सकारे (पृ० ३७०), **पहचान** (पृ० ३७१), **सखरी–निखरी** (पृ० ३७७), भोर (पृ० ३७७), **बलैया** तथा **सहदानी** (पृ० ४१२–१३) आदि।

आप प्रारंभ से भाषा में शुद्धता के पक्षपाती रहे हैं। यही कारण है कि जहाँ कहीं शब्द की वर्तनी व व्युत्पत्ति की अशुद्धि आप देखते हैं तत्काल उस ओर संकेत करते हैं। इस संबंध में पता नहीं कितने छोटे-बड़े साहित्यकारों के पास डा० सुमन के पत्र होंगे, जिनका दशमांश भी यहाँ संकलित नहीं हुआ होगा। 'कल्पना' का संपादकीय को पढ़ उसके संपादक तथा संस्कृत विभाग के अध्यक्ष की **'जागृत'** वर्तनी पर लिखा और साथ ही यह भी स्पष्ट किया जागृ धातु में **'शतृ'** से **'जाग्रत'** तथा + क्त से **'जागरित'** बनता है। (पृ० २९१)। इसी प्रकार **'बिसासी'** की व्युत्पत्ति पर अपना मत विस्तार से समझाते हुए लिखा (पृ० ३००)। संस्कृत के साथ अरबी-फारसी का अध्ययन भी व्युत्पत्ति समझने में सहायक सिद्ध होता है। यही कारण है कि डा० 'सुमन' ने सुझाया कि **बिसासी** विश्वासघाती से नहीं वरन् अरबी 'वसवास' (भ्रम या धोखा) से है, जिससे **'धोखेबाज के अर्थ में वसवासी'** बना है।

कहाँ अनुस्वार लगना चाहिए ? अनुनासिकता के लिए चंद्र बिंदु तथा किस प्रकार मात्रा में फर्क हो जाता है ? इसको बड़ी सफाई के साथ कई स्थानों (पृ० २९८, ३००, पृ० ३३१ तथा पृ० ३९३-३९४) पर समझाया गया है।

ध्वनि विज्ञान की कई समस्याओं पर अच्छा प्रकाश डाला गया है जैसे **श्रुति-अपश्रुति** (पृ० ३४६), **स्वर भक्ति** (पृ० ३६४), **प्रयत्न** (पृ० ४६९-७०) तथा **संघर्षी ध्वनियाँ** (पृ० ४५७-५८)।

'शब्द' के विभिन पक्षों पर तो पूरे ग्रंथ में स्थान-स्थान पर बहुत ही उपयोगी सामग्री है। यह सामग्री इतनी अधिक है कि इस विषय पर स्वतंत्र ग्रंथ बन सकता है। इससे पूर्व भी आचार्य रामचंद्र वर्मा ने शब्दार्थ तथा मिलते-जुलते शब्दों की भेदक रेखाएँ स्पष्ट करते हुए कई ग्रंथ लिखे हैं। निश्चित रूप से इस अध्ययन को डा० सुमन ने आगे बढ़ाया है । शब्दों का अपना संसार होता है। **'शब्द और अर्थ** का **प्रभामंडल'** शीर्षक से लंबा पत्र (पृ० ४६१-६७) पठनीय है। शब्द-भेद पर पृ० **३३८–३९ पर** विचार द्रष्टव्य हैं, 'जल्दी' शब्द अर्थ में गति-सूचक भी है और काल सूचक भी। हमें हिंदी में गति-सूचक अर्थ में **शीघ्र** और काल सूचक अर्थ में

अविलंब लिखना चाहिए।' इसी प्रकार अनेक जोड़ों में अर्थ भेदक रेखाओं के लिए उपयोगी सामग्री स्थान-स्थान पर है, जैसे **यशकीर्ति** (पृ० ३३९–४०), **मौन-जल्पना** (पृ० ३४७), **शोभा कांति तथा दीप्ति** (पृ० ३७८), **मन-मस्तिष्क** (पृ० ४०१–३), **ज्ञानविद्या** (पृ० ४३५–३६)। शब्द-दर्शन पर भी गंभीर सामग्री पृ० ३९७-३९९ पर दी गयी है। मानस के संदर्भ में अनेक शब्दों के पाठ-भेदों पर चर्चा की गयी है, इस दृष्टि से पृ० ३०६, ३२३, ३२९–३०, ३५०–५१ पर उपयोगी सामग्री है। शब्द-भेद **'तत्समाभास'** पृ० ३९२ पर तथा अरबी-फारसी की शब्दावली में भेदक तत्व पृ० ३४२–३४३ तथा ३९२–९३ पर दिये गये हैं।

हिंदी और उसकी विभिन उपभाषाओं पर भी सामग्री कई स्थानों पर है, जैसे पृ० ३७४–७५ तथा ४०४–४०६। हिंदी का विभिन प्रादेशिक भाषाओं के साथ क्या संबंध है ? इस दृष्टि से पंजाबी के साथ पृ० ३४४ पर, गुजराती के साथ पृ० ४४७-४८ उल्लेखनीय है। दक्षिण की द्रविड़ कुल की भाषाओं की भी यत्र-तत्र चर्चा है। इन उपभाषाओं के पारस्परिक संबंध पर भी प्रकाश डाला गया है, जैसे राजस्थानी-बाँगरू (पृष्ठ २९३–९४) व खड़ी ब्रजभाषा (पृ० ४३७–४४०)। उर्दू के संदर्भ में चुस्त भाषा तथा मुहावरों के महत्व पर उनकी ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

"वास्तव में बोलियाँ ही अपनी कोख से मुहावरों को जन्म दिया करती हैं। उर्दू ने खड़ी बोली के बोली रूप का आदर किया है। कस्बों और छोटे शहरों में खड़ी बोली का जो रूप रहा था, उसे उर्दू वाले अपना चुके थे × × इसीलिए उर्दू में गजब की मुहावरेदारी है। × × × मुहावरे भाषा को चुस्त, फुर्तीली और तेज बना देते हैं। बनावटी, अलंकारों से भाषा स्थूल और भारी भरकम हो जाती है। मेरे पूज्य गुरुवर डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल कहा करते थे कि जिस दिन हिंदी की शैली में कहावतों और मुहावरों का आदर होगा, उस दिन इसका रूप खिल उठेगा।" (पृ० ४१९)

'भाषा-विज्ञान' से संबंधित विषय भी इस ग्रंथ में अछूते नहीं रहे हैं। **'शैली-विज्ञान'** पर कई स्थानों पर (पृ० ३२०-३२१, ३६२-६३ तथा ४७६-४८०) पर सामग्री है। वाणी-दोष के उपचार पर पृ० ३०९, **कोश-विज्ञान** पर पृ० ४७४–७६ स्थान-नाम-विज्ञान पर पृ० ३२७ तथा ४२८ तथा पारिभाषिक कोश से संबंधित विचार पृ० ४९२-९४ पर दिये गये हैं।

डा० 'सुमन' जहाँ अशुद्धि पर टिप्पणी करते हैं, वहाँ नयी पकड़ अथवा किसी नयी खोज को प्रोत्साहित भी करते हैं। ऐसी स्थिति में 'इस गहरे विवेचन के लिए निश्चय ही आप बधाई के पात्र हैं।' "प्रसंनता है आप गहरे उतर रहे हैं"—जैसे वाक्य, ग्रंथ के अनेक पत्रों में मिलेंगे।

प्राय: प्रश्न-पत्रों में एक से ही प्रश्न पूछे जाते हैं, जिसके फलस्वरूप विद्यार्थी कुछ गिने-चुने प्रश्नों के उत्तर रटने के अभ्यस्त हो जाते हैं। इससे बड़ी हानि हो रही है, न विद्यार्थी ही कुछ नया सीखना-समझना चाहता है और न अध्यापक ही कुछ

नया सोचने के लिए बाध्य होता है। इस ग्रंथ में अनेक ऐसे 'प्रश्न' समाहित हैं, जिनके उत्तर संभवतः किसी पाठ्य पुस्तक में नहीं मिलेंगे, जैसे,

(१) परिनिष्ठित हिंदी में ब्रजभाषा के कौन-कौन से तत्वों का संरचनात्मक योगदान है ? (पृ० ४१४-१६)

(२) हिंदी की प्रकृति को देखते हुए उसके विकास के लिए आप किस भाषा-रूप को उपयुक्त समझते हैं ? (पृ० ४३३-३६)

(३) लोक-जीवन की ब्रजभाषा और साहित्यिक ब्रजभाषा में अंतर स्पष्ट कीजिए। (पृ० ४४६–४५२)

इस प्रकार यह ग्रंथ कुछ नयी दिशा में सोचने के लिए अवसर प्रदान करता है। डा० 'सुमन' ने अपने दिनांक २३-२-८० के पत्र में इस ग्रंथ के मूल भाव को यों प्रकट किया है "मैं तो अपने मित्रों और शिष्यों को एक ग्रंथ रूपी वृक्ष की छाया में सारस्वत-कुशाआसनों पर विराजमान देखना चाहता था। प्रश्नोत्तरों के ब्याज से मेरी लेखनी ने वैसा कर दिया।" वस्तुतः यह ग्रंथ उनकी सारस्वत साधना का ही प्रतिफलन है, जिसके लिए वे बधाई के पात्र हैं। आशा है भविष्य में उनकी लेखनी से अनेक प्रौढ़ ग्रंथ हमको प्राप्त होंगे।

—प्रोफेसर, हिंदी तथा प्रादेशिक भाषाएँ,
लालबहादुरशास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी,
मसूरी (उ० प्र०)

शब्दार्थ-मीमांसक डा० सुमन

—डा० विश्वनाथ मिश्र, डी० लिट्०

डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' जी के, अपने मित्रों, शिष्यों एवं परिचितों आदि को लिखे गये, पत्रों का संकलन इधर कई दिनों से मेरे हाथों में रहा है। डा० 'सुमन' को समय-समय पर अपने इन आत्मीयों से जो जिज्ञासा-भरे पत्र मिले हैं, उन्हीं के उत्तर में ये पत्र लिखे गये हैं। डा० 'सुमन' को हिंदी-जगत् सामान्यतः एक वरिष्ठ भाषा-वैज्ञानिक के रूप में ही जानता रहा है लेकिन उनके इन पत्रों से उनके आध्यात्मिक, धार्मिक, दार्शनिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं भाषिक चिंतन का परिचय भी मिलता है। इन पत्रों को पढ़ते हुए मुझे बार-बार 'रामचरित मानस' का वह प्रसंग याद आता रहा है, जब समुद्र पार करने की समस्या को लेकर अन्य बानर तो मुखर हो उठे हैं लेकिन हनुमान जी चुप ही रहे हैं। जांबवंत ने उस समय, जो हनुमान की अपार शक्ति से भली-भाँति परिचित थे, उन्हें चैतन्य करने के लिए कहा है—"का चुप साध रहा बलवाना" और तब हनुमान जी की असीम शक्ति, अतुल साहस और अपार पराक्रम का परिचय मिला है। डा० सुमन के शिष्यों और मित्रों ने भी जैसे उन्हें यह बताया है कि आप तो केवल भाषा वैज्ञानिक ही नहीं हैं। इन पत्रों से डा० सुमन के वेदों से लेकर नयी कविता तक भारतीय साहित्य के गंभीर अनुशीलन, उनके मौलिक चिंतन और कुशल व्याख्याता का परिचय मिलता है। उनके इन पत्रों से उनके व्यक्तित्व के सभी पक्ष उजागर हो जाते हैं, जो उनके प्रति सहज रूप से हमारे मन में श्रद्धा की भावना जगाते हैं।

डा० सुमन ने भाषा के संबंध में उठने वाले प्रश्नों, जिज्ञासाओं एवं समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करते हुए जो पत्र लिखे हैं, उन्हें मैंने विशेष रूप से पढ़ा है। इन पत्रों में कभी किसी विशिष्ट शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार है, कभी किसी व्याकरणिक संरचना का विवेचन है, कभी तुलनात्मक व्याकरण की गुत्थियाँ सुलझायी गयी हैं; कभी शैली-विज्ञान का विश्लेषण किया है; कभी मुहावरों पर विचार है; और कभी शब्दार्थ-मीमांसा है। यह सारा अध्ययन-अनुशीलन वर्ण वासंती सुषमा' सावन की हरीतिमा, मलयानिल के शीतल और मंद झकोरों के बीच हमें रमाता है। सुमन अपनी सहज शोभा, अपनी मधुर सुगंध और अपने मनोरम प्रभाव से हमें मुग्ध कर रहा है।

डा० सुमन से कुछ विशिष्ट शब्दों की व्युत्पत्ति के संबंध में विशेष रूप से

पूछा गया है। उनका कहना है कि शब्द की व्युत्पत्ति के सहारे उसका अर्थ जानने पर शब्द की आत्मा के दर्शन हो जाते हैं। अपने इस विचार को चरितार्थ करने के लिए उन्होंने पहले तो व्याकरणिक विधि से शब्द की व्युत्पत्ति की है फिर भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से ध्वनि-परिवर्तन आदि पर विचार किया है फिर वेद-वेदांत, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, मनुस्मृति, प्राकृत-अपभ्रंश-साहित्य, सूरसागर, रामचरित मानस आदि के अवतरणों के सहारे अर्थ-मीमांसा कार समय मार्ग अपनाया है। यह विवेचन-पद्धति जहाँ हमें उनकी विद्वत्ता से अभिभूत करती है, वहाँ उनके भावनाशील व्यक्तित्व की सरसता से भी हमें परिचित कराती है।

डा० सुमन ने शब्द के व्युत्पत्तिपरक अर्थ पर विशेष बल दिया है लेकिन इसका यह तात्पर्य नहीं समझना चाहिए कि उन्होंने व्युत्पत्तिपरक अर्थ को ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना है। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि शब्द काल के प्रवाह में अर्थ बदलता रहता है। कभी-कभी तो एक ही शब्द कालांतर में दो रूप ग्रहण कर लेता है और दोनों रूपों में उसके अर्थ भिन-भिन होते हैं। कभी-कभी तो कोई शब्द अपने दो रूपों में एक-दूसरे के विपरीत अर्थ देने लगते हैं। इस संदर्भ में उन्होंने 'भद्र' शब्द का उदाहरण दिया है, जिसके काल-प्रवाह में बने दो रूप-'भला' और 'भद्द'-एक-दूसरे के विपरीत अर्थ देते हैं। उनका यह भी कहना है कि हर शब्द अपनी अलग अर्थ-भंगिमा रखता है। इस अलग अर्थ-भंगिमा को लेकर भी कोई शब्द, जिन अन्य शब्दों के साथ आता है, जिस संदर्भ में प्रयुक्त होता है, जिस कंठ-स्वर के साथ बोला जाता है, उसके कारण भी अपना अर्थ बदल देता है। इस शब्द-अर्थ-मीमांसा से डा० सुमन इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि शब्द ही काव्य है। पंडितराज जगंनाथ के कथन "रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्" को उन्होंने प्रमाण के रूप में अवतरित किया है।

शब्दार्थ—मीमांसा के साथ डा० सुमन ने रूप-रचना और वाक्य-विन्यास की समस्याओं का भी समाधान किया है। हम जैसे अपने प्रति-दिन के जीवन में अलग-अलग अवसरों पर अलग-अलग वेष-भूषा धारण करते हैं, शब्द भी उसी प्रकार अलग-अलग प्रसंगों में अलग-अलग रूप ग्रहण करते हैं। हर भाषा की रूप-रचना की अपनी अलग प्रणालियाँ होती हैं और इसी प्रकार वाक्य में शब्दों के क्रम-विधान की भी हर भाषा की अपनी अलग-अलग पद्धति होती है। लेकिन समर्थ लेखक विशिष्ट प्रभाव उत्पंन करने के लिए इस क्रम-विधान को बदलते रहते हैं। अंग्रेजी के प्रसिद्ध आलोचक हरवर्ट रोड ने अंग्रेजी की गद्य-शैली पर विचार करते हुए स्वीकृत व्याकरणिक क्रम को भंग करने के अनेक सशक्त उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। सुमन जी ने डा० रामप्रकाश कर्मयोगी को लिखे गये पत्र में इस विषय का अच्छा विवेचन किया है।

अभिव्यंजना के इन सामान्य प्रसाधनों में मुहावरों और कहावतों की चर्चा की जाती है। कोई शब्दावली जब अपने सामान्य अर्थ को छोड़कर एक अन्य अर्थ प्रकट करने का अभ्यास कर लेती है तो उसे मुहावरा की संज्ञा दी जाती है। डा० सुमन ने

डा० वासुदेव शरण अग्रवाल का हवाला देते हुए अनेक स्थलों पर लिखा है कि मुहावरे के प्रयोग से भाषा में क्षमता आ जाती है। श्री रोशनलाल सुरीरवाला को लिखे गये पत्र में ब्रजभाषा की एक कहावत पर विचार किया गया है—"आँधी आयी मेहु आयौ बड़ी बहू को जेठु आयौ।" प्रश्न उठता है कि बड़ी बहू का कोई जेठ तो होता नहीं, सब देवर ही होते हैं फिर जेठ के आने की बात कैसे कर दी गयी। समाधान है "आंधी के साथ जब मेह आया, तब······बड़ी बहू बड़ी परेशानी में पड गयी। आँधी के कारण उसकी आँखों में रेत के कण भरने लगे। उनसे बचाव करने के लिए बड़ी बहू ने घूंघट काढ़ लिया। बड़ी बहू कभी घूंघट तो काढ़ती न थी। ऐसी स्थिति में लोकोक्ति बन गयी कि आंधी और मेह क्या आया, यह तो बड़ी बहू का जेठ ही बन गया कि बड़ी बहू को भी घूंघट काढ़ना पड़ा।" लोकोक्तियों के पीछे छिपे मनोविज्ञान का यह बड़ा सुंदर उदाहरण है।

डा० सुमन ने डा० प्रेमवल्लम शर्मा, डा० कमल कुमारी गुप्ता आदि को लिखे गये पत्रों में भाषा-विज्ञान के अध्ययन की नयी दिशा शैली-विज्ञान की विवेचना की है। शैली-विज्ञान को उन्होंने साहित्य और भाषा का मिला-जुला व्याकरण कहा है। डा० गुप्ता को लिखे गये पत्र में उन्होंने रूप शैली-विज्ञान एवं वाक्य शैली-विज्ञान के अध्ययन की दिशाओं का निर्देश दिया है।

डा० सुमन के पत्रों में अनेक स्थलों पर उनके व्यक्तित्व का प्रेरणात्मक पक्ष भी उजागर हुआ है। श्री राधेबिहारी लाल सक्सेना को उन्होंने प्रेरणा दी है कि वे 'सूरसागर' के अनेक पदों में आये मिठाइयों के नाम पर अनुसंधानात्मक लेख लिखें। श्री रामलखन शर्मा को उन्होने परामर्श दिया है कि वे सूरदास और नंददास आदि को लेकर जब एकांकी लिखें तो खड़ी बोली नहीं वरन् ब्रजभाषा का प्रयोग करें। उनके सभी पत्र हमें सारस्वत साधना के पथ पर निष्ठा के साथ अग्रसर होने के लिए संप्रेरित करते हैं। डा० सुमन ने अपने पत्रों में अनेक स्थलों पर अनेक महामहिम व्यक्तियों का अभिवंदन भी किया है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का स्मरण तो वे बराबर भावविभोर होकर ही करते हैं। पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी, आचार्य हजारी-प्रसाद द्विवेदी, महापंडित राहुल सांकृत्यायन, आचार्य पं० किशोरीदास वाजपेयी, डा० नगेंद्र, डा० विद्यानिवास मिश्र आदि का उल्लेख भी वे श्रद्धा से अविभूत होकर करते हैं। उनके पत्रों में यह श्रद्धा-सुमन स्थान-स्थान पर मिलते हैं और कहीं-कहीं तो उन्होने भावविभोर होकर अपने मन के भाव-सुमनों को माला का रूप ही प्रदान कर दिया है।

डा० सुमन के इन पत्रों में कुछ स्थल मुझे खटके भी हैं। मेरा आग्रह है कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के प्रभाव से अपने को मुक्त करके 'सिधारना' शब्द की व्युत्पत्ति पर वे स्वतंत्र रूप से पुनः विचार करें। हुलसी, तुलसी की माता का नाम था, यह भी वे सिद्ध नहीं कर पाये हैं। श्रीमती रजिया सुल्ताना को लिखे गये पत्र में उन्होंने पहले गढ़वाली को तिब्बत-चीनी परिवार का बताया है और फिर ग्यारह

पंक्तियों के बाद ही गढ़वाली को उन्होंने हिंदी की सत्रह बोलियों के अंतर्गत गिनाया है और उसे भारोपीय परिवार का कहा है। इसी प्रकार का एक स्खलन तुलसीदास जी की भाषा पर विचार करते हुए 'परेउ' क्रिया पद के विवेचन में भी है। कुंभकर्ण ने जब उठकर हनुमान को मारा है तो वे तुरंत घूमकर धरती पर गिरे हैं। तुलसीदास जी ने यही कहा है। लेकिन सुमन जी ने फिर भी कहा है कि अतुलित बलधाम हनुमान देर से धीरे-धीरे गिरे हैं। विश्वास है अगले संस्करण में आवश्यक संशोधन हो जाएँगे।

डा० सुमन का अपार पांडित्य वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, प्राकृत-अपभ्रंश के साहित्यों से लेकर आज की आधुनिक भारतीय भाषाओं की रचनाओं तक जाता है। यह गंभीर अनुशीलन उनके पत्रों में भली प्रकार प्रतिच्छायित हुआ है। किंतु यह विशाल पांडित्य, शास्त्र के सूखे मार्ग पर नहीं वरन् साहित्य की विशाल वनस्थली के रंग-बिरंगे फूलों, उनकी मधुर सुगंध के मनोरम मार्गों से चला है। उनकी प्रखर बुद्धि उनके इन पत्रों में विभिन भावनाओं के मनोरम परिधानों में हमारे सामने आयी है। इसीलिए इन पत्रों को पढ़ते हुए बराबर यह लगा है कि हम बासंती वैभव के बीच रंग-बिरंगे फूलों की सुगंध लेते हुए मलयानिल के मनोरम झोंकों के बीच विचर रहे हैं।

—प्राचार्य,
सनातनधर्म महाविद्यालय,
मुजफ्फरनगर (उ० प्र०)

डा० 'सुमन' की सांस्कृतिक दृष्टि

—डा० कृष्णचंद्र गुप्त

डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' के द्वारा शिष्यों और मित्रों की समस्याओं और जिज्ञासाओं के समाधान और प्रश्नों के उत्तर पत्र शैली में दिये गये हैं । 'संस्कृति, साहित्य और भाषा' में ये संकलित हैं । धर्म, दर्शन, पौराणिक जिज्ञासाएँ, प्राचीन और नवीन के संक्रमण से उत्पंन समस्याए', मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, पारिवारिक, व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान अधिकांशत: प्राचीन तथा मध्यकालीन धर्म दर्शन के आधार पर दिये गये हैं । लेकिन वर्तमान स्थिति से उत्पंन विचारों को भी अनदेखा नहीं किया गया है ।

पूछे गये प्रश्नों ने डा० 'सुमन' के मानसिक धरातल के विस्तार को उद्-घाटित किया है ।, जिसका एक छोर वैदिक साहित्य में है तो दूसरा आधुनिक कवियों में, जिसका एक सिरा आस्थावादी दर्शन में है तो दूसरा अधुनातन वैज्ञानिक निष्कर्षों तक फैला हुआ है जिसका एक किनारा भारतीय संस्कृति के प्राचीन और परंपरापूर्ण रूप को छूता है, तो दूसरा शुद्ध इहलोकवादी, तार्किक, बौद्धिक और आधुनिक बोध से जुड़ा हुआ है । वैदिक संहिताए', उपनिषद, पददर्शन, रामायण, महाभारत, मनुस्मृति, जैन दर्शन, फ्रायड एडलर, युग की धारणाए' लोक और शास्त्र का गंभीर और सूक्ष्म अध्ययन, युगानुकूल धारणा, प्रगतिशील दृष्टि सभी कुछ उनके मानसिक क्षितिज पर लहराती रहती हैं ।

संस्कृति परक जिज्ञासाओं के समाधान में उनके व्यक्तित्व की ईमानदारी और स्पष्टवादिता इस रूप में उभरी है कि शास्त्रीय प्रमाणों में वे कुछ अपनी ओर से जोड़ने का दंभ नहीं करते । (उक्त ग्रंथ पृष्ठ ६) विनम्रता, जो वास्तविक पांडित्य का एक लक्षण है, उनमें इस सीमा तक है कि वे आतमा जैसे तत्व के स्वरूप से व्यक्तिगत रूप से निजी अनुभूति और मन के स्तर पर अवगत नहीं है (पृष्ठ १६) और वे इसे निस्संकोच स्वीकारते हैं । आजकल के भगवान और स्वामियों की तरह सर्वज्ञता का दम नहीं भरते । यद्यपि जैन दर्शन से संबद्ध तथा अन्य दर्शनों से तुलना करते हुए उन्होंने मन, आतमा, प्रकृति आदि का स्वरूप स्पष्ट किया है । तो भी उन्हें यह कहने में संकोच नहीं है कि जैन दर्शन की प्रथम कक्षा का भी विद्यार्थी मैं नहीं हूँ (पृष्ठ ३८) ।

उनके गूढ़ रहस्यमय विषयों को स्पष्ट करते हुए उनके व्यक्तित्व की जीवंतता यत्र तत्र सहज ही प्रकट होती रहती है । सिद्ध तीर्थंकर छुल्लक, ऐलक आदि का

स्वरूप निर्धारण करते हुए वे उपाध्याय को आध्यात्मिक ज्ञान की 'यूनिवर्सिटी का प्रोफेसर' बताते हैं। विनम्रता के अतिरिक्त इतना नैतिक साहस उनमें है कि अपनी मूर्खता और अहंमयता का वे प्रायश्चित भाव से बखान करते हैं, लेकिन न दैयं, न पलायनं के असिव्रत का पालन करते हुए विश्वविद्यालय की सेवा के लगभग दो दशक उन्होंने पूरे किये, यद्यपि व्यक्ति-सेवा न करने के कारण उन्होंने बहुत कुछ खोया भी, लेकिन जिन महानुभावों की कृपा से उन्हें मिला, मुक्तकंठ से उनका गुणगान करते वे थकते नहीं। पं० जीवनदत्त ब्रह्मचारी, पं० गोकुलचंद्र शर्मा, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, प्राचार्य श्री गणेशीलाल माहेश्वरी, प्रधान मंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री, डा० नगेंद्र, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा डा० विश्वनाथ प्रसाद द्वारा की गयी सहायताओं का उल्लेख अनेक बार करते हैं। सखीट (एटा) के रईस राजा इंद्र नारायण की उदारता की स्वीकृति भी ऐसी ही है, लेकिन सुमन जी की कृतज्ञता का वास्तविक प्रमाण तो वह रिक्शा वाला है, जिसके रिक्शे में बैठकर वे रात के ४ बजे स्टेशन जाते हैं और प्रसंगवशात् उन्हें जब यह मालूम पड़ता है कि ये तो वही कामताप्रसाद हैं जिससे ये गणित के प्रश्न हल करवाया करते थे बचपन में, फिर जो स्नेह मिलन का दृश्य उपस्थित हुआ-उसने भरत-केवट, राम-शबरी, वशिष्ठ-केवट, कृष्ण-सुदामा मिलन की याद पाठकों को दिला दी।

शुद्ध तार्किक दृष्टि एवं बौद्धिक प्रखरता से जो व्यक्ति अनेक उलझे हुए और ऊपर से एक से ही दीख पड़ने वाले विषयों को सुलझाने में समर्थ है, वही पूर्व परिचित के प्रति करुणा से उद्वेलित होकर विगलित कंठ हो जाता है, अश्रुपूरित हो जाता है। व्यक्तित्व की यह प्रवणशीलता केवल व्यक्तिगत संदर्भों में ही नहीं, अपितु साहित्यिक संदर्भों में भी उतनी ही सहजता से व्यक्त हो जाती है। सीता निर्वासन प्रसंग में लक्ष्मण से कहे गये सीता के कथन को बाल्मीकि रामायण से उद्धृत करते हुए उनका कंठावरोध और अविरल अश्रुधारा कपोलों से होकर ठोड़ी तक बहते हुए, मैंने स्वयं प्राचार्य डा० विश्वनाथ मिश्र (मुजफ्फरनगर) के यहाँ देखी है। मन को आकर्षक आलंबन चाहिए (पृष्ठ ११८) कहकर वे जिन मनोवैज्ञानिक स्तर पर नैतिक उत्थान के लिए समाधान प्रस्तुत करते हैं, वह केवल बौद्धिक समाधान नहीं है। मुजफ्फरनगर के 'रामदरबार' में पं० शिवकुमार शर्मा द्वारा प्रस्तुत 'मानस' की चौपाइयों की भाव पूर्ण बिंब-प्रधान व्याख्या में 'सराबोर' होते हुए भी उनको मैंने देखा है। तो जिस तत्व को वे बौद्धिक वर्चस्व से समाधान के रूप में प्रस्तुत करते हैं, उसे वे हृदय के धरातल पर अनुभव भी करते हैं। उनके संपर्क में रहने वाला कोई भी उनका आत्मीय इसकी गवाही दे सकता है। हृदय की यह सरसता, जिसे वे 'जीवन का अमृत' मानते है (पृष्ठ १६) कहीं शुष्क बौद्धिक वितंडावाद के जाल में फँसकर दम न तोड़ दे, इस आशंका से वे आर्य समाज से किनारा कर लेते है, वैसे उन जैसे व्यक्ति को इतना सशंक नहीं होना चाहिए था।

तो ऐसे व्यक्तित्व के धनी डा० सुमन का विस्तृत ज्ञान समन्वयवादी होकर

पश्चिम के विज्ञान और भारत के अध्यात्म में सामंजस्य खोजता है वह परमात्म तत्व क्वांटा है अर्थात् वह चलता है और नहीं भी चलता है । ईसावास्योपनिषद् के तदेजति, तन्नैजति की तरह (पृष्ठ १३८) तथा साइंस की भाषा का प्रोटोन अध्यात्म की भाषा में ईश्वर कहा गया है—ईश्वर+योगमाया=प्रोटोन+न्यूट्रोन; सर्वभूत= इलैक्ट्रोन (पृष्ठ १५१) । भारतीय अध्यात्म और पाश्चात्य विज्ञान में से किसी एक के प्रति आग्रही और दूसरे के प्रति दुराग्रही होना सहज है लेकिन दोनों को समझकर उनका संबंध स्थिर करना शुद्ध सारस्वत साधना का ही फल है । दुराग्रह रहित होकर शुद्ध ज्ञान की साधना आज कितनी कठिन होती जा रही है, कहने की आवश्यकता नहीं है । सुमन जी की यह धारणा पूर्व-पश्चिम को ही नहीं, अध्यात्म-वादी और वैज्ञानिक, प्राचीन और नवीन को अपने दुराग्रह छोड़कर, वस्तुस्थिति को समझकर ज्ञान की अनंतता, पवित्रता, और अपरिहार्यता को स्वीकार करने की प्रेरणा देती है ।

यद्यपि कहीं-कहीं सुमन जी आधुनिक मानसिकता को अनदेखा कर यह कह जाते हैं काम बीज है, प्रेम वृक्ष है और भक्ति फल है (पृष्ठ ३१) । केवल सदाचारी, संयमी, सात्विक, भावप्रवण और आस्तिक लोगों के ही संदर्भ में यह ठीक है । फिर भी सामाजिक, पारिवारिक तथा वैचारिक समस्याओं का समाधान वे पूर्णतः आज के समाज के ह्रास को दृष्टि में रखकर ही देते हैं । प्रगतिशीलता के नाम पर तथाकथित आधुनिकता के दुराचारों को वे दृढ़ता से नकारते हैं । येनकेन-प्रकारेण लूट-खसोट कर धर्म का आडंबर रचने वाले पाखंडियों और दुराचारियों को वे नंगा करते हैं (पृष्ठ ६१, ८८, १५२) । धर्म और भक्ति के नाम पर चलने वाले छल पर वे तीव्र प्रहार करते हैं । (पृष्ठ ६६, ८८, १५२) और गीता के साक्ष्य पर तथा अपने विवेक के आधार पर कर्त्तव्य, सदाचार और सच्चरित्रता को ही धर्म के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं । (पृष्ठ ७२, १३५, १५२) सत्य, सेवा, दया, प्रेमादि को ही मानव धर्म के मूल तत्व के रूप में स्वीकार करते हैं (पृष्ठ ८८) । उनकी यह स्वी-कृति 'जिसने मन, वचन और कर्म से किसी प्राणी का बुरा नहीं किया वह ब्रह्म के निकट है (पृ० २७) प्राचीन आध्यात्मिक साहित्य से आधुनिक दृष्टि को संतुष्ट करने वाले उद्धरण खोजकर प्राचीन रूढ़िवादी अन्धविश्वास-ग्रस्त, जीर्ण-शीर्ण कर्मकांडों के जाल से मुक्त करना है । यह भारतीय संस्कृति की सनातनता और पुरातनता का बदली हुई परिस्थितियों में वह अंश खोजना है जो आज के बौद्धिक आधुनिकतावादी नास्तिक व्यक्ति को भी मान्य हो । प्राचीनता को ही प्रमाण मानने वाले भारतीय संस्कृति के भक्तों के लिये ऐसे उद्धरण बड़े काम के सिद्ध होते हैं । ऐसी ही एक जिज्ञासा के समाधान के रूप में सुमन जी माँस-भक्षण को प्राचीन भारतीय संस्कृति के ग्रंथों में नहीं नकारते, लेकिन आज के मनुष्यों का ही खून चूसने वाले दुराचारियों से पशु-मांस खाने वालों को वे अच्छा मानते हैं । (पृष्ठ २९)

कितना ही बौद्धिक क्षितिज विस्तृत हो, दृष्टि कितनी ही उदार हो, फिर भी कुछ संस्कार इतने बद्धमूल हो जाते हैं कि बहुत कुछ उनकी पकड़ से बाहर रह जाता है। सुमन जी में यद्यपि कोई ग्रंथि, दुराग्रह या संकीर्णता तो नहीं है फिर भी प्राचीन अध्यात्म, धर्म, दर्शन, साहित्य और जीवन-पद्धति के प्रति उनके मन में दृढ़ आस्था है उनकी जीवन दृष्टि के विकास में उक्त तत्वों के प्रति सहज विश्वास है। कहीं-कहीं इसके कारण आधुनिक जीवन-प्रवाह के प्रति, जो विभिन सभ्यताओं और संस्कृतियों के मेल या टकराव से प्राचीन मर्यादाओं को तोड़ रहा है, वे सहृदय नहीं रह पाते। आज आवागमन के अत्यंत विकसित साधनों के कारण कुछ भी अलग-थलग या विशुद्ध नहीं रह गया है, रह भी नहीं सकता। जब दो जीवंत जातियाँ मिलती हैं या टकराती हैं तब चाहे-अनचाहे अच्छा-बुरा प्रभाव डालती हैं और ग्रहण करती है। ऐसे वातावरण में प्रणाम के स्थान पर गुडमार्निंग सुनकर और कोट पेंट पहनकर हवन पूजा करते देखकर सुमन जी का दुःखी होना (पृष्ठ ७९) कुछ जँचता नहीं। इसी प्रकार भारत से बाहर की संस्कृति को घोर विलास से भरी हुई मानना भी न्यायोचित नहीं है। विलास क्या अपने भारत के प्राचीन-मध्यकाल में कम रहा है ? साहित्य के अनेक ग्रंथ इसकी गवाही दे सकते हैं। यह मानना कि संस्कृति के कारण हम आचारवान और आस्थावान थे, (पृष्ठ ८४) ठीक नहीं लगता। कितने लोग संस्कृत जानते थे या आज जो संस्कृत जानते हैं, वे कितने आचारवान या आस्थावान हैं, इसके लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। आचरण की शुद्धि और आस्था जब बड़े लोगों के व्यवहार में नहीं है तब सामान्य जनता में कहाँ से आयेगी ? विश्व की वर्तमान जीवन-पद्धति को देखते हुए किसी भी बुद्धि विवेक-शील व्यक्ति द्वारा यह मानना आज संभव नहीं है "बुरे क्रियमाण करते हुए भी यदि कोई सुख भोग रहा है तो उसे संचित सत्कर्म का फल मानना चाहिए।" (पृष्ठ ३०)

डा० सुमन द्वारा प्रस्तुत कुछ और मान्यताओं को भी सहजता से स्वीकार करना संभव नहीं है। उदाहरणार्थ—ब्रह्मा की पूजा न होने का कारण, सुमन जी के विचारानुसार उनका जन्म का देवता होना है। (पृष्ठ १२)। लेकिन योनिस्थ शिवलिंग भी तो सृष्टि की प्रक्रिया का प्रतीक है, उसकी पूजा तो खूब होती है। ब्रह्मा के अवतार उतने लोकप्रिय नहीं हुए जितने विष्णु के। अतः ललित कलाओं के माध्यम से ब्रह्मा के व्यक्तित्व का प्रसार जनसामान्य में नहीं हुआ। फिर ब्रह्मा—सरस्वती संबंध भी लोक-नीति की दृष्टि से उचित नहीं है। ये या अन्य कुछ कारण हो सकते हैं। इसी प्रकार 'विष्णु लक्ष्मी प्रेमी होने के नाते दूसरों को क्या देंगे (पृ० ११) यह भी तर्क संगत नहीं है। लक्ष्मी प्रेमी ही तो हैं विष्णु, लक्ष्मी लोलुप तो नहीं हैं। इसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, महेश को शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियाँ मानने (पृ० १६) का भी कोई आधार लेखक ने नहीं दिया है। सामान्यतः प्रतिमाओं और चित्रों में दुर्गा की अनेक भुजाओं में तलवार (पृ० १९)

ही नहीं, अपितु अनेक अस्त्र-शस्त्र हैं तथा योगी को बाहर से होश में और अन्दर से बेहोश मानना (पृ० २२) भी तर्क संगत नहीं है तथा योगी को पौरुषमय तथा कठोर और भक्त को स्त्री स्वभावमय तथा कोमल ही मानना (पृ० २२) अत्यधिक सरलीकरण है। योग और भक्ति के इतने अधिक सोपान और कोटियाँ इस धारणा पर प्रश्न चिह्न लगाती हैं तथा अंतर्मुखी वृत्ति के मनुष्य के लिए ज्ञान को और बहिर्मुखी वृत्ति के मनुष्य के लिए कर्म और भक्ति मार्ग को ठीक मानना (पृ० १८) भी एकांगी है। इसी प्रकार यह मानना कि संतों के शरीरों से निकलने वाली तरंग भी प्रभावित करती है (पृ० ६०) मात्र प्राचीन धारणाओं में आस्था ही है जो आज के युग में शायद ही कहीं सत्य सिद्ध होती हो। यह मानसिक प्रभाव हो सकता है किसी विरले पर, भौतिक रूप से इसे सिद्ध कर पाना कठिन ही है।

सुमन जी की यह मनोवैज्ञानिक धारणा भी खंडश: ही सत्य है जाग्रतावस्था में तो हम प्राय: वही कहते हैं और करते हैं जो हममें नहीं होता। स्वप्न की स्थिति हमें सत्य रूप में चित्रित करती है। (पृ० १२०)। जाग्रतावस्था में चेतन मन पर बुद्धि विवेक का अंकुश रहता है। तो इसी आधार पर उसे अस्वीकार कैसे किया जा सकता है? यह सही है कि अर्ध चेतन-अचेतन मन की कोठरियों में निरंकुश इच्छाएँ कुलबुलाती रहती हैं, जो स्वप्न में आती हैं, लेकिन केवल वे ही तो सब कुछ नहीं हैं। संयम, शुद्धिकरण और विवेक में विश्वास रखने वाले डा० सुमन की दृष्टि से यह तथ्य कैसे ओझल हो गया?

यद्यपि संस्कृति खंड में अधिकांशत: धर्म, दर्शन, अध्यात्म, नैतिकता और पौराणिकता से संबद्ध जिज्ञासाओं का समाधान ही है फिर भी आधुनिक जगत के व्यक्तियों की जिज्ञासाएं भी हैं। ऐसी ही एक जिज्ञासा के समाधान में आरक्षण का आधार जातपात को न मानकर आर्थिक आधार को मानने की वकालत की गयी है (पृ० ११४)।

लेकिन इन वैचारिक सीमाओं और असहमतियों के बावजूद लेखक का सांस्कृतिक दृष्टिकोण अधिकांशत: सहिष्णु, प्राचीन-गौरव-गायक, नैतिकतावादी, सामंजस्यवादी और आधुनिकता के कतिपय प्राण तत्वों को मुक्त कंठ से स्वीकार करने वाला है। भारतीय संस्कृति के अंतर्गत सुमन जी वैदिक संस्कृति, पौराणिक संस्कृति, जैन बौद्ध संस्कृति,, संत संस्कृति और इस्लाम-ईसाइयत संस्कृति को समाविष्ट मानते हुए (भूमिका 'ग' पृष्ठ) अपने ऐतिहासिक दृष्टिकोण के सहज विकासशील होने का प्रमाण देते हैं। पुरातन पंथियों की तरह वे भारतीय संस्कृति को शुद्ध प्राचीन और वेद पुराणों तक ही सीमित नहीं मानते। कदली दंड के समान भारतीय संस्कृति को मानते हुए उसमें वैदिक, पौराणिक, आर्येतर तत्वों का समन्वय स्वीकार करते हुए प्रमाण रूप में अनेक आर्यों और आर्येतर विवाहों का उल्लेख करते हैं (पृ० ९८)। यहाँ सुमन जी प्राचीन दृष्टि संपन्न आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की इस धारणा से भी सहमत हैं कि भारतीय संस्कृति 'डेल्टा' के समान है जिसमें बाहर से आने वाली

संस्कृतियों के तत्व सहज विद्यमान है और यहीं पर वे आधुनिक दृष्टि संपंन कुबेरनाथ राय से भी सहमत हैं कि भारतीय संस्कृति चतुर्मुखी ब्रह्मा है जिसके आर्य, द्रविड़, किरात, निषाद मुख हैं (निषाद बांसुरी) इन दोनों के बीच दिनकर के द्वारा प्रतिपादित भारतीय संस्कृति के चार अध्याय आर्य, द्रविड़, मुसलमान और ईसाई तत्वों को उन्होंने स्वीकारा है जो आज के सांस्कृतिक चिंतन के समग्र संतुलित स्वस्थ रूप के परिचायक हैं।

इसी भारतीय सांस्कृतिक अस्मिता को चमत्कारों, रूढ़िरीतियों और कर्मकांडों, पौराणिकता के जंजाल से मुक्त करते हुए ईश्वर, आत्मा, कर्मफल भोग और जन्मांतरवाद में विश्वास के रूप में उसे सुमन जी ने परिभाषित किया है (पृ० ९८) तथा भारतीय संस्कृति अधिकांशतः हिंदू संस्कृति ही है क्योंकि उसके भी ये तत्व लेखक के द्वारा माने गये हैं (पृष्ठ ७५) और फिर देशकाल की सीमा से ऊपर उठकर वह संस्कृति को धर्माचार और लोकाचार के समन्वित रूप से देखते हुए सभ्यता से, जोकि खान-पान, वस्त्राभूषण और रहन-सहन का समन्वित रूप है (पृ० ७५)। यद्यपि सभ्यता और संस्कृति एकदम अलग नहीं किये जा सकते। भले ही सभ्यता से अधिक विस्तृत, सूक्ष्म, स्थायी स्वरूप संस्कृति का हो।

संस्कृति और सभ्यता की आधुनिकता के नाम पर जो भोग विलास, आपा-धापी, उच्छृंखलता, लूटखसोट और प्रदर्शन, नकली भक्ति और छद्म अध्यात्म की बाढ़ सारी दुनियाँ को बहाए ले जा रही है। उनके अनौचित्य अनैतिकता और भयावहता को तीक्ष्ण स्वर से नकारते हुए डा० सुमन एक दृढ़ विचारक के रूप में प्रकट होते हैं। येनकेन प्रकारेण कमाया धन, सिनेमा का दुराचारी रूप, विलास वेशिनी काल गर्ल्स, पति की पदोन्नति के लिए अफसरों की शैया संगिनी बनने वाली पत्नियों की अल्ट्रा मार्डनिटी, फार्वर्डनैस और प्रैक्टिकलव्यू ऑफ लाइफ रखने वाली दुराचारी और छद्म प्रगतिशीलता को बड़ी निर्ममता से उघाड़ा है।

भारतीय संस्कृति के प्राचीन गौरव का गान, मध्यकालीन रूप को रूढ़ि-रीतियों के जाल से मुक्त करके उसके उज्ज्वल और जीवंत रूप को प्रस्तुत करने की विवेकपूर्ण दृष्टि और आधुनिकता के भँवर में फँसे आधुनिक रूप को झाड़-पोंछकर वर्तमान आवश्यकताओं के अनुरूप प्रतिष्ठित करने वाले के रूप में डा० सुमन दृष्टि-गोचर होते हैं।

—हिंदी विभाग
सनातनधर्म महाविद्यालय
मुजफ्फरनगर (उ० प्र०)

डा० 'सुमन' के साहित्य विषयक पत्र

—डा० श्यामकिशोर शर्मा

प्रस्तुत लेख का आधार 'संस्कृति, साहित्य और भाषा' ग्रंथ के साहित्य खंड के पत्रों का अवलोकन कर डा० सुमन के पत्र-लेखन प्रक्रिया का वर्णन करना है। ग्रंथ के साहित्य खंड में कोई ऐसा साहित्यिक विषय नहीं, जिस पर डा० सुमन ने स्पष्ट भाषा-शैली में सम्यक् विवेचन-विश्लेषण प्रस्तुत न किया हो। यह उनकी रचनात्मक पैनी परख है जो साहित्य की सभी विधाओं के अंतस् तक गहरी पैठ रखती है। साहित्य की अद्यतन विधाओं में डा० सुमन जी की पकड़ बड़ी तेज है। धर्म-दर्शन, विज्ञान और इतिहास तथा भाव और भाषा का कोई भी तो ऐसा पहलू नहीं जिसे सुमन जी ने न परखा-निरखा हो। साहित्य-खंड में पुरानी-नयी सभी विधाओं के आज तक के स्वरूप को आत्मविश्वास के साथ नपी-तुली भाषा-शैली में अभिव्यक्ति दी है।

डा० 'सुमन' भाषाविद् के साथ-साथ धर्म-दर्शन, इतिहास, लोक-साहित्य तथा काव्यालोचन के धनी माने जाते हैं, किंतु पत्रों ने उनके इस ज्ञान-परिधि को और अधिक विस्तार दिया है और वे गद्य-पद्य की अधुनातन साहित्यिक विधाओं में भी पारंगत सिद्ध हुए हैं। उपन्यास (पृ० १७८), रेखाचित्र-संस्मरण (पृ० २०२, २४३), समीक्षा-नयी समीक्षा (पृ० १८२), निबंध (पृ० १९८), कहानी-उपन्यास (पृ० २४४), रिपोर्ताज, डायरी (पृ० २४५), इतिहास (पृ० २५२', लोक-साहित्य (पृ० १६२, १९९), सौंदर्य शास्त्र (पृ० २३४), काव्यालोचन (पृ० २१०), व्याकरण (पृ० २१९), नयी कविता, गेय कविता, अकविता, अगली कविता, मिनी कविता, शून्य कविता तथा श्मशानी कविता (पृ० २५४) और गजल (पृ० २३०) आदि अनेकानेक साहित्यिक विधाओं पर प्रस्तुत ग्रंथ में प्रश्नों के उत्तर हैं। ये केवल ज्वलंत प्रश्नों के उत्तर ही नहीं हैं अपितु साहित्य में 'दो टूक' बात कहने का अनूठा व्यक्तित्व भी सिद्ध करते हैं। इन्हीं पत्रों में पौराणिक-ऐतिहासिक पात्रों (पृ० २२३, २२४, २२६), अंतः-कथाओं आदि की व्युत्पत्ति (पृ० १९६–९७, २२४–२५, २४६–४७ आदि) का भी सम्यक् विवेचन-विश्लेषण किया है। इसके अतिरिक्त रामचरितमानस (पृ० २०५, १६, २४, २६, ३६, ४१ आदि), सूरसागर (पृ० २४९) तथा बिंब,

प्रतीक, उपमान (पृ० २१४), अनुसंधान (पृ० २२०, २३२) आदि विषयों और विधाओं पर उत्तर विद्यमान हैं।

डा० सुमन के 'संस्कृति, साहित्य और भाषा' ग्रंथ में पत्रों की विविधता उनके ज्ञान-विज्ञान के साथ उनकी साहित्यिक गति का लेखा-जोखा तथा उनके साफ खुले व्यक्तित्व को प्रस्तुत करती है। चाहे वे पत्र डा० प्रभाकर माचवे (पृ० १५८); क्षेमचंद्र सुमन (पृ० १५६) को और चाहे संसद्-सदस्य डा० जवाबसिंह चौहान 'कंज' (पृ० २८७) को लिखे हों चाहे साधारण पाठक या जिज्ञासु को। सभी में वर्णन की स्पष्टता है। 'सुमन' जी अपने से छोटों को स्नेह के साथ, मित्रों को मित्र-व्यवहार के साथ और बड़ों को आदर-सत्कार के साथ उनकी अच्छाई-बुराई भी स्पष्ट लिखने में नहीं चूकते।

डा० प्रभाकर माचवे को एक साहित्यिक शिकायत (पृ० १५८) के रूप में लिखा पत्र उनके निर्भीक एवं बेलाग व्यक्तित्व को उजागर करता है। माचवे जी द्वारा लिखित पुस्तक 'समीक्षा की समीक्षा' में डा० सुमन ने अपने लेख 'साधारणीकरण क्या और किसका', जो उनकी बिना अनुमति और उनके नाम को उड़ाकर ज्यों का त्यों उतार दिया गया है, के विषय में कितना स्पष्ट लिखा है (पृ० १५८)।

डा० सुमन ने श्री क्षेमेंद्र सुमन को प्रकाशन-व्यवस्था और प्रकाशकों की चाल-बाजी के प्रति सतर्क रहने के लिए लिखा—'प्रकाशक ईमानदार-सा टटोलिए। मैं काफी लुटा हूँ। (पृ० (१५६) डा० 'सुमन' ने मुझे भी प्रकाशकीय झमेले में फँसते देख सावधान रहने की सलाह दी। डा० नवाबसिंह चौहान 'कंज' को राजनीतिक और साहित्य धर्म-कर्म-निर्वाह का पथ सुझाया है। (पृ० २८६) इन पत्रों के अतिरिक्त डा० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' (पृ० १६४), डा० छैल बिहारीलाल गुप्त 'राकेश' (पृ० १८२), श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर (पृ० २४२), प्रो० प्रेमस्वरूप गुप्त (पृ० २७६), डा० रवींद्र भ्रमर (पृ० २८२) और कु० रूबानी वजीर (पृ० २५१) आदि विद्वानों को पत्र लिखने के साथ-साथ साधारण पाठकों तक को लिखे हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ में पत्र साधारण पाठक या जिज्ञासु को हैं या साहित्यकारों को, या दोनों से परे साहित्य-प्रेमी को ; पत्र किसे लिखे हैं, यह अहम् प्रश्न नहीं, बात तो प्रश्नों के कथ्य और उनके शिल्प की है। डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' विद्वान् और आदर्श अध्यापक हैं, इसी कारण उनके सभी पत्रों में उनकी विद्वता के साथ-साथ अध्यापकीय गुण-शैली सर्वत्र छायी रहती है। बात कहने का ऐसा सरल लहजा जिससे कठिन से कठिन और शुष्क से शुष्क विषय भी सरस-मधुर होता हुआ खुलता चला जाता है। आधुनिक साहित्य की नव्यतम विधाएँ, जो जटिल और अस्पष्ट-सी हैं, जिनकी विभाजन और सीमा-रेखा धुँधली और अस्पष्ट है, उन्हें भी 'सुमन' जी

ने अपनी प्रतिभा से स्पष्ट किया है। साहित्य की नव्यतम विधाओं को संक्षिप्त रूप में सम्यक् विवेचन-विश्लेषण के साथ सीधी, साफ और नपी-तुली वस्तु के अनुरूप शिल्प का प्रयोग कर विषय को समझाया गया है।

शंकाओं के समाधान के साथ-साथ यह ग्रंथ डा० सुमन के व्यक्तित्व और उनके ज्ञान-विज्ञान की भीनी सुरभि के आस्वादन के लिए अपने में पूर्ण है।

—हिंदी-विभाग
डी० ए० वी० डिग्री कालेज
मुजफ्फरनगर (उ० प्र०)

डा० सुमन की भाषण-कला और शब्द-मर्मज्ञता

—डा० (श्रीमती) रमा दुबलिश

पराग बखेरते श्रीमय सुमन सुधी सुमन जिनके विद्वत्परिमल मेरे मानस के अनालोकित अपरिचित पक्ष को छू-छू कर मानो उसे जड़ता के दैन्य से उभार रहे हों—मैं सहसा साहस बटोर उनकी तत्त्वोन्मेषिणी प्रतिभा का विश्लेषण करने बैठी हूँ —प्रतिभा, अभ्यास और व्युत्पत्ति ये तीन कारण हैं काव्य के। काव्य ही क्यों—सुधी जीवन के उपकरण क्यों न कहूँ ? सुनती हूँ, वे विख्यात वैज्ञानिक हैं—मैंने उनका एतत्संबंधी कोई ग्रंथ तो पढ़ा नहीं; परंतु मैंने उनके तीन व्याख्यान सुने हैं; जिनमें उनके ज्ञान को सत्य की कसौटी पर खरा उतरा पाया है। व्याख्यानों में उनकी प्रभाविनी वक्तृत्व-शक्ति श्रोताओं को मुग्ध कर देती है। उनकी विषय निरूपण-पद्धति विस्तृत अध्ययन तथा तर्कपूर्ण प्रमाणों से मंडित रहती है। बुद्धि के क्षेत्र से हटकर जब वे हृदय के क्षेत्र में उतर कर वाक्य-रचना करते हैं, तब श्रोताओं को भाव-विभोर बना देते हैं।

मैं जब उनके अभ्यास का कौतुक स्मरण करती हूँ, तब लगता है कि राम के जीवन का वे कोना-कोना झाँक आये हैं; क्या बाल्मीकि रामायण क्या कंब रामायण और क्या तुलसी का 'मानस'—मुझे तो स्मरण भी नहीं वे सब नाम। तुलसी के 'रामचरित मानस' के तो वे पूर्ण मर्मज्ञ हैं। व्युत्पत्ति जिसे विशेष ज्ञान कहते हैं—लगता है व्याकरण और कोश ग्रंथ कंठस्थ हैं उन्हें।

एक दिन जैन डिग्री कालेज सहारनपुर के शिक्षाविभाग में हिंदी-वर्तनी पर भाषण करते-करते डा० सुमन जी अपने श्रोताओं को ले चले कोश-जगत् में—अंगुली से '**जागर्ति**' शब्द—इंगित किया, जिसका प्रयोग हिंदी में कालांतर से '**जागृति**' के रूप में ही होता चला आ रहा है। मैं संस्कृत की अकिंचन छात्रा सोचने लगी—यह 'जागर्ति' कैसे ? शब्दार्थ कौस्तुभ देखा और हतप्रभ-सी रह गयी।

जागृ निद्राक्षये धातु से क्तिन् प्रत्यय लगकर '**जागर्ति**' क्यों कर बना ? शायद मैं हठ करती तो श्रद्धेय सुमन जी इतना भी बता देते कि—धातु में शप् लगने के कारण "सार्वधातुकार्ध धातुकयोः" सूत्र से गुण हो गया है।

तात्पर्य यह है कि मैं प्रथम बार उसी दिन समझी थी कि 'निद्राक्षये'। जागृ धातु से व्याकरण संमत भाववाचक संज्ञा शब्द 'जागर्ति' है, 'जागृति' नहीं। 'जागृति' व्याकरण विरुद्ध प्रयोग है। यह केवल अज्ञान से हिंदी में चल पड़ा

है। यह तो एक उदाहरण रहा। ऐसी कई बातें मैंने उनके भाषणों में सुनी हैं; जिनमें भावों–विचारों की नयी सूझ पायी गयी है।

इसी प्रकार एक बार और हमारी एम० ए० (संस्कृत) कक्षा की बालिकाओं को डा० सुमन जी ने **'शब्दार्थ विज्ञान'** पर भाषण दिया था। उसमें भाषण-कला भी थी और शिक्षण-कला भी। विषय को सोदाहरण स्पष्ट करने की तथा बीच-बीच में विनोद के छींटे छिटकाते हुए तथ्य बिंदुओं की व्याख्या करने की उनकी शैली बहुत ही आकर्षक है। आज के समय में ऐसे अध्यापक कालेजों तथा यूनीवर्सिटियों में कम ही पाये जाते हैं।

इन शब्दों के साथ मेरी श्रद्धाममी भावांजलि डा० सुमन जी के प्रति सादर समर्पित है।

विभागाध्यक्ष,
संस्कृत विभाग,
मुंनालाल एवं खेमका कन्या महाविद्यालय,
सहारनपुर, (उ० प्र०)

प्रसिद्धि की ऊंचाइयों पर

—डा० (श्रीमती) विद्याबिंदु सिंह

किसी साहित्यकार की रचना के विषय में लिखना या अपनी राय देना तब और कठिन हो जाता है जब साहित्यकार प्रसिद्धि की ऊँचाइयाँ छू रहा हो और राय देने वाला मात्र अध्येता हो जो इन साहित्यकारों की लेखनी से आलोकित पथ पर आगे बढ़ने का प्रयास कर रहा हो।

पितृतुल्य डा० सुमन जी को उनकी रचनाओं के माध्यम से जितना जानती हूँ, उतना व्यक्तिगत परिचय से नहीं। क्योंकि संभवत: एक या दो बार ही उनके दर्शन कर सकी हूँ। हाँ, उनके पत्र अवश्य मार्ग-दर्शन करते रहे हैं। उनका व्यक्तित्व उनके पत्रों में, उनकी कृतियों में स्पष्ट झलकता है। इसमें कोई संदेह नहीं।

यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि डा० सुमन जी की दृष्टि वैज्ञानिक है। वैज्ञानिक से मेरा तात्पर्य भावशून्य कोरा विश्लेषण नहीं है, वरन् अनुभूति और भावों से सजी उनकी भाषा और शैली तर्क और ज्ञान के आधार पर चलती है। वे कोई भी बात कहते हैं; तो उसके लिए सशक्त प्रभाव भी जुटा लेते हैं और सत्य जी कसौटी पर कसकर जब कोई अनुभूत सत्य व्यक्त होता है, तभी पाठक उससे जुड़कर उस चरम सत्य का साक्षात्कार करता है।

डा० सुमन जी कर्मठ व्यक्तित्व के धनी हैं, इसका प्रमाण है उनकी विविध विषयक रचनाएँ। वे भाषा विज्ञान के सुधी अधीती हैं। इनकी लिखी पुस्तकें "भाषा विज्ञान सिद्धांत और प्रयोग" "हिंदी और उसकी उपभाषाओं का स्वरूप" आदि भाषा विज्ञान के अध्येताओं के लिए अनिवार्यत: पठनीय हैं।

रामचरित मानस की शब्द संपदा और उसके अर्थतत्व के सौंदर्य पर प्रकाश डालते हुए आपने 'मानस-शब्दार्थ-तत्व' नामक पुस्तक का प्रणयन किया है।

रामचरितमानस डा० सुमन का प्रेरणास्रोत ग्रंथ है। "रामचरिममानस: वाग्वैभव", "रामचरितमानस भाषा-रहस्य" आदि आपके विशिष्ट पुरस्कृत ग्रंथ हैं। "रामचरितमानस: वाग्वैभव" ग्रंथ पर दो पुरस्कार भी मिल चुके हैं, एक उत्तर

प्रदेश राज्य का, दूसरा श्री रामकृष्ण हरजीमल डालमिया पुरस्कार समिति, दिल्ली का।

डा० सुमन लोक-संस्कृति और लोक-भाषा से जुड़े हुए हैं। जनपदीय ब्रज-भाषा के शब्दों का महत्वपूर्ण संकलन उनकी पुस्तक "कृषक जीवन संबंधी ब्रजभाषा शब्दावली" में है। इस प्रकार लोक-भाषा को महत्व देकर वे जीवन से और जुड़ गये हैं तथा अपने साहित्य को और ऊँचा उठा दिया है।

केवल हिंदी ही नहीं फारसी और उर्दू पर भी उनका अधिकार है। अरबी, फारसी की ध्वनियों, व्याकरण का विश्लेषण उन्होंने अपनी पुस्तक 'संस्कृति, साहित्य और भाषा' में संकलित डा० शिवकुमारशाण्डिल्य के पत्र (२४२) में सुंदर ढंग से करते हुए अरबी, फारसी भाषा के व्यवहार की बारीकियों को धार्मिक ढंग से समझाया है। डा० सुमन जी में जन्मजात अध्यापक के गुण हैं। वे सतत अध्ययन को अध्यापक के लिए अति आवश्यक मानते हैं। अपनी अध्यापन कला के कारण ही वे आज अवकाश प्राप्त करने पर भी यू० जी० सी० सेवा के अंतर्गत अपनी रचनाओं और पत्रों के माध्यम से शोध-छात्रों तथा जिज्ञासुओं का मार्ग दर्शन कर रहे हैं।

शब्दों की अर्थ-छटा, व्यंजना वाक्य प्रयोग में उसके स्थल बदल जाने मात्र से किस तरह बदल जाती है, इसके सशक्त उदाहरण देते हुए श्री 'सुमन' जी ने अपने पत्रों में उत्तम व्याख्या दी है। पत्रों के माध्यम से कितना कुछ सीखा और सिखाया जा सकता है, इसके उदाहरण हैं श्री सुमन जी के पत्र। उनके पत्रों का संकलन, उनकी पुस्तक "संस्कृति, साहित्य और भाषा" पढ़कर यह बात पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है कि पत्र हमारी भावनाओं, गुणों के संवाहक तो होते ही हैं, हमारी संस्कृति और भाषा के प्रचार-प्रसार में भी सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। हम अपने प्रवासी मित्रों, बंधु-बांधवों, गुरुजनों आदि से पत्र के माध्यम से घर बैठे कितना कुछ पा सकते हैं, दे सकते हैं।

उन्होंने परंपरा से प्राप्त संस्कृति और साहित्य में अपना मौलिक चिंतन समाविष्ट करके साहित्य जगत् को दिया है। प्राचीन सामग्री का संकलन करके संभा-वित असंगतियों का निवारण करना और एक योजनाबद्ध रूप में व्यवस्थित करना, कम महत्वपूर्ण नहीं। उन्होंने साहित्य की विपुल सामग्री का विवेकपूर्ण अध्ययन और यथोचित मौलिक ढंग से उपयोग किया है। सामग्री के नियोजन तथा व्यवस्थापन में डा० सुमन जी की मौलिकता सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। उन्होंने गहन अध्ययन से प्राप्त सामग्री का परिशीलन करके, युक्तायुक्त विवेक बुद्धि से विचार विमर्श कर सारतत्व को ग्रहण किया है। अपनी बात की उपयोगिता एवं प्रमाणिकता को समझाने के लिए तर्क तो दिये ही हैं, साथ ही साथ संभावित मत-भेदों की चर्चा भी की है। नये तथ्यों का अन्वेषण करके मूल्यांकन की नयी दृष्टि, नयी व्याख्या दी है।

हिंदी का विद्वान होने के लिए संस्कृत का ज्ञान होना आवश्यक है। शब्दों की व्युत्पत्ति का गहरा ज्ञान होने से भाषाई व्यवहार में, लेखन में कहीं भी शैथिल्य नहीं आता। डा० सुमन ज्ञानी, कर्मयोगी, भक्त तीनों में कर्मयोगी को अधिक श्रेष्ठ मानते हैं। क्योंकि कर्मयोगी सत्य की मौन उपासना नहीं करता; अपितु अपने कर्म से विश्व को कुछ देता है और सत्य को शिवत्व प्रदान करता है। श्री सोमदत्त शास्त्री के नाम लिखे पत्र में उन्होंने इस बात की बड़ी सुंदर व्याख्या की है—(संस्कृत, साहित्य और भाषा, पृ० ३ से ५ तक)

—प्रधान संपादक
उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान,
हिंदी-भवन, लखनऊ
—२२६२०१

अनेक रूप रूपाय तस्मै 'सुमनसे' नमः

—डा० गिरिधारी लाल शास्त्री

डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' का जन्म अलीगढ़ जनपद के गांव शेखपुर में २१ मार्च १९१६ ई० को हुआ। बचपन से ही वह अत्यंत कुशाग्र बुद्धि हैं। अपनी प्रारंभिक शिक्षा बुढ़ांसी-जलाली के ग्रामीण वातावरण में समाप्त करके उन्होंने धर्म समाज इंटर कालिज, अलीगढ़ से सन् १९३६ ई० में हाई स्कूल परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। उस समय अलीगढ़ जनपद में वही एक मात्र इंटर कालिज था और सुमन जी वहाँ के अत्यंत प्रतिभाशाली छात्र थे। पूरे अलीगढ़ जनपद में उनकी अद्भुत प्रतिभा और असाधारण ज्ञान का हल्ला था। अलीगढ़ जनपद के छात्रगण उन्हें अपना आदर्श मानते थे और कविगण अपना। उनके समग्र व्यक्तित्व में अपार आकर्षण था, आज भी है; उनकी स्वर-लहरी में असीम संमोहन था, आज भी है। लोग उन्हें देखने और सुनने आते थे; आज भी आते हैं। आना चाहिए।

श्रद्धेय 'सुमन' जी से मेरा प्रथम साक्षात्कार २५ दिसम्बर १९३७ ई० के बड़े दिन के अवसर पर कस्बा खैर के एक मात्र अंग्रेजी स्कूल 'वैश्य स्कूल' (वर्तमान खैर इंटर कालिज खैर) में हुआ था, जहां वह विद्यालय के वार्षिक अधिवेशन के कवि-संमेलन में निर्णायक एवं अध्यक्ष के रूप में पधारे थे। सारे क्षेत्र का अपार जन-समूह उन्हें देखने-सुनने के लिए उमड़ पड़ा था। उनके निर्णयानुसार मुझे उस कवि संमेलन में प्रथम पुरस्कार मिला था। तब से आज तक सुमन जी से मेरा घनिष्ठ संबंध बना हुआ है और मेरे प्रेरणा-स्रोतों में उनका प्रमुख स्थान रहा है।

सुमन जी के और मेरे पारस्परिक संबंध को अटूट और अमर बनाने का श्रेय है हमारे (हम दोनों के) प्रातः स्मरणीय गुरुदेव श्री पं० गोकुल चंद्र जी शर्मा को, जिनके श्री चरणों में बैठकर विभिन समयों में हमें शिक्षा ग्रहण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। हमारे इस संबंध के विषय में मेरे पत्र दिनांक १६–५–७८ के उत्तर में सुमन जी ने अपने पत्र दिनांक १९–५–७८ में मुझे लिखा था—"आपके पत्र दिनांक १६–५–७८ को पढ़कर परम प्रसंनता हुई। उसे पढ़ने के बाद लगभग पंद्रह-बीस मिनट तक मैं ऐसे दिव्यलोक में पहुँच गया कि उसकी आनंदानुभूति को लिख नहीं सकता। पूज्य गुरुवर श्री पं० गोकुलचंद्र जी का शुभ नाम पत्र में पढ़ते ही मैं अपने विद्यार्थी जीवन से आत्मसात् कर गया। धन्य थे वे गुरु, और

धन्य है उनकी वात्सल्यमयी अनुकम्पा।.........अपने शिष्यों में जिस-जिस को उन्होंने वात्सल्य से प्रसंगवशात् स्मरण किया, उनमें आपका नाम ऊपर था। परमपिता परमात्मा की यह महती अनुकंपा ही थी कि हम दोनों उस दिव्य वट वृक्ष की छाँव में छमियाये और अमृतमयी शीतलता प्राप्त की। आज मैं अपनी अवस्था का ६२वाँ वर्ष पूरा कर रहा हूँ—मैंने पंडित गोकुलचंद्र जी शर्मा जैसा स्वाभिमानी हिंदी-प्रोफेसर दूसरा नहीं देखा।" (संस्कृति, साहित्य और भाषा, पृ. ७६)

डा० सुमन जी के जीवन के सभी रूप भव्य हैं, किंतु उनका साहित्यकार-रूप भव्यतम है। उनमें एक श्रेष्ठ साहित्यकार के सभी गुण-प्रतिभा शक्ति, लोक काव्यशास्त्रादि ज्ञान-जन्य निपुणता और काव्यज्ञाशिक्षाभ्यास—आदि सभी गुण पूर्ण रूप में विद्यमान हैं। मेरा यह निश्चित मत है कि 'सुमन' जी मूल रूप में कवि हैं—गद्य-कवि ही नहीं, पद्य कवि भी। ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी और डा० नगेंद्र मूल रूप में कवि हैं। इन सभी ने गद्य-काव्य के साथ ही उच्चतम पद्य-काव्य की भी रचना की है, यद्यपि परिमाण में वह अपेक्षाकृत कम है। किंतु इससे उनके मूल रूप में कोई अंतर नहीं पड़ता है।

सुमन जी में बुद्धितत्व और हृदयतत्व का अद्भुत सामंजस्य है। किंतु उनका हृदयतत्व ही प्रबलतर है और वह हृदयतत्व को ही प्रधानता देते हैं। उनका कथन है कि "हृदय प्रधान बुद्धिजीवी मनुष्य ही साहित्य स्रष्टा बन सकता है।" (संस्कृति, साहित्य और भाषा १८१)। विज्ञान की अपेक्षा कविता के महत्व का प्रतिपादन करते हुए उन्होंने लिखा है कि "विज्ञान पदार्थ है, कविता ऊर्जा है, जीवन है। विज्ञान वह आग है जो भोजन पकाती और इंजन चलाती है, कविता वह दिव्य ज्योति है जो मन को, बुद्धि को तथा आत्मा को प्रकाशित करती है।" (वही, पृ० २५३)। और भी, "बुद्धि जब ऊँची उठती है, तब अहं के गिरिशृंग पर चढ़कर शेष संसार को निम्नतम और हेय समझती है। हृदय जब विशाल बनता हैं, तब उसमें शेष संसार प्रेम से समाने लगता है। हृदय की विशालता बुद्धि का भी शिव-नेत्र खोल देती है। वह विशाल हृदय संपूर्ण संसार को प्यार करता है। विशाल हृदयता ही मानव को सत्कर्म के लिए प्रेरित करती है। तभी मनुष्य कर्म में अकर्म और अकर्म में कर्म की अनुभूति करते हुए कर्मयोगी बनता है।" (वही, पृ० ८)

सुमन जी आदर्श छात्र, आदर्श अध्यापक-गुरु, आदर्श तार्किक बुद्धिजीवी, आदर्श भावुक कवि, आदर्श भाषा-विज्ञानी, आदर्श शोधक, आदर्श पंडित, आदर्श मित्र, आदर्श बंधु, आदर्श कला मर्मज्ञ और आदर्श मानव हैं। वह सच्चे अर्थों में वाग्देवतावतार हैं। **"अनेकरूपरूपाय तस्मै 'सुमनसे' नमः।**

—रीडर, हिंदी-विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय
अलीगढ़

जिनसे मेरा आक्षरिक परिचय है

—प्रो० श्री रंजन सूरिदेव

मनुष्य, चूंकि बौद्धिक प्राणी होता है, इसलिए एक की दूसरे के प्रति जिज्ञासा उसकी सहजवृत्ति होती है। इसी जिज्ञासा-वृत्ति के कारण वह एक-दूसरे से परिचय प्राप्त करने को उत्सुक रहता है। यह परिचय दो प्रकार से होता है: आक्षरिक और साक्षात्। साक्षात्परिचय समय, श्रम और अर्थ साध्य होता है, इसलिए एक-दूसरे का साक्षात्परिचय प्राप्त करने वाले व्यक्ति बहुत कम होते हैं; क्योंकि समय, श्रम और अर्थ—तीनों का समन्वय सबको सुलभ नहीं हो पाता। इसके विपरीत, आक्षरिक परिचय पुस्तकों, लेखों और पत्रों के माध्यम से सहज ही संभव होता है। स्पष्ट ही, विद्वद्वर डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' जी से मेरा परिचय उक्त कोटियों में द्वितीय कोटि का है, अर्थात् उनसे मेरा आक्षरिक परिचय है, जो अपने आप में बहुत ही लंबा, पिछले बीस-बाईस वर्षों का है।

आदरणीय डा० 'सुमन' जी के साथ मेरे आक्षरिक परिचय के संघटकों में हिंदी के दो संस्था—त्रैमासिकों के नाम विशेष रूप से उल्लेख्य हैं। प्रथम तो बिहार हिंदी-साहित्य-संमेलन, पटना से प्रकाशित (संप्रति, प्रकाशन स्थगित) त्रैमासिक 'साहित्य' है, और द्वितीय, बिहार—राष्ट्रभाषा-परिषद् से प्रकाशित त्रैमासिक 'परिषद्-पत्रिका' है। आचार्य शिव पूजन सहाय तथा आचार्य नलिन विलोचन शर्मा द्वारा संपादित त्रैमासिक 'साहित्य' के सह-संपादन-कार्य से मैं लगभग दस बारह वर्षों तक जुड़ा रहा और पुनः बिहार-राष्ट्रभाषा परिषद् में उसके तत्कालीन निदेशक आचार्य शिव जी की अहैतुकी कृपा से पदस्थापित (सन् १९५७ ई०) होने के बाद, 'परिषद्-पत्रिका' के प्रकाशन-काल (सन् १९६१ ई०) से ही उससे जुड़ा हुआ हूँ। पहले तो मैं औपचारिक रूप से 'परिषद्-पत्रिका' का संपादन-कार्य करता रहा, किंतु सन् १९७५ ई० से, बिहार-सरकार की अनुकंपा से, मुझे इस पत्रिका के संपादक-पद पर विधिवत् वियुक्त होकर शोध-साहित्य की सेवा करने का अवसर प्राप्त हुआ।

अधीती विद्वान् डा० सुमन जी हिंदी साहित्य के धुरंधरों में पांक्तेय हैं और लोक साहित्य, संस्कृति एवं भाषा विज्ञान के विशेषज्ञ अधीतियों में उन्होंने अग्र-गण्यता आयत्त की है। उक्त दोनों विषय-दृष्टियों से उन्होंने द्विशताधिक शोध मूल्य परक निबंध-रचनाएँ लिखी हैं और एक दर्जन से अधिक कूटस्थ कोशशिलात्मक कृतियों का प्रणयन किया है। कहना न होगा कि डा० सुमन जी ने अपनी शोध

संदर्भात्मक रचनाओं से जिस प्रकार भारत की विविध श्रेष्ठतर शोध-पत्रिकाओं को गौरवान्वित किया है, तद्वत् 'साहित्य' और 'परिषद्-पत्रिका' को भी उन्होंने सनाथता प्रदान की है। डा० सुमन जी की कृतियों में, भाषा और शब्द शास्त्र के अध्येयताओं को अभीप्सित विषय की प्रामाणिकता और प्रौढ़ता प्रदान करने वाली '**हिंदी और उसकी उपभाषाओं का स्वरूप**', '**मानस शब्दार्थ तत्व**', '**रामचरितमानसः वाग्वैभव**', '**रामचरितमानस भाषा रहस्य**' आदि पुस्तकें हैं।

साहित्यकारों में ऐसे व्यक्ति अंगुलिगण्य होंगे, जिन्हें पत्र लिखने का सहज संस्कार प्राप्त है। कहना न होगा कि डा० सुमन जी उन विरल सहृदय सत्पुरुषों में परिगणनीय हैं, जो पत्र-लेखन के उच्चतर संस्कार से संवलित हैं। शब्द-वाङ्मय के प्रति स्वात्म समर्पित डा० सुमन जी की पत्राचार-विधि कला की कोटि में अधिष्ठित है। सचमुच, पत्राचार-कला में उनकी द्वितीयता नहीं है। उनके तथ्यपूर्ण, स्नेहाप्लुत एवं आत्मीयत्व की आभा से परिदीप्त पत्रों से प्रेरित और प्रोत्साहित होकर अनेक साहित्य सेवियों ने अपने उन्नततर जीवन की निर्माण-दिशा प्राप्त की है। इस प्रकार, उन्होंने अपने पत्रों के माध्यम से मानव-निर्माण के निमित्त विराट् सारस्वत सेवा का महायज्ञ संपन्न किया है। इस तथ्य की अंतरंग प्रामाणिकता के लिए गत वर्ष (सन् १९७९ ई०) '**संस्कृति, साहित्य और भाषा**' नाम से ग्रंथाकार प्रकाशित उनके पत्रों का महार्घ संग्रह निदर्शनीय है।

डा० सुमन जी के पत्रों की भाषा अपने समय के सत्य को उद्घाटित करती है। मनोभावों की अभिव्यक्ति को सफल और प्रेरणीय बनाने के लिए वे अपने पत्रों में समर्थ शब्द योजना करते हैं, जिससे न केवल व्यक्तिगत उनकी, अपितु संपूर्ण युग की मनोदशा सूचित होती है। डा० 'सुमन' जी की भाषा की बनावट में सप्राण भावधारा रूपायित प्रतीत होती है। अपने अनुभव के अनुरूप शब्द-योजना में उनकी शैल्पिक कुशलता वरेण्य है। निश्चय ही, डा० 'सुमन' जी के पत्र व्यक्ति-सत्य और सामाजिक सत्य के पारदर्शी दर्पण हैं।

कुल मिलाकर, डा० 'सुमन' जी के पत्रों में विषयानुकूल उत्कृष्टतम शब्दों का उत्कृष्टतम विन्यास हुआ है और सही मानी में वे अपनी भाषा में सार्थक शब्दों को संपुंजित करने में ततोऽधिक सफल हुए हैं। उनकी ज्ञानोन्मेषक, आश्वस्तिकारक एवं बहुमुखी मेधा और शास्त्रदीक्षित पांडित्य से परिपूर्ण पत्रों के भव्यतम संग्रह के प्रस्तवन के लिए उसकी प्रकाशिका प्रबुद्ध पाठकों की हार्दिक बधाई को स्वयमेव आयत्त करने की क्षमता से संपन्न हैं।

मेरे लिए अतिशय गर्व की बात है कि डा० सुमन जी ने मुझे भी अपने प्रेरक और प्रोत्साहक पत्रों का पात्र बनाकर मेरी अस्तित्वादिता को सार्थकता दी है। मेरे निजी संग्रह में सुरक्षित उनके पत्रों में युगीन साहित्य-चर्चा तो है ही, मेरी निजी जीवन-यात्रा के प्रति उनकी पथबंधुता और कल्याण मित्रता के भी अनेक अविस्मरणीय आयाम उद्भावित हैं। अवश्य ही, उन्होंने मुझे, पूर्वजन्म की मान्यता

की दृष्टि से, चाक्षुष दर्शन के अभाव की स्थिति में भी जननांतर सौहार्द से सिक्त किया है।

सहज सहृदयहृदय तथा विद्या विनय-संपंन मनीषी डा० सुमन जी संपूर्ण ईर्या और ऊर्जा के साथ अपने क्रियावान् जीवन में सौ शरद् की आवृत्ति देखें, यही कामना है।

'जीव त्वं शरदां शतम्'

संपादक, 'परिषद्-पत्रिका' (त्रैमासिक)
बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद् 'पटना'
पटना–८००००४ (बिहार)

डा० सुमन का हिंदी-शब्द शास्त्र एवं पदशास्त्र में योगदान

—डा० रामेश्वरदयालु अग्रवाल

डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' की भाषाविज्ञान और विशेषतः हिंदी भाषा को देन अविस्मरणीय है। संस्कृत के पौढ़ पांडित्य के साथ पाश्चात्य भाषाशास्त्रीय चिंतन के सम्यग् ज्ञान ने उन्हें एक ऐसी अंतर्दृष्टि प्रदान की है, जिसके बल पर उन्होंने हिंदी की बीसियों गुत्थियों को न केवल सुलझाया है, अपितु भविष्य में भी ऐसी अनेक भाषा वैज्ञानिक समस्याओं के संतोषजनक समाधान के लिए एक सुविचारित पथ का निर्देश भी किया है। वे ज्ञान को छिपाकर नहीं रखते, बल्कि मुक्तहस्त से वितरित करने के साथ-साथ इस ज्ञान-परम्परा को आगे भी सजीव बनाये रखने के लिए यथासाध्य उद्योग करते रहते हैं। यह एक ऐसा दुर्लभ गुण है जो वर्तमान काल में बहुत विरल होता जा रहा है।

संरचना की दृष्टि से भाषा के जो तीन प्रमुख अंग हैं—ध्वनि, पद और वाक्य—उनमें पद ही वस्तुतः भाषा की रीढ़ है। स्वभावतः ही यह भाषा का सर्वाधिक क्लिष्ट अंश होता है। इस पर अधिकार प्राप्त करना मानों किसी भाषा के मर्म को आयत्त करना है। यदि किसी शब्द की ठीक-ठीक व्युत्पत्ति जाननी हो तो उस भाषा की ध्वनि और पद इन दो की सूक्ष्म पकड़ अनिवार्य है। इन दोनों में भी पद का महत्व सर्वाधिक है। सुमन जी ने हिंदी-पद-रचना को जितनी गहराई से समझा है, वैसा कम ही विद्वानों में दृष्टिगत होता है। यही कारण है कि उन्होंने हिंदी के अनेक कठिन शब्दों की बड़ी निर्भ्रांत व्युत्पत्तियाँ दी हैं। इसके लिए न केवल उनके 'मानस'—संबंधी ग्रंथ द्रष्टव्य हैं, अपितु उनके सद्यः प्रकाशित ग्रंथ 'संस्कृति, साहित्य और भाषा' में भी एतद्विषयक प्रचुर सामग्री भरी पड़ी है। ये व्युत्पत्तियाँ, उनकी पदशास्त्र-मर्मज्ञता का पुष्कल प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। एक-दो उदाहरण अलं होंगे।

कृषक जीवन संबंधी ब्रजभाषा शब्दावली से डा० टर्नर ने अपने हिंदी कोश में कुछ शब्द ग्रहण किये हैं।

अधिकांश विद्वान् जायसी, घनानंद आदि कवियों द्वारा 'विश्वासघाती' के अर्थ में प्रयुक्त **'बिसासी'** शब्द को सं० **'अविश्वासी'** या **'विश्वासघाती'** शब्द का विकास बताते हैं, सुमन जी ने इसे अरबी शब्द **'बसवास'** (भ्रम, धोखा) से बने

विशेषण 'बसवासी' (धोखेबाज) का विकास बताया है, जो सर्वथा तर्कसंगत लगता है।

इस प्रकार उन्होंने अनेकानेक भ्रांत व्युत्पत्तियों का निराकरण करके एवं अब तक अज्ञात व्युत्पत्ति वाले शब्दों की व्युत्पत्ति करके हिंदी-पद-रचना पर नया प्रकाश डाला है। वस्तुतः हिंदी शब्दों की सही व्युत्पत्ति का निर्धारण करने में वही विद्वान् समर्थ हो सकता है जो एक ओर संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश की परम्परा, दूसरी ओर अरबी-फारसी-तुर्की, तीसरी ओर मराठी, गुजराती, बंगला आदि आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के साथ थोड़ा-बहुत द्रविड़ भाषाओं का भी ज्ञान रखे, और चौथी ओर अंग्रेजी आदि यूरोपीय भाषाओं से भी परिचित हो। इन सबके साथ उसमें हिंदी की विभिन विभाषाओं के पारस्परिक साम्य और वैषम्य की भी गहरी पकड़ होना नितांत वांछनीय है। डा० सुमन जी इस कसौटी पर खरे उतरते हैं। उन्होंने स्वनामधन्य डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल के साथ हिंदी के व्युत्पत्तिगत कोश—निर्माण की दिशा में बहुत कार्य किया था।

जनपदीय शब्दों के संग्रह तथा व्युत्पत्तिपरक अध्ययन के क्षेत्र में डा० सुमन जी की कृतियां 'कृषक जीवन संबंधी ब्रजभाषा शब्दावली' और 'रामचरित मानस : वाग्वैभव' वास्तव में आकर ग्रंथ सिद्ध हुई हैं। ब्रजभाषा शब्दावली ग्रंथ ने तो बीसियों शोधार्थियों को शोध के लिए प्रेरित किया है। 'हिंदी की शब्द संपदा' के लेखन ने भी इस उक्त ग्रंथ को अपना आधार बनाया है।

'ब्रजभाषा शब्दावली' शोध-ग्रंथ में डा० सुमन ने जनपदीय ब्रजभाषा के शब्दों को सूरसागर में भी टटोला है और उनकी तुलना करते हुए अर्थों का उद्घाटन किया है। ग्रंथ में (पृ० २३३, प्रथम भाग) उन्होंने लिखा है कि '**फरिया**' छोटे लहँगे को कहते हैं। सूर ने लिखा है—"नील बसन **फरिया** कटि पहिरे बेनी पीठि रुलति झकझारी" (सूरसागर, ना० प्र० सं०, १०/३७२)

अपनी शब्द शास्त्रज्ञता के बल पर ही सुमन जी ने हिंदी में बहु-प्रचलित अनेक शब्दों की वर्तनीगत भ्रांति का बड़े प्रभावशील ढंग से उद्घाटन किया है। उदाहरणार्थ प्रकृति-प्रत्यय के विश्लेषण द्वारा उन्होंने सिद्ध किया है कि 'देखने में प्रिय लगने वाली 'स्त्री' के अर्थ में '**प्रियदर्शनी**' शब्द बनेगा; जिसका पुंलिग '**प्रियदर्शन**' होगा। '**प्रियदर्शिनी**' शब्द भिनार्थक है, जिसका अर्थ है 'प्रिय को देखने वाली स्त्री', इसका पुंलिग **प्रियदर्शी** बनेगा। इसी प्रकार '**जागृत**' शब्द अशुद्ध है। इसके स्थान पर वर्तमान कालिक कृदंत के रूप में 'जाग्रत्' शब्द (जागता हुआ) और भूत कालिक कृदंत के रूप में 'जागरित' (जागता हुआ) बनेगा। तदनुसार 'जागृतावस्था' के स्थान पर शुद्ध रूप '**जागरितावस्था**' होगा। इसी प्रकार **सौदामनी, मनस्कामना, शशी, नीरोगता, वर्चस्, विरूप, अंतःकथा,** कारंवाई, या **काररवाही**, त्रासदा (Tragedy) शुद्ध है। इनके स्थान पर क्रमशः **सौदामिनी, मनोकामना, शशि, निरोगता, वर्चस्व, विद्रूप, अंतर्कथा, कार्यवाही, त्रासदी** अशुद्ध हैं। हल् के प्रयोग या अप्रयोग से एक शब्द में कितना अर्थभेद घटित हो जाता है, इसके उदाहरण स्वरूप

उन्होंने **'कीर्तिमान'** और **'कीर्तिमान्'** शब्दों का उदाहरण दिया है। 'कीर्तिमान्' का अर्थ है **'यशस्वी'** किंतु **'कीर्तिमान'** का अर्थ 'यश की नाप' है (उदा० भारत ने कुश्ती में नया **'कीर्तिमान'** स्थापित किया है)। सारांश यह कि पदशास्त्र की मर्मज्ञता के फलस्वरूप उन्होंने अनेक शब्दों की सही व्युत्पत्ति एवं वर्तनी का निर्धारण करने के साथ-साथ पर्यायवाची से दीखने वाले शब्दों में विद्यमान सूक्ष्म अर्थ-भेद का प्रभावशाली ढंग से उद्घाटन किया है।

वे पहले हिंदी-विद्वान् हैं जिन्होंने हिंदी पद-विश्लेषण के लिए पाणिनीय पद्धति एवं अमरीकी पद्धति की तुलना द्वारा अमरीकी पद्धति को अधिक सुविधा जनक बताया। आवश्यकतानुसार उन्होंने दोनों पद्धतियों के समन्वय की उपयोगिता का भी प्रतिपादन किया। 'पुराणमित्येव न साधु सर्वम्' की उक्ति के अनुसार उन्होंने हठ वादिता के स्थान पर सारग्रहण को हितकर समझा। उदाहरणार्थ प्रकृति-प्रत्यय-योग की प्रक्रिया में पाणिनी को लोप, आगम आदि अनेक वक्रमार्गों का अवलंबन करना पड़ता है। जैसे, 'बालक' प्रातिपदिक में द्वितीया एक वचन की विभक्ति **'अम्'** लगाने पर **'बालकाम्'** जैसा रूप बनेगा, जो भाषा में उपलब्ध नहीं। इसलिए पाणिनि को 'बालक' के अन्त्य 'अ' का लोप करने के बाद ही **'अम्'** जोड़ना पड़ा, जिससे **'बालकम्'** जैसा साधु रूप सिद्ध हुआ। आधुनिक अमरीकी पद-विश्लेषण-पद्धति में मुक्त पदग्राम (Free Morpheme) और आबद्ध पदग्राम (Bound Morpheme) के क्रम द्वारा इस द्राविड़ी प्राणायाम से बचा जा सकता है।

भाषा विज्ञान : सिद्धांत और प्रयोग पुस्तक में डा० सुमन ने लिंग-विधान पर नये ढंग से विचार किया है। उनका मत है कि लिंग विधान हिंदी में दो प्रकार का है—(१) रूपात्मक लिंग-विधान, जैसे—पुं० देव, स्त्री० देवी, पुं० लड़का, स्त्री० लड़की। (२) **अर्थात्मक लिंग-विधान**, जैसे—पुं० भाई, स्त्री० बहिन, पुं० नरकोयल, स्त्री० मादाकोयल, पुं० बाबा, स्त्री० दादी, पुं० आदमी, स्त्री० औरत ? पुं० बैल, स्त्री० गाव। कुछ शब्द हिंदी में नित्य पुंलिंग और नित्य स्त्रीलिंग होते हैं। नित्य पुंलिंग शब्द जैसे—ताला, बूरा आदि। नित्य स्त्रीलिंग जैसे—नाक, टाँग, साबोनी आदि।

पं० कामताप्रसाद गुरु के 'हिंदी व्याकरण' का अध्ययन करने के बाद आकारांत व्यक्तिवाचक संज्ञा शब्दों की समस्या का समाधान डा० सुमन ने बहुत उत्तम ढंग से कर दिया है। उनका कहना है कि **कलकत्ता, आगरा, अमेरिका, आस्ट्रेलिया** आदि आकारांत संज्ञा शब्दों का वाक्यगत प्रयोग झमेले का है। मोहन कलकत्ते गया, तो ठीक है; किंतु 'मोहन अमेरिके गया, ठीक नहीं है। अतः डा० सुमन का कहना है कि व्यक्तिवाचक संज्ञा-शब्दों में परिवर्तन नहीं करना चाहिए।

अनुनासिक एकार वाले शब्दों की वर्तनी के विषय में डा० सुमन का मत है कि हमें ब्रजभाषा में 'गैंदा' और मापक हिंदी में 'गेंदा' लिखना चाहिए।

डा० सुमन जी का एक ग्रंथ बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना से प्रकाशित है **'रामचरित मानस भाषा रहस्य'**। उसमें क्रिया के कालों के संबंध में एक नयी बात बतायी गयी है। डा० सुमन का मत है कि क्रिया के काल दो प्रकार के हैं—(१) रूपात्मक काल (२) अर्थात्मक काल।

अनेक क्रियाएँ साहित्य में ऐसी प्रयुक्त होती हैं, जो रूप की दृष्टि से एक काल में और अर्थ की दृष्टि से उससे भिन्न काल में होती हैं।

'मानस' में अंगद का कथन अन्य बानरों से इस प्रकार है—

"अंगद कहइ **जाउँ** मैं पारा।"—इसमें **'जाउँ'** क्रिया रूपात्मक दृष्टि से वर्तमान काल में और अर्थात्मक दृष्टि से भविष्यत् काल में मानी जाएगी। **जाउँ** (रूप से)=जाता हूँ। **जाउँ** (अर्थ से)=जाऊँगा।

पदों में व्युत्पत्तियों का उल्लेख करते हुए डा० सुमन जी ने बताया है कि अवधी और व्रजभाषा में—**अइ** या–ए प्रत्यय का विकास अपभ्रंश—अइ से हुआ है और अपभ्रंश का—अइ प्रत्यय संस्कृत-**अति** प्रत्यय से हुआ है। जैसे—सं० **पठति** >अप० **पढ़इ** >अव० **पढ़इ** >व्रज० **पढ़ै**।

क्रिया के कर्मवाच्य रूपों का उदाहरण देते हुए डा० सुमन ने अपनी पुस्तक 'हिंदी और उसकी उपभाषाओं का स्वरूप' में स्पष्ट किया है कि कारक अर्थ में और विभक्ति रूप में अंतर्निहित रहती है। जैसे—(१) राम ने सुबाहु **मारा**। (२) राम ने ताड़का **मारी**। इन वाक्यों की क्रियाएँ कर्मवाच्य में हैं और लिंग-वचन में कर्म के अनुसार प्रयुक्त होने के कारण कर्मवाच्य की कहाती हैं। **"राम ने सुबाहु मारा"** में **राम** कर्त्ताकारक है, लेकिन तृतीया विभक्ति में है। **'सुबाहु'** कर्मकारक है, लेकिन प्रथमा विभक्ति में है। कारक और विभक्ति की ऐसी स्पष्टता के लिए "हिंदी और उसकी उपभाषाओं का स्वरूप" पुस्तक हिंदी पदशास्त्र के अध्ययन में प्रमुख स्थान रखती है। कारक और विभक्ति की इस उक्त संकल्पना को विद्वान् भाषा शास्त्री डा० सुमन ने अपनी कृति मानस शब्दार्थ तत्त्व' के परिशिष्ट में विस्तार से समझाया है। जैसे "मुझे पढ़ना चाहिए" वाक्य में 'मुझे' सर्वनाम पद रूप की दृष्टि से द्वितीया विभक्ति में है, किंतु अर्थ की दृष्टि से कर्ताकारक में है। 'पढ़ना चाहिए' क्रिया का कर्ता 'मुझे' है।

डा० सुमन ने अपने लेखों तथा भाषा शास्त्रीय ग्रंथों में इस तथ्य को बताया है कि लोकभाषाएँ ही शब्द-रूपों (पदों को) घिसकर बहुत छोटा बना देती हैं। **'मैंने कहा'** घिसकर **'मिन्का'** और **'रहने दे'** घिसकर **'रिहंदे'** हो जाता है। **'आर्यिका'** को घिसकर लोक ने ही **'जीया'** बनाया था।

अपने 'हिंदी और उसकी उपभाषाओं का स्वरूप' नामक ग्रंथ में जहाँ उन्होंने हिंदी की विभिन्न विभाषाओं के संरचनात्मक अंतर को बड़ी स्पष्टता से उभारा है, वहीं हिंदी, संस्कृत और फारसी की तुलना भी प्रस्तुत की है।' उधर 'भाषा विज्ञान: सिद्धांत और प्रयोग' में हिंदी और भारत की कतिपय अन्य प्रादेशिक भाषाओं की

(बँगला, गुजराती, मराठी और पंजाबी जैसी आधुनिक आर्य भाषाओं के अतिरिक्त द्रविड़ भाषाओं का भी) पारस्परिक तुलना द्वारा उनकी संरचना को स्पष्ट किया है। इसके अतिरिक्त 'हिंदी भाषा : अतीत और वर्तमान' में हिंदी की प्रत्यक्ष जननी 'अपभ्रंश' पर भी बहुत कुछ विचार किया है। इससे डा० सुमन के व्यापक दृष्टिकोण का पता चलता है, जिसको अपनाए बिना हिंदी के स्वरूप का युक्तियुक्त निर्धारण एवं विश्लेषण संभव नहीं। केंद्रीय हिंदी निदेशालय, दिल्ली से प्रकाशित 'भाषा पत्रिका (सितंबर-दिसंबर १९७८ ई०) में डा० सुमन ने हिंदी के श्लेषात्मक वाक्यों के रूपात्मक तथा अर्थात्मक स्वरूप पर बड़े मार्के का प्रकाश डाला है। उनका कहना है कि हिंदी में निम्नांकित वाक्यों के दो-दो अर्थ हैं—(१) माँ ने लेटे हुए बच्चे को दवाई पिलायी। पहला अर्थ—माँ ने लेटी हुई स्थिति में दवा पिलायी। दूसरा अर्थ—माँ ने उन बच्चों को दवा पिलायी जो लेटे हुए थे। (२) खेत में से उन भैंसों को यहाँ लाओ। प्रथम अर्थ—**भैंसों को**=मादा भैंसों को। दूसरा अर्थ—भैंसों को, नर भैंसों को। (३) वह घर को जाते-जाते रुक गया। पहला अर्थ 'वह घर को जा रहा था, बीच में रुक गया। दूसरा अर्थ—वह घर जाने को तैयार था, लेकिन रुक गया।

—हिंदी विभाग,
मेरठ कालेज, मेरठ (उ० प्र०)

—:०:—

सारस्वत प्रतिभा के धनी

—डा० विष्णुदत्त राकेश

श्री अंबाप्रसाद सुमन संस्कृति, साहित्य और भाषा के मर्मज्ञ चिंतक हैं। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के निकट संपर्क में आने पर डा० सुमन की यह विशेषता विशेष रूप से उद्भासित हुई। जनपदीय जीवन की छानबीन, ऐतिहासिक परंपराओं का प्रौढ़ ज्ञान, विज्ञान संमत इतिहास बोध तथा संस्कृति के सामाजिक और बाह्य प्रभाव स्रोतों का विवेचन-विश्लेषण साहित्य के क्षेत्र में उन्हें अग्रवाल जी से सीखने को मिला। देश में जब जनसाहित्य के मूल्यांकन की आवश्यकता को समझ कर डा० बनारसीदास चतुर्वेदी ने जनपद आंदोलन की शुरूआत की तब उसे शास्त्रीय पृष्ठभूमि डा० अग्रवाल ने दी किंतु भाषा शास्त्रीय पृष्ठभूमि पर उस साहित्य की गहरी समीक्षा का कार्य डा० सुमन ने किया, जनपदीय आन्दोलन की यह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। डा० सुमन ने भारतीय भाषाओं और बोलियों के शब्दों का मर्म छुआ है। शब्द को उच्चारण देने वाला संस्कार जितना महीन और सूक्ष्म होता है, उतना ही सूक्ष्म भाव बोध है डा० सुमन के पास। इसीलिए ब्रजी, अवधी, भोजपुरी, खड़ी के शब्दों की जैसी सूक्ष्म पकड़ उन्हें है, इस क्षेत्र में काम करने वाले लोगों में वैसी पकड़ कम देखने को मिलती है। वाङ्मयतप उनकी चेतना से उनकी लेखनी में उतर गया है। मानस के शब्दों की मीमांसा में उनकी सामर्थ्य बड़ी प्रबलता के साथ फूट पड़ी है। उदाहरण के लिए सुंदरकांड में आये सुंदर शब्द की व्याख्या लें। डा० रवींद्र भ्रमर की जिज्ञासा पर उन्होंने लिखा कि सुंदर शब्द स्थान वाचक ही नहीं अपितु भाव बोधक भी है। सुंदर का विदीर्ण कर देने वाला, गला देने वाला अर्थ करते हुए राम की विह्वलता का जो संकेत सुमन जी ने दिया है, वह उनकी काव्यरसिकता और भाषा-पांडित्य का अच्छा परिचायक है।[1] डा० अग्रवाल जायसी के पद्मावत का संजीवन भाष्य लिख रहे थे। लिखते-लिखते दुआली शब्द आ गया, इस शब्द की जानकारी डा० सुमन ने डा० अग्रवाल को दी और बताया कि तबले की चमड़े से बनी डोरी के लिए दुआली शब्द प्रयुक्त होता है, डा० अग्रवाल जी ने इस तथ्य का उल्लेख संजीवन भाष्य में डा० सुमन के नामोल्लेख के साथ किया है। डा० महेंद्र प्रचंडिया को पज्जुखणपव्व पर अपभ्रंश में उन्होंने पत्र लिखा है। डा० गोवर्धननाथ शुक्ल को उन्होंने ब्रजभाषा में पत्र लिखा है।

---

१. संस्कृति, साहित्य और भाषा—डा० अंबाप्रसाद 'सुमन', पृ० २८३

संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा हिंदी के वह असाधारण विद्वान् हैं और इन सबके बाद वह लोक-साहित्य के तथा भाषा के अप्रतिम विवेचक हैं। यही कारण है कि वह ढोला को व्रज का लोक महाकाव्य मानते हैं। लोकधर्मी नाटकों की परंपरा में लीला नाटकों पर विचार करते हुए उन्होंने सांगीत, लीलानाटक तथा नाट्यरासकों के स्वरूप का विवेचन किया है। रासलीला के उद्भव और विकास से संबंधित जानकारी दी है। डा० अग्रवाल के समान ही डा० सुमन का विज्ञान-बोध भी उत्कट और प्रौढ़ है। उपनिषद् के 'वह चलता भी है तथा नहीं भी चलता (तत् एजति तत् न एजति) जैसे वाक्यों की उन्होंने विज्ञान संमत व्याख्या की है। इलैक्ट्रोन-विवेचना में वैज्ञानिक इसे क्वांटा संज्ञा से अभिहित करते हैं। डा० सुमन यदि वैदिक तथा पौराणिक पुराकथाओं की इतिहास तथा विज्ञान-बोध से संवलित व्याख्या करें तो इस दिशा में बहुत कुछ दे सकते हैं। डा० सुमन ने संघर्षों का जीवन जिया है। अलीगढ़ के प्रसिद्ध कवि पंडित गोकुलचंद्र शर्मा तथा सुप्रसिद्ध हिंदी आलोचक डा० नगेंद्र ने यदि उन्हें स्थापित कराने में सारस्वत धर्म का पालन न किया होता तो विश्वविद्यालयीय जीवन में उनका प्रवेश असंभव नहीं तो कठिन अवश्य होता और फिर भक्ति साहित्य आधुनिक साहित्य तथा भाषा शास्त्र पर उनकी दुर्लभ किंतु मौलिक स्थापनाएँ हिंदी जगत् को कैसे मिलतीं ? अपने कृपालुओं के प्रति उन्मुक्त हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करना कोई डा० सुमन से सीखे। अपने गुरुजनों के प्रति उनमें अपूर्व निष्ठा है। ऐसी अपूर्व और सात्विक निष्ठा हमारे गुरुवर्य आचार्य पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र में भी दिखाई पड़ती है जिन्होंने अपने गुरुवर्य लाला भगवानदीन तथा आचार्य पंडित रामचंद्र शुक्ल के प्रति सार्वजनिक रूप से आभार व्यक्त करते हुए उनकी साहित्यिक परंपराओं के संरक्षण, संवर्द्धन तथा युक्तियुक्त प्रतिष्ठापन करने में ही स्वयं को समर्पित कर दिया और इसका परिणाम यह हुआ कि उनके मौलिक कर्तृत्व को अवगुंठित करने के लिए उनके समानधर्मा विरोधी आलोचकों ने मात्र उन्हें शुक्ल जी का व्यास मान लिया। फिर भी ऐसी गुरुजन निष्ठा ऋषि ऋण से उऋण होने के लिए स्पृहणीय है। भारतीय संस्कृति में जिनके जीवन की जड़ें जमी हुई हैं, यह निजत्व के त्याग की भूमि उन्हीं महात्मा साहित्यिकों के चरणों का स्पर्श करती है। निर्गुणियां हों या सगुणिया। हिंदी-संस्कृत साधकों की परंपरा में निगुरों के लिए कोई स्थान नहीं। डा० सुमन के प्रति मेरे मन में आदर का एक कारण यह भी है।

हिंदी व्याकरण और भाषा विज्ञान के क्षेत्र में डा० सुमन आचार्य पंडित किशोरीदास वाजपेयी को अपना पथ-प्रदर्शक मानते हैं। उन्होंने अपने पत्रों में यह स्वयं स्वीकार किया है कि आचार्य वाजपेयी से हिंदी व्याकरण में उन्होंने बहुत कुछ सीखा है।[१] तभी वह रूसी विद्वान् डा० वारान्निकोव को हिंदी शब्दानुशासन पढ़ने

---

१. संस्कृति भाषा और साहित्य पृ० ४६७

की प्रेरणा देते हैं ।[१] ब्रजभाषा पर शोध करने वाले विद्वान् डा० आर० के० बार्ज को वाजपेयी जी के ग्रंथ 'ब्रजभाषा व्याकरण' की विशेषताएँ समझाते हैं ।[२] वाजपेयी जी के व्याकरण साहित्य पर विचार करते हुए डा० सुमन ने लिखा है—'हिंदी के व्याकरणिक क्षेत्र में आचार्य पंडित किशोरीदास वाजपेयी ने ही विभक्ति कारक, विशेषण वाच्य आदि की समस्याओं का वैज्ञानिक समाधान सर्वप्रथम प्रस्तुत किया था । यदि हम यह कहें कि आचार्य वाजपेयी का ब्रजभाषा व्याकरण हिंदी व्याकरण शास्त्र का बीज, राष्ट्रभाषा का प्रथम व्याकरण हिंदी व्याकरणशास्त्र का फूल और हिंदी शब्दानुशासन हिंदी व्याकरणशास्त्र का फल है तो हमारा कथन अतिशयोक्ति पूर्ण न होगा । हिंदी के भाषाविदों ने बहुत कुछ आचार्य वाजपेयी के ग्रंथों से लिया है किंतु उनका ऋण तथा आभार स्वीकार न करने के कारण यदि आचार्य जी को कुछ क्रोध या आक्रोश आ जाता है तो हिंदी के लेखक बुरा क्यों मान जाते हैं ? चोरी पर सीना जोरी किसे बुरी नहीं लगती ।[३] डा० सुमन स्वयं भी ऐसे ही स्वाभिमानी, दो टूक कहने वाले निःस्पृह साहित्यिक हैं । विद्वत्ता, तप, त्याग, दमन और कर्मठता के प्रतीक हैं और इसीलिए आचार्य वाजपेयी जी के स्नेहभाजन हैं । आचार्य वाजपेयी जी के साथ लगभग दो वर्ष पूर्व वह मेरे आवास पर पधारे थे । २ घंटे की बैठक में उनसे विविध विषयों पर चर्चा हुई । उनके ज्ञान और अभिव्यक्ति सामर्थ्य के साथ उनके शील और विनम्र स्मित व्यक्तित्व ने मन पर गहरी छाप छोड़ी । मानवीय संवेदनाओं का रस उनके चिंतन में घुल-मिल गया है । तभी तो छोटे से छोटे और बड़े से बड़े व्यक्ति को उनसे समान व्यवहार मिलता है ।

साहित्यिक ईमानदारी को वह लेखक का सर्वोच्च धन मानते हैं । इसी बात को लेकर उन्होंने डा० प्रभाकर माचवे को एक आक्रोश पत्र लिखा जिसका उल्लेख उन्होंने अपने पत्र-संकलन में किया है । इस धर्म की प्रेरणा उन्हें स्व० डा० अग्रवाल से मिली । डा० सुमन ने 'ज्ञानमूर्ति आचार्य वासुदेवशरण' पुस्तक के महान् शब्दमर्मी शीर्षक निबंध में लिखा भी है—'इन पंक्तियों के लेखक का परम सौभाग्य है कि पी-एच० डी० के शोधकार्य (कृषक-जीवन संबंधी ब्रजभाषा शब्दावली) के लिए श्रद्धेय डा० वासुदेवशरण अग्रवाल जैसे शब्द मर्मज्ञ एवं उद्भट विद्वान् उसे निर्देशक के रूप में मिले ।

मैं यह मुक्त कंठ से घोषित करता हूँ कि डा० वासुदेवशरण अग्रवाल में परमोच्च श्रेणी की साहित्यिक ईमानदारी थी । कोई छोटी सी बात भी यदि उन्हें किसी व्यक्ति से मालूम पड़ जाती थी, तो वह उसका नामोल्लेख अवश्य करते थे ।'

(पृष्ठ ५१)

---

१. वही, पृ० ३१०

२. वही, पृ० ३८३

३. आचार्य किशोरी दास वाजपेयी और हिंदी शब्दशास्त्र पृष्ठ १७२

डा० सुमन ने काव्यशास्त्र, सौंदर्यशास्त्र, शैली-विज्ञान जैसे विषयों पर भी अपने मौलिक विचार व्यक्त किए हैं। विभिन सरकारी और असरकारी शब्दशास्त्र समितियों में रहकर उन्होंने असरकारी काम किया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी डा० विश्वनाथ प्रसाद और डा० नगेंद्र ने उनके कार्य से प्रभावित होकर ही उन्हें दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा में प्रतिष्ठित किया। डा० सुमन सतत जिज्ञासु के रूप में वहाँ कार्य करते रहे, अभिमान उनसे कोसों दूर रहा। भारतीय विद्या के इस अद्‌भुत विद्वान् का अभिनंदन हिंदी जगत् कर रहा है, यह हर्ष का विषय है। इस पृथ्वी पुत्र को उरुज्योति के आलोक में ब्रह्मोध की प्राप्ति हो इस अवसर पर यही एक कामना है। क्योंकि अस्यवामीय सूक्त की बुझौवलों के समान संस्कृति, भाषा और साहित्य की अनेक पहेलियों का उन्होंने इतिहास-विज्ञान-लोकचिंतन तथा दर्शन संमत समाधान प्रस्तुत किया है। गूढ़ से गूढ़ तत्वों का वक्ता तथा ज्ञाता कठोपनिषद् (२/७) के शब्दों में स्वयं में आश्चर्य होता है—

आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य
लब्धाऽऽश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः।

साहित्य और भाषाशास्त्र के ऐसे ही आश्चर्य डा० सुमन जी के दीर्घआयुष्य के लिए अनेक मंगल कामनाएं।

—गुरुकुल कांगड़ी, विश्वविद्यालय,
हरिद्वार।

मानस-व्याख्याता

—श्री अजीत लाल गुलाटी

मानस-प्रवक्ता डा० सुमन सरस्वती के अनन्य पुजारी हैं। वाग्देवी का इन्हें वरदहस्त प्राप्त है। शारदा की इसी कृपा के कारण उनका स्वर बड़ा स्पष्ट, मधुर और विभोरकारी है। वे अपनी मधुरवाणी और कंठ से श्रोताओं को अनायास ही आकर्षित करते हैं। सहज रूप में प्राप्त इन दोनों गुणों के अतिरिक्त उन्होंने जिस माध्यम द्वारा श्रोताओं को मंत्र मुग्ध करने में सफलता पायी है वह है श्रोताओं को उस मनोभूमि में ले जाने की प्रक्रिया जिसमें वे श्रोताओं को कुछ क्षणों के लिए सांसारिक चिंताओं तथा बाधाओं से मुक्त कर देते हैं। इस संदर्भ में उनकी क्रिया-विधि यह है कि वे "श्री राम जय राम जय जय राम' की सुमधुर नाम ध्वनि के साथ-साथ भाव प्रवण पदों को गाकर प्रवचन से पहले ही समा बाँध देते हैं। इस वातावरण से श्रोता व्याख्याता डा० सुमन के प्रेरक विचारों को सहज रूप से ग्रहण करने की स्थिति में पहुँच जाता है।

विवेक बिहार स्थित श्रीराम मंदिर में डा० सुमन ने विभिन्न अवसरों पर 'मानस का प्रतिपाद्य', 'मानस के राम', 'भगवान राम के परमप्रिय भक्त' आदि विषयों पर प्रवचन दिये हैं। इसके अतिरिक्त मानस के प्रमुख पात्रों का भी अपने व्याख्यानों में विशद विवेचन किया है। उनकी प्रवचन शैली में स्पष्टता, माधुर्य, सरसता, हृदयस्पर्शिता, संवेगात्मकता और ओजस्विता आदि गुणों का समावेश होता है। विगत वर्ष (अक्टूबर, १९७९) के नवरात्रों में जब मानस व्याख्याता डा० सुमन विवेक विहार स्थित श्रीराम मंदिर पधारे थे तब अनेक भावुक श्रोताओं ने निकट में होने वाली रामलीला को देखने का मोह संवरण करके इनके विद्वता पूर्ण प्रवचनों को सुना। प्रवचन-काल में श्रोता-वर्ग द्वारा दत्तचित होकर व्याख्यता डा० सुमन को सुनने का कारण यह है कि वे प्रसंगाधीन चौपाई, दोहे आदि की व्याख्या इस रूप में करते हैं कि प्रत्येक प्रयुक्त शब्द के सामान्य अर्थ के अतिरिक्त उसके दार्शनिक, आध्यात्मिक महत्व तथा उसके पूर्वापर प्रसंग पर यथेष्ट प्रकाश पड़ जाता है।

मानस व्याख्याता के रूप में उपर्युक्त गुणों के अतिरिक्त डा० सुमन की एक अनोखी विशेषता यह है कि वे अपने श्रोताओं के साथ रागात्मक संबंध स्थापित कर लेते हैं। वे अपने श्रोताओं के अंतर्मन के पारखी हैं और अपने सरल स्वभाव से

उनके मन को मोह लेते हैं। इसके साथ ही वे उनकी मानस संबंधी प्रत्येक शंका एवं समस्या का तत्काल समाधान करते हैं। परंतु यदि किसी प्रश्न का उत्तर तत्काल देना असंभव हो तो वे पत्र द्वारा उसका समाधान करते हैं।

कुल मिलाकर मानस-व्याख्याता आदरणीय डा० सुमन में कुशल सजग, सहृदय, निष्ठावान, आस्थावान और ज्ञानवान वक्ता के सभी गुण विद्यमान हैं। इन्हीं गुणों के कारण वे मानसानुरागी समाज में लोकप्रिय होते जा रहे हैं और उच्च कोटि के मानस-व्याख्याताओं में अपना विशिष्ठ स्थान बनाते जा रहे हैं।

करुणासागर परात्पर ब्रह्म से प्रार्थना है कि वे इनकी धर्मप्राण निष्ठा और भावना को न केवल बनाएँ रखें वरन् उसमें उत्तरोत्तर वृद्धि करते रहें ताकि इनके प्रवचनों से संतप्त मानव को विश्रांति मिले तथा श्रद्धावान मानस-प्रेमी की मानस के मनोहर घाटों के अमृतमय जल से तृषा-तृप्ति हो।

—बी—१५६
विवेक विहार
शाहदरा, दिल्ली—११००३२

डा० 'सुमन' के चार रूप

—डा० डि० श्रीनिवासवरदन्

मँझलेकद और गेहुआँ रँग के डा० सुमन जी यद्यपि देखने में ऊपर से कठोर दिखाई देते हैं, तथापि वे परिचय के लिए उचित मृदुल, आकर्षक एवं आदरणीय व्यक्ति हैं। साहित्यिक चर्चा करने वालों से ही उनका घनिष्ठ संबंध है और वे अनावश्यक बातों से सर्वदा बचकर रहते हैं। मैंने उनको प्रायः पुस्तकों से भरे हुए उनके प्रकोष्ठ में कुछ न कुछ पढ़ते या लिखते हुए ही देखा है। सचमुच हिंदी के महान्-समर्पित-साहित्यसेवी हैं। वे सरस्वती के सच्चे कृपापात्र सेवक हैं। अतः आचार्य दंडी का यह कथन उनके विषय में अक्षरशः सत्य है—

"श्रुतेन यत्नेन च वागुपासिता ध्रुवं करोत्येव कमप्यनुग्रहम्।"

डा० सुमन जी की प्रतिपादन-शक्ति अनूठी है। मंदबुद्धि वाला शिष्य भी आपके अध्यापन से अवश्यमेव लाभान्वित होता है। 'संदेशरासक' आदि जटिल एवं कठिन ग्रंथों को भी ये अनायास एवं सरल रूप में पढ़ाते हैं। सुमन जी अपने प्रत्येक शिष्य को तब तक नहीं छोड़ते, जब तक वह (शिष्य) विषय से अवगत न हो जाए। वे शिष्य न तो मर्यादावादी डा० सुमन जी के बहुत निकट आ सकते हैं न बहुत दूर रह सकते हैं। ये अपने शिष्यों को बहुत निकट इसीलिए नहीं आने देते कि परंपरागत गुरु-शिष्य-मर्यादा का पालन होता रहे। उनको दूर भी नहीं जाने देते, क्योंकि वे अपने ज्ञान से शिष्यों को लाभान्वित करना चाहते हैं। उनकी एक और विशेषता यह भी है कि ये अपने सर्वोत्कृष्ट शिष्य से अधिक अध्ययनतपश्चर्या कराते हैं। इसका यही कारण है कि उसका ज्ञान अग्नितप्त स्वर्ण के समान अधिक उद्दीप्त हो जाए। कालिदास ने यह कहा भी है—

"हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकाऽपि वा।"

संस्कृत का यह श्लोक सुप्रसिद्ध है।

"शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पंडितः।
वक्ता शतसहस्रेषु दाता भवति वा न वा॥"

वक्ता लाखों में एक होता है। कथनीय विषय का वर्गीकरण करके अपनी

प्रवाहमय वाणी से निर्दिष्ट विषय की विवेचना करना सुमन जी की सिद्धहस्त कला है। यदि आप चर्चा में लीन होते हैं, तो उनकी वाणी गंभीर हो जाती है। वे चर्चा को तब तक नहीं छोड़ते जब तक प्रतिद्वंद्वी अपनी हार न मानले। कभी-कभी वे दूसरों से व्यंग्यात्मक उक्ति में मीठा उपहास भी कर देते हैं। उन्होंने एक बार एक 'साहित्य संगोष्ठी' में 'नयी कविता' पर टिप्पणी करते हुए यह कहा था, "हिंदी जगत् में नयी कविता, नग्न कविता, सहज कविता आदि नामों की कोई कविता कविता नहीं है। हाँ यह "अकविता" अवश्य है, क्योंकि वह कविता है ही नहीं।" इस कथन का यह अर्थ नहीं है कि डा० सुमन जी आधुनिक साहित्य के विरोधी हैं। परंतु ये उन व्यक्तियों को सहन नहीं कर सकते, जो सूर, तुलसी आदि महाकवियों को रूढ़िग्रस्त कहकर उनकी उपेक्षा करते हुए नयी कविता को ही हिंदी-सिंहासन पर आरूढ़ कराना चाहते हैं और उसकी सर्वोच्चता का ढिंढोरा पीटते हैं।

लेखक काल एवं देश का अतिक्रमण करके जीवित रहता है। सत्रह ग्रंथों के रचयिता सुमन जी बीसवीं शताब्दी के विख्यात भारतीय लेखक हैं, परंतु उनके ग्रंथ भारतेतर स्थानों में भी आगामी कई शताब्दियों तक अध्ययन किये जाएँगे। सुमन जी मूलतः भाषा विज्ञानी हैं और उन्होंने अपभ्रंश काव्य एवं 'रामचरित मानस' आदि काव्यों के धरातलों को गहराई से देखा है। इनके ग्रंथों की कुछ विशेषताएँ ये हैं—

इनकी भाषा सरल एवं बोधगम्य है। अतः पाठक उनके ग्रंथों से अधिक लाभान्वित होते हैं। मैं भी हुआ हूँ।

उन्होंने "**भाषाविज्ञान-सिद्धांत और प्रयोग**" ग्रंथ एम० ए० के विद्यार्थियों को दृष्टि में रखते हुए लिखा है। प्रस्तुत ग्रंथ में कई महत्त्वपूर्ण भाषा तुलनात्मक तथ्य तालिकाओं द्वारा प्रस्तुत किये गये हैं, जो विद्यार्थियों को परीक्षा-समुद्र के पार करने में पोत के समान सहायता देते हैं।

आपके तीन-चार ग्रंथों में हिंदी भाषा के उत्तम सर्वांगीण विवरण प्राप्त होते हैं। अपभ्रंश से लेकर आधुनिककाल तक का हिंदी भाषा का विकास "**हिंदी: भाषा अतीत और वर्तमान**" में प्राप्त है। हिंदी की समस्त उपभाषाओं का ऐतिहासिक एवं वर्णनात्मक विवरण "**हिंदी और उसकी उपभाषाओं का स्वरूप**" में प्राप्त है। '**भाषा विज्ञान: सिद्धांत और प्रयोग**" ग्रंथ में हिंदी भाषागत समस्त तत्त्वों के उपपादन के अतिरिक्त हिंदी एवं हिंदीतर भारतीय भाषाओं की तुलना भी की गयी है, जो भाषा प्रेमी पाठकों को परम उपादेय है।

सुमन जी द्वारा भाषा-विज्ञान पर कई ग्रंथ लिखे जाने पर भी कहीं भी उनमें पिष्टपेषण या पुनरुक्ति नहीं मिलती।

डा० सुमन जी अपने ग्रंथों में सभी विषयों को समान रूप से विवेचित करते

हैं। वे कहीं भी किसी एक विषय को बहुत विस्तार या बहुत संक्षेप से वर्णन नहीं करते। यह भी आपकी एक बड़ी विशेषता है।

अतः डा० सुमन जी व्यक्ति, अध्यापक, वक्ता एवं लेखक के रूप में मेरी दृष्टि में श्रद्धा तथा सादर का स्थान रखते हैं। मैंने उनके उक्त चारों रूपों को बहुत निकट से देखा है, एक विभागीय साथी के रूप में।

—तमिल प्रवक्ता हिंदी विभाग
मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़
अलीगढ़—२०२००१ (उ० प्र०)

एक स्पृहणीय सरस्वती उपासक

—डा० राजेंद्रप्रसाद वर्मा

भाषा शास्त्र के दो पक्ष हैं—१. शब्दशास्त्र, जिसके अंतर्गत व्याकरण और भाषाविज्ञान आते हैं और २. काव्यशास्त्र। पहला काव्य के अंग-निर्माण अथवा रूप-सौंदर्य का बोध कराता है तो दूसरा उसके आत्मिक सौंदर्य का। किसी भी भाषा में प्रायः ऐसे ही विद्वानों का बाहुल्य रहा है जो उसके उपर्युक्त किसी एक पक्ष में गहरी पैठ रखते हैं। हिंदी जगत् में डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, सुमित्र मंगेश कत्रे, डा० बाबूराम सक्सेना, डा० धीरेंद्र वर्मा, श्री रामचंद्र वर्मा, डा० उदयनारायण तिवारी, आचार्य किशोरीदास वाजपेयी प्रभृति विद्वान् भाषाविज्ञान तथा व्याकरण के महा पंडितों की कोटि में आते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल, बाबू श्याम सुंदरदास, डा० नंददुलारे वाजपेयी और डा० नगेंद्र आदि काव्य शास्त्र मर्मज्ञों में अग्रगण्य हैं। परंतु डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी को भाषा शास्त्र के दोनों पक्षों के समानाधिकारेण मर्मज्ञ के रूप में माना जा सकता है। डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' इसी शृंखला में वर्तमान पीढ़ी के महा पंडितों में आचार्य द्विवेदी के बाद गण्यमान्य विद्वान् माने जा सकते हैं।

शब्द शास्त्र के उद्यान में डा० 'सुमन' की स्तुत्य लेखनी ने हिंदी भाषा : अतीत और वर्तमान, हिंदी और उसकी उपभाषाओं का स्वरूप, भाषा विज्ञान : सिद्धांत और प्रयोग, रामचरित मानस भाषा-रहस्य, जैसे ग्रंथ-पुष्प तो उत्पंन किये ही; परंतु 'कृषक जीवन संबंधी ब्रजभाषा शब्दावली' और 'अलीगढ़ और बुलंदशहर जिलों की बोलियों का तुलनात्मक अध्ययन' वे पुष्पद्वय उत्पंन किये जिन्होंने अध्यवसाय और लोक भाषा के सर्वेक्षण में प्रसिद्ध भाषा शास्त्री सर जार्ज ग्रियर्सन के कार्य को भी दस कदम पीछे छोड़ दिया। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में यह कहा जा सकता है कि डा० 'सुमन' ने ब्रजभाषा शब्दावली का कार्य करके शब्द जगत् में ग्रियर्सन से बढ़कर इक्कीस काम किया है। रामचरित मानस : वाग्वैभव उनकी सर्जन शक्ति से प्रस्फुटित वह नाना वर्णमय आलोक है जिसने अपनी बहुमुखी भाषा शास्त्रीय रश्मियों से हिंदी काव्य जगत् को प्रकाशित कर दिया है।

शैशव से ही डा० 'सुमन' को हिंदी तथा संस्कृत का वातावरण प्राप्त हुआ; जिसके अनुकूल दिशा में विकसित होने के कारण वे इन दोनों भाषाओं के मर्मज्ञ बन गये। आगे चलकर अपने विद्याव्यसन तथा अध्यवसाय से उर्दू तथा अंग्रेजी पर भी

अधिकार प्राप्त कर लिया। डा० 'सुमन' की विभिन भाषा-ज्ञान संबंधी जिज्ञासा इतने से ही शांत नहीं हुई। उन्होंने तमिल, तेलुगु, मलयालम, कंनड आदि दाक्षिणात्य भाषा-मंदिरों के दर्शन करने प्रारंभ कर दिये और उनके रूप-सौंदर्य का न केवल स्वयं आस्वादन किया अपितु उपर्युक्त ग्रंथों, विशेषकर भाषा-विज्ञान : सिद्धांत और प्रयोग नामक ग्रंथ के माध्यम से भाषा-पुजारियों को भी रसामृत पान करवाया जिससे पवित्र होकर प्रत्येक पाठक उनके प्रति श्रद्धावनत तथा कृतज्ञ हुए बिना नहीं रह सकता। दाक्षिणात्य भाषाओं की शब्द-रचना एवं रूप-रचना क्या है और उसका हिंदी भाषा से कितना साम्य और कितना वैभिन्य है इसके संबंध में उन्होंने अपने विचार समय-समय पर त्रैमासिक पत्रिका 'भाषा' में प्रकाशित लेखों द्वारा व्यक्त किये और विस्तार से 'भाषा विज्ञान : सिद्धांत और प्रयोग' ग्रंथ में व्यक्त किये हैं।

डा० 'सुमन' की बहुमुखी प्रतिभा एवं योग्यता से प्रभावित होकर ही उत्तर-प्रदेश सरकार ने उनकी अनेक पुस्तकों को पुरस्कृत किया है जिनमें 'कृषक जीवन संबंधी व्रजभाषा शब्दावली, भाग १. और २., 'हिंदी और उसकी उपभाषाओं का स्वरूप,' 'रामचरित मानस : वाग्वैभव,' रामचरित मानस-भाषा-रहस्य,' प्रमुख हैं। भारत सरकार ने उन्हें दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के स्नातकोत्तर विभाग का अध्यक्ष नियुक्त किया। वे पंद्रह वर्षों से भी अधिक समय तक केंद्रीय हिंदी निदेशालय और शिक्षा मंत्रालय के शब्दावली आयोग में विशेषज्ञ परामर्शदात्री समिति के कर्मठ सदस्य रहे हैं। जनवरी १९७३ में भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय के विशेष अनुरोध पर आपने पंद्रह दिनों तक पूना और बंबई के विश्वविद्यालयों में व्याख्यान दिये। उस व्याख्यान माला में डा० 'सुमन' के १२ व्याख्यान पूना विश्वविद्यालय और ६ व्याख्यान बंबई विश्वविद्यालय में हुए थे। भाषणों के शीर्षक भाषा शास्त्र और तुलसी-साहित्य से संबद्ध थे। उन व्याख्यानों की सूचनाएँ और सार प्रतिदिन नवभारत टाइम्स (हिंदी दैनिक) में प्रकाशित भी होते थे। व्याख्यानों के संबंध में संयोजकों के कतिपय विचार इस प्रकार हैं—१. डा० 'सुमन' के विद्वत्तापूर्ण विवेचन से तमाम उपस्थित श्रोताओं को जो आह्लाद और समाधान प्राप्त हुआ है, सचमुच उसे शब्दों में बाँधना कठिन है। हम लोगों को ऐसे वक्तव्य सुनने को मिलते ही कहाँ हैं। कुबेरों की इस नगरी में सारस्वत साधक कहाँ आ पाते हैं! २. डा० 'सुमन' को पूना विश्वविद्यालय के प्राध्यापक, छात्र तथा अन्य महानुभाव कभी भूल नहीं सकते। आपके विचारों तथा व्याख्यानों से हम निश्चित रूप से लाभान्वित हुए हैं। ३. डा० 'सुमन' का अहंकार-शून्य दबंग व्यक्तित्व उनके व्याख्यानों से प्रकट है। उनके विद्वत्तापूर्ण वक्तव्य और बेलाग बात करने की शैली पूना के लिए चिर स्मरणीय रहेगी। सन् १९७३ में वे राजस्थान हिंदी साहित्य संमेलन की ओर से अपनी बहुमूल्य हिंदी सेवाओं के उपलक्ष्य में सर्वोच्च मानद उपाधि—साहित्याचार्य से संमानित किये गये।

डा० 'सुमन' कृत 'रामचरित मानस : वाग्वैभव' वह अनुपम एवं अमूल्य श्रद्धा-सुमन है जिसने अपनी दिव्य गंध से माँ वीणापाणि के मंदिर को सुवासित कर दिया है। प्रस्तुत ग्रंथ के विषय में कुछ प्रकाशकीय वक्तव्य इस प्रकार हैं—

१. "शब्द शास्त्र और काव्य शास्त्र नितांत भिन-भिन दो शास्त्र नहीं हैं।··· शब्द शास्त्र का पूरक काव्य शास्त्र और काव्य शास्त्र का पूरक शब्द शास्त्र है। वास्तविक काव्यानंद पूर्णरूपेण दोनों प्रकार के अध्ययनों से ही प्राप्त हो सकता है।"

२. "यह कृति निस्संदेह शब्द शास्त्र एवं काव्यशास्त्र के क्षेत्र में हिंदी की अभिनव समृद्धि है।"

३. "यह ग्रंथ 'मानस' के प्रेमी पाठकों, स्नातकों, शोधार्थियों तथा विद्वानों—सभी के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।"

हिंदी जगत् के सर्वतोमुखी अद्वितीय दिग्गज स्वर्गीय डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत था—"···आपने बड़े परिश्रम से 'रामचरित मानस' के भूले-अधभूले शब्दों की व्युत्पत्तियाँ दी हैं और 'मानस' के भाषा वैभव का विस्तृत विश्लेषण किया है। ग्रंथ में आपके गंभीर अध्ययन और सूझ बूझ के अनेक आनंददायक निदर्शन मिलते हैं।"

इसी ग्रंथ की भूमिका में हिंदी के मूर्द्धन्य विद्वान् आलोचक डा० नगेंद्र लिखते हैं—"डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' ने प्रस्तुत ग्रंथ 'रामचरित मानस : वाग्वैभव में 'मानस' के सौंदर्य को भारतीय काव्य शास्त्र के सभी प्रमुख सिद्धांतों के निकष पर परखा है। मानस-सौंदर्य के इस परीक्षण में डा० 'सुमन' की पैठ गहरी है।······यह ग्रंथ लेखक की सारस्वत साधना का उत्तमांश भी माना जा सकता है।" और यह वास्तव में सत्य है कि श्री ग्रियर्सन के 'नोट्स ऑन तुलसीदास', श्री विजयानंद त्रिपाठी के 'मानस व्याकरण,' डा० देवकीनंदन श्रीवास्तव के 'तुलसी की भाषा' और तो क्या श्री अंजनी नंदन शरण द्वारा संपादित 'मानस-पीयूष' जिसे रामचरित मानस का विश्व कोश माना जा सकता है, से भी मानस के जिन गहन गह्वरों में प्रकाश की किरण न पहुँच सकी, 'रामचरित मानस : वाग्वैभव' रूपी भुवन भास्कर ने उन्हें भी प्रकाशित कर दिया है। प्रस्तुत ग्रंथ रत्न से ग्यारह आलोकरश्मियाँ प्रस्फुटित हो रही हैं। पहले दो अध्यायों का सीधा संबंध अर्थ विज्ञान से और शेष का अर्थ विज्ञान तथा काव्य शास्त्र से है। प्रस्तुत ग्रंथ के विषय में कृती लेखक के ये शब्द उपेक्षणीय नहीं हो सकते—"भारतीय काव्यशास्त्र के संदर्भ में 'मानस' पर जितना और जैसा मेरी लेखनी कह सकती थी, वही 'रामचरित मानस : वाग्वैभव' नाम की इस कृति में कहा गया है।"

मानस की भाषा के अनेक अध्येता यह तो जानते हैं कि 'मानस' में संस्कृत शब्दों के आदि 'व्' को 'ब्' निरपवाद रूप से कर दिया गया है और अंतिम 'व्' को 'व्' ही रहने दिया गया है, जैसे देव, सेवा, ग्रीवा, तव आदि। परंतु देवी को

देवी, कवि को कबि, भावी को भाबी क्यों लिखा गया है, इसका उत्तर उपर्युक्त ग्रंथ में सुगमता से दिया गया है। इसी प्रकार कहीं 'नियराया' और कहीं 'नियराई' कहीं 'लात' को पुंलिंग कहीं स्त्रीलिंग में लिखा गया है। कहीं गोस्वामी जी "कनक बिंदु दुइ चारिक देखे" क्रिया बहुवचन में प्रयुक्त करते हैं तो कहीं "इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा" (मानस १·२०१·७) में दो बालकों के साथ 'देखा' क्रिया एक वचन में प्रयुक्त करते हैं। ऐसा क्यों ? इन सब जिज्ञासाओं का बड़े संतोषजनक ढंग से प्रस्तुत ग्रंथ में समाधान किया गया है.

समान वर्तनी के भिन शब्दों पर अर्थयात्रा के मार्ग में यह भी स्पष्ट किया गया है कि कोई तदेव (तत्सम) शब्द किस-किस अर्थ में और कितनी बार आया है? 'मानस' के पदों को यदि विभिन विश्रामों के साथ पढ़ा जाए तो वे वाक्यांतर्गत एक से अधिक अर्थ भी देते हैं। वाक्य के शब्द वस्तुतः वीणा के ऐसे तार हैं जिन्हें छेड़ा जाए तो कई अर्थ-झकारें करते हैं। इन अर्थ झंकारों से हमारे हृद्ग्रंथों को अवगत कराने का प्रस्तुत ग्रंथ में सफल प्रयास किया गया है। इसी प्रकार मानस में प्रयुक्त विभिन पर्यायवाची शब्दों में सूक्ष्म अंतर और मानसकार की उनके प्रयोग में प्रसंगानुकूल सावधानी से परिचय करवाया गया है। उदाहरणतया स्यंदन और रथ पर्यायवाची शब्दों में मानसकार को क्या अंतर अभीष्ट था। अनेक साहित्याचार्यों तथा व्याकरणाचार्यों के लिए मानसकार ने कहीं 'बरषहिं' तो कहीं 'बरिसहिं' प्रयोग करके जो पहेली रूपी पासे फेंके हैं तथा कूट शब्दों का प्रयोग करके अच्छे-अच्छे विद्वानों को अपना ज्ञान कोश खोज डालने के लिए बाध्य कर दिया है, उन सबको सुगम्य बनाने का सरस्वती के इस आराधक ने सफल प्रयास किया है।

'मानस' के कुछ छंदों को देखकर कुछ लोग अपनी अल्पज्ञतावश कह देते हैं कि 'मानस' का अमुक दोहा या चौपाई मात्राओं की दृष्टि से दोषपूर्ण है। उन्हें प्रस्तुत ग्रंथ के 'छंदो वैभव' नामक ग्यारहवें अध्याय से ऐसा ज्ञानांजन प्राप्त होगा कि वे पुनः कवि कुल गुरू पर दोष दृष्टिपात करने का साहस नहीं करेंगे।

डा० 'सुमन' की सरस्वती-समर्चना का सत्तरहवाँ और अंतिम सुमन है—'संस्कृति, साहित्य और भाषा [जिज्ञासा और समाधान]। अद्यावधि हिंदी-पत्र साहित्य में इसे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और अभिनव योगदान से अभिहित किया जा सकता है। पाँच सौ पचपन पृष्ठों का यह ग्रंथ संस्कृति-खंड, साहित्य-खंड और भाषा-खंड शीषकों में विभक्त है। इसमें कुल २७४ पत्रों का संकलन है जो लेखक ने सन् १९५५–१९७८ ई० तक अपने साहित्यिक मित्रों और शिष्य-शिष्याओं को लिखे हैं। इनमें कौन-सा खंड सर्वोत्कृष्ट बन पड़ा है, इसका निर्णय व्यक्तिगत रुचि-वैभिन्य के कारण व्यक्तिपरक हो जाएगा। यहाँ केवल इतना कहा जा सकता है कि यह ग्रंथ डा० 'सुमन' के व्यक्तित्व और कृतित्व के चरम को स्पर्श कर गया है। दूसरे शब्दों में यूँ भी कहा जा सकता है कि इसमें उनके कर्म-बुद्धि और हृदय के समत्व-

योग के दर्शन होते हैं जो अपने पाठकों को जीवन के इस समबाहु त्रिभुजात्मक उद्यान का विस्मयात्मक आह्लादकारी परिभ्रमण कराता है।

हम भगवती वीणापाणि के वरदत्त पुत्र डा० 'सुमन' के पूर्ण शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक स्वास्थ्य एवं दीर्घायुष्य की कामना करते हैं, जिससे वे अपनी प्रतिभाशाली लेखिनी से सारस्वतोद्यान को निरंतर पुष्पित करते रहें। जिनके सौरभ से लोक मानस की भावभूमि उच्च से उच्चतर तथा उच्चतम स्तरों को प्राप्त होती रहे।

डी–६५, विवेके बिहार,
दिल्ली–११००३२.

हिंदी भाषा के परिष्कारक

—श्री बिशन कुमार शर्मा

गुरु जी के पास शिष्यों के पत्र आते हैं। गुरु जी पत्रों पर सुधारवादी प्रक्रिया करते हैं। उनकी शिष्य परंपरा बहुत लंबी है। अक्षर ज्ञान से लेकर ग्रंथ-ज्ञान तक अर्थात् साक्षर से लेकर शिक्षित तक। क्योंकि ज्ञान में भारी हैं, और जो उनसे ज्ञान में कुछ हल्का बैठता है, वह भी उनका शिष्य हो रहता है, कभी-कभी तो मित्र भी। पर उनके गुरुत्व में कोई अहं नहीं। सीधी-सीधी बात, बस वही ज्ञान-चर्चा। यदि कहीं गलती या भूल तो फिर सुधार। इसी लंबी-चौड़ी शिष्य मंडली में से किसी एक का पत्र आया। उस पर गुरु जी लिखते हैं—"मेरे कई एम० ए० (हिंदी) उत्तीर्ण विद्यार्थी अपने पत्रों में मुझे 'पूज्यनीय गुरु जी' लिखते हैं। एक शिष्य ने पत्र में लिखा—"मैं नैपाल से आपके लिये एक रुद्राक्षों की माला लाऊँगा।"

हिंदी भाषा तथा व्याकरण का व्यवस्थित एवं क्रमिक अध्ययन कालेजों तथा विश्वविद्यालयों में न होने के कारण ही एम० ए० (हिंदी) उत्तीर्ण छात्र नहीं जान पाते कि '**पूजनीय**' या '**पूज्य**' शुद्ध शब्द है; और '**पूज्यनीय**' अशुद्ध है। उपर्युक्त वाक्य में विशेषण-विशेष्य की स्थिति का ज्ञान व्याकरण ही करा सकता है। शुद्ध वाक्य इस प्रकार होना चाहिये—

"मैं नैपाल से आपके लिए रुद्राक्षों की एक माला लाऊँगा।" विशेषण अपने विशेष्य के निकट रहना चाहिए—इसे बहुत कम विद्यार्थी जानते हैं।"

(पृ० ४०६—४१०)

एक ठीक-ठाक-सा कवि और शिक्षक भी। खूब छपता है या छपवा लेता है। डा० साहब को कहीं अशुद्ध नजर आया और कहने लगे—"इतना ही नहीं पच्चीस-तीस वर्ष तक विश्वविद्यालयों में हिन्दी-साहित्य पढ़ाने वाले कुछ वरिष्ठ शिक्षक भी अपनी पुस्तकों में हिंदी-भाषा का प्रयोग अशुद्ध कर जाते हैं। लिंग-दोष पर उनका ध्यान ही नहीं जाता। एक कविता-पुस्तक में एक पंक्ति यों लिखी गयी थी—"ओस के आशीष पाकर फूल कांटों में मगन है।" रचयिता को पता नहीं कि शब्द 'आशीस्' है, और वह भी स्त्रीलिंग में है।" (पृ० ४१०)

उनके एक प्रिय मित्र हैं—डा० विश्वनाथ शुक्ल, डा० शुक्ल से उनकी अनेक बार सारस्वत चर्चा हुई है, अब भी होती है। डा० शुक्ल ने 'बालम' शब्द को सं० बल्लभ से विकसित माना या वे उस चर्चा में मान रहे थे। इस पर डा० सुमन ने

अपनी राय दी और सुव्यवस्थित अध्ययन के बाद उनको एक पत्र भी लिखा—"प्रियवर ! **बालम** शब्द सं० वल्लभ से विकसित नहीं है। गुजराती का **बालह** अवश्य संस्कृत वल्लभ से विकसित है। संस्कृत की 'व' ध्वनि को गुजराती सुरक्षित रखती है, हिंदी तो उसे 'ब्' में बदल देती है। सं० वाल (=रोम)=गुज० वाल। सं० वाल=हिं० बाल। हिंदी में **बालम** अरबी-फारसी के 'बालेमन' से विकसित है। **बालेमन**=मेरा पति। हिंदी में 'बालम' पति के अर्थ में प्रयुक्त हुआ।"

(पृ० ३०८)

'संस्कृति, साहित्य और भाषण' ग्रंथ के पृ० १९० पर डा० भगवान सहाय पचौरी के नाम एक पत्र में डा० 'सुमन' ने लिखा है—"एक दिन उन्होंने मुझसे कहा था कि "कुछ लेखक जो **मानवीकरण** शब्द का प्रयोग करते हैं, वे गलती पर हैं। **मानवी** शब्द तो **मानव** शब्द का स्त्रीलिंग है। **मानवीकरण** के स्थान पर उन्हें **मानवकरण** लिखना चाहिए।" यह सुनकर मैं आश्चर्य के सागर में डूब गया। कुछ देर बाद ऊपर उछला और संकेतात्मक रूप में **च्वि** प्रत्यय की बात बतायी; लेकिन व्यर्थ रही।"

(पृ० १९०-९१)

"कमाल यह था कि आत्मीय संबंध वाले व्यक्ति का परिचय देते समय उसका नाम तक वे ठीक तरह न बता पाये थे। रामेश्वर लाल खंडेलवाल, को वे रामेश्वर लाल 'अंचल' कहते थे। उदय शंकर भट्ट के उपन्यास **'सागर, लहरें और मनुष्य'** का नाम वे 'सागर, मनुष्य और लहरें' बताया करते थे।" (पृ० १९२)

"हाँ एक लाभ वहाँ मुझे अवश्य हुआ, शब्दों की व्युत्पत्ति और विकास के संबंध में। मैंने पहली बार श्रीवर महोदय से ही यह जाना था कि सं० **कृष्ण** शब्द **क्राइस्ट** शब्द से विकसित है। कितनी ऊँची रिसर्च हाथ लगी थी मेरे।

(पृ० १९३)

"तुलसीदास पर बोलते समय उनका कमाल का उद्धरण एक यह रहता था—

स्वांत: सुखाय तुलसी रघुवीरगाथा भाषा निबंधमति मंजुलमातनोति—

(रामच०, बालकांड, श्लोक ७)

'रघुवीरगाथा' पाठ, न मालूम उन्होंने मानस की किस दुर्लभ प्रति से याद किया था ? एक और भी उद्धरण वे सुनाया करते थे—

मुद मंगलमय संत समाजू। जिमि जग जंगम तीरथ राजू ॥

(मा०, बा० २/७)

उक्त अर्धाली का **जिमि** पाठ भी उन्होंने **मानस** के किसी अद्‌भुत संस्करण में से नोट किया होगा। जिमि की अर्थ-संगति भी उन्होंने खूब ही बिठाली होगी।':

(पृ० १९४)

कभी-कभी अपने मित्रों के बीच में डा० सुमन का उनकी भूलों के सुधार के लिए कितना विनम्र निवेदन रहता है ? इतना कि मानो वह उन्हीं की गलती है और वे उसे ठीक कर देना चाहते हैं या उसे ठीक कर देने का उनको अधिकार है।

मथुरा से प्रकाशित **'ब्रज भारती'** पत्रिका के अंक (वर्ष ३०, अंक १) में ब्रजभाषा की दो कविताएँ **'रे बिसासी'** और **'सीत की सवाई'** प्रकाशित हुईं। उनमें कुछ गलती देखीं या भेद पाया तो तुरंत पत्र लिखा पत्रिका के संपादक जी को—"क्या वर्तमान ब्रज भाषा में संज्ञा शब्दों के बहुवचनीय रूप-नि प्रत्ययान्त मिलते हैं कहीं पर ! मथुरा नगर में या मथुरा जिले के गाँवों में।"

आपकी कविता में 'होठनि' -कपोलनि' जैसे प्रयोग हैं, बहुवचन में, और आपके मित्र की कविता में 'अंगन' प्रयोग है। आप दोनों मथुरा के कवि हैं—एक 'कपोलनि' लिखता है और दूसरा 'अंगन' लिखता है। वास्तव में प्रचलन की दृष्टि से कौन-सा गृहीत किया जाना चाहिए ? कृपया लिखें "(ब्र०-भा० में प्रकाशित डा० सुमन के एक पत्र से)"

संस्कृति, साहित्य और भाषा' ग्रंथ में एक पत्र पृ० २१४ से २१५ तक प्रकाशित है। उस पत्र में उनकी इस आदत का एक उदाहरण है उन्हीं की लेखनी से लिखा हुआ—"भूषण ने लिखा है—**झरें अरबिंदन तें बुंद मकरंद के**। अर्थ यह है कि आँखों से आँसू की बूँदें गिर रही हैं। कमलों से मकरंद की बूँदें लिखना प्रतिष्ठित अप्रस्तुत को बताना है। साहित्य में आँख के लिए कमल उपमान गृहीत भी है।

एक बार अलीगढ़ विश्वविद्यालय के हिंदी-विभाग में भी ऐसा प्रसंग चला था और रूपकातिशयोक्ति के उदाहरण में मैंने उक्त चरण उद्धृत किया था। मेरे एक साथी (विभागीय मित्र) कहने लगे कि हम मुख से पसीने की बूँदें गिरती हुई भी मान सकते हैं। मैंने निवेदन किया कि " 'भूषण' ने **अरबिंदन तें** लिखा है अर्थात् **अरबिंदन** बहुवचन में है। मुख एक ही होता है। इसलिए आपकी सूझ-बूझ युक्ति-संगत नहीं।"

(पृ० २१५)

इस पत्र-संकलन के पृ० २३५ और २३६ पर एक पत्र प्रकाशित है। उसमें उन्होंने दो कवियों की गलतियों को उठाया है और फिर सुधारा है; डा० सुमन के शब्दों में—"एक कवि ने कविता इस प्रकार लिखी थी—

गगरियाँ रीते लिए चल दीं बदलियाँ म्लान।

इसमें रीता विशेषण है। इसका विशेष्य गगरियाँ हैं। अतः रीते के स्थान पर **रीती** होना चाहिए। यहाँ विशेषण में लिंग-दोष है। 'लिये' होना चाहिए।"

(पृ० २३५-२३६)

"एक नये कवि ने अपनी एक कविता में यह पंक्ति लिखी थी—**बजती रहे वेणु भावों की**—इसमें नये कवि ने **मुरली** या **बंशी** शब्द का स्त्रीलिंगत्व वेणु शब्द में लगा दिया है। वास्तव में वेणु शब्द तो पुंलिंग है। लिंग शब्द में हुआ करता है, अर्थ में नहीं।

(पृ० २३६)

इतना ही नहीं कि डा० सुमन दूसरों की जाने-अनजाने में हुई गलतियों को अथवा भूलों पर ही टिप्पणी करते रहे हों। या कुछ लोग समझें कि उनके ज्ञान के

मिथ्या 'अहम्' ने सदैव ऐसा ही किया है। सो कुछ नहीं है। गलतियाँ अथवा भूलें प्रत्येक पर हो जाती हैं। एकाध उन पर भी हुई है। फिर उन पर ध्यान भी गया है कि यह बात तब गलत थी अब सही है। उन्होंने उस गलत को सहज ही स्वीकार करके सही को प्रतिष्ठित करने की कोशिश की है। यहीं उनकी इस आदत में अतिरिक्त प्राण पड़ जाता है। उदारता आ जाती है। यह बल उनकी ईमानदारी को निखार देता है। उनकी इस सुधारवादी दृष्टि को एक सही आदत कहलाने के लिए लाचार करता है। यहाँ दंभवादी 'अहम्' मरता है और परहित वादी 'सत्य' जगता है। यहीं पर लगता है कि लेखक अंधकार से ज्योति की ओर, असत्य से सत्य की ओर और मृत्यु से अमरत्व की ओर जा रहा है। कितना सौभाग्य है ऐसे लेखक का। इसीलिए इसकी चर्चा होने योग्य है। यह आदत लिखने योग्य है। एक उदाहरण उन्हीं के द्वारा लिखा गया प्रस्तुत है—"आपने पहले बहु-विधि क्रीड़हिं पानि पतंगा—(बाल० १२६/५) का अर्थ जानना चाहा था।

मैंने पानि पतंगा का अर्थ हाथ-पतंगा अर्थात् कनकौआ लिखा था। 'मानस' में **पानि** शब्द जल के अर्थ में मुझे दोबार मिल गया है। अतः अब मैं यह उचित समझता हूँ कि **पानि पतंगा** का अर्थ 'जल-पक्षी' किया जाए, तो अधिक सुंदर है। अर्थात् जल-पक्षी अनेक प्रकार से क्रीड़ा कर रहे हैं।" (पृ० २०७)

डा० सुमन ने व्यक्तियों के अतिरिक्त ग्रंथों की गलतियों को सुधारने का भी प्रयास किया है। उनके द्वारा कई कोशों में फैली हुई, जैसे काशी नागरी प्रचारिणी सभा के **हिंदी शब्द सागर** और व्याकरण ग्रंथों की गलतियों पर भी सुधारवादी प्रक्रिया व्यक्त की गई है। रामचरित मानस के कयी संस्करणों को दृष्टि-पथ में रखकर अनेक अर्धालियों और छंदों को सुधारा गया है। इनको तर्क के साथ सुधारा है प्रमाण के साथ संशोधित किया है। कारण आदि बताते हुए अपनी बात प्रस्तुत की है। जो सही बन पड़ी है। इस सही को मैं ही नहीं प्रत्येक पाठक ने स्वीकार किया है और अब भी कर सकता है। हिंदी शब्द सागर की गलतियों पर अथवा भ्रांतियों पर यह टिप्पणी पठनीय है। व्युत्पत्तियों पर किया गया सुधार गले उतरता है—"हिंदी शब्द सागर में व्युत्पत्तियों में यत्र-तत्र भ्रांतियाँ भी हैं। उड़ता हुआ' के अर्थ में एक शब्द है उड्डीयमान। इसमें 'शानच्' (मान) प्रत्यय है। हिंदी शब्द सागर में **उड्डीयमान** का संस्कृत शब्द **उड्डीयमत्** लिखा गया है और इसका स्त्रीलिंग उड्डीयमती। ऐसा नहीं होना चाहिए। **उड्डीयमान** संस्कृत शब्द है, जो शानच् (मान) प्रत्यय के योग से बना है। इसका स्त्रीलिंग शब्द **उड्डीयमाना** है। हिंदी शब्द सागर में नाहर को सं० **नखरायुद्ध** से व्युत्पंन माना गया है। वास्तव में सं० **नाखर** से हिंदी नाहर शब्द विकसित है। सं० **नाखर**>प्रा०णाहर>नाहर (शेर)।" (पृ० ३१५)

वर्तनी की अनेक अशुद्धियाँ बड़े-बड़े कोशों में हैं, ग्रंथों में हैं। बहुत पहले से चली आ रही हैं। यह आक्षेप हिंदी की उच्चारण ध्वनियों पर लग चुका है कि ये

ध्वनियाँ बोलने में स्पष्ट नहीं हैं। लेकिन ऐसा नहीं है। हिंदी भाषा के संस्कार एकदम स्पष्ट हैं। विद्वानों के द्वारा बस एक नियम स्वीकार करने की देर है। डा० सुमन ने इस पर लिखा है—'हिंदी शब्द सागर (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी) में सुपुर्द करने के अर्थ में प्रयुक्त होने वाले शब्दों को **सोंपना** और **सौंपना** रूप में लिखा गया है। इन्हीं दो रूपों में यह शब्द बृहत् हिंदी कोश (ज्ञान मण्डल, लिमि० बनारस) में मिलता है।

संचित करने के अर्थ में **सेंतना** को **सैंतना** रूप में भी हिंदी शब्द सागर में लिखा गया है। बृहत् हिंदी कोश में **कोंच** (एक प्रकार की फली) को **कौंच** और **सेंहुड** (थूहर) को **सैहुंड** करके भी छापा गया है। इसका कारण यह है कि हिंदी में अनुनासिक एँ और अनुनासिक **ओं** की उच्चारण ध्वनियाँ बोलने पर स्पष्ट नहीं हैं—

मेरा अपना मत ऐसा है कि खड़ी बोली हिंदी अर्थात् मानक हिंदी में हमें **सेंतना, सेंहुड, कोंच** और **सोंधा** और व्रजभाषा में **सैंतना, सैंहुँड, कौंच** और **सौंधा** लिखना चाहिए। हिंदी में **गेंदा** लिखिए और व्रजभाषा में **गेंदा**।'' (पृ० ३१६)

हिंदी-व्याकरण की पुस्तकों के सुधार हेतु उन्होंने लिखा है—''प्रायः हिंदी-व्याकरण की पुस्तकों में लिखा गया है कि सर्वनाम का अर्थ है, संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त होने वाला पद (शब्द-रूप)। × ×।

उन पुस्तकों में बात पुरानी चली आ रही है। लकीर पर लकीर खिंच रही है। वास्तव में बात यह नहीं है। सर्वनाम का सदा प्रयोग सदा संज्ञा के ही स्थान पर नहीं होता। संबोधन में संज्ञा शब्द का प्रयोग होता है, किंतु सर्वनाम शब्द उस संज्ञा के स्थान पर नहीं आ सकता।

''गोपियाँ कहने लगीं—हे गोपाल ! हमारी रक्षा करो।''—इस वाक्य में हे गोपाल ? के स्थान पर सर्वनाम नहीं आ सकता।

''लड़का आता है'' के स्थान पर ''वह आता है'' प्रयोग हो सकता है; लेकिन ''अच्छा लड़का आता है'' के स्थान पर वह आता है'' प्रयोग नहीं होगा।

इसलिए यह कहना कि सर्वनाम सदा संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त होता है, ठीक नहीं।'' (पृ० २९६-२९७)

डा० सुमन ने राम चरित मानस की अनेक भूलों को सुधारा है। 'मानस' में पाठ-भेद' के संबंध में खूब लिखा है। जहाँ-तहाँ और जिस संस्करण में संपादकों की भूलें हैं, उनको भी सामने रखा है हिंदी जगत् के। ऐसा इसलिए भी अधिक हो गया है कि वे प्रसिद्ध 'मानस-मर्मज्ञ' हैं और 'भाषाविद्' भी हैं। उनके इन दोनों रूपों का संगम इस कड़ी को और आगे बढ़ा गया है। 'संस्कृति, साहित्य और भाषा' ग्रंथ में सर्वाधिक उदाहरण 'मानस' में उनके द्वारा किये गये सुधार पर मिल रहे हैं। इस विषय पर ग्रंथ में पर्याप्त सामग्री है। एक लेख अलग से लिखा जा सकता है। पर यहाँ एक उदाहरण ही प्रस्तुत है। ग्रंथ के ३२२-३२३ पर श्री तारकनाथ पांडेय

के नाम एक पत्र है। उसमें वे लिखते हैं—(आप) "पूजन गौरि सखीं लै आई। करत प्रकाश फिरहि फुलवाई ।। (काशि; बाल २३१/२) के संबंध में करति पाठ ठीक मानते हैं और साथ में मेरा मत भी जानना चाहते हैं।

सखियाँ कई हैं, इसलिए **सखीं** बहुवचनीय कर्त्ता है। इसका क्रिया पद भी बहुवचन में होना चाहिए अर्थात् **आयीं**।

खड़ी बोली मानक हिंदी में 'करते हुए' प्रयोग है। इसके समानांतर तुलसी के मानस की भाषा में '**करत**' होना चाहिए। **करति** का अर्थ है **करती** है।

काशिराज संस्करण के पाठ में **फिरहि** क्रिया लिखी गयी है। **फिरहि** वर्तमान काल में आज्ञार्थ की क्रिया है, जो मध्यम पुरुष, एक वचन की सूचक है; अर्थात् **फिरहि**=तू फिर। **फिरहि** से यहाँ कोई संगति नहीं बैठती। **फिरती है** के अर्थ में **फिरइ** पाठ समीचीन है और **फुलवाई** के स्थान पर **फुलवाईं** पाठ होना चाहिए। **फुलवाईं**=फुलवाड़ी में। अनुनासिकता **सप्तमी विभक्ति** की सूचक है।

अतएव निम्नांकित पाठ संगत और समीचीन है–पूजन गौरि सखीं लैं आईं। करत प्रकास फिरइ फुलवाईं ।। (बाल–२३१/२)

गीता प्रेस, गोरखपुर के संस्करण में ऐसा पाठ मिलता भी है।"

उनकी इस आदत को चर्चा का विषय इसलिए बनाया है कि उनके कृतित्व में से व्यक्तित्व की छाया का भान हो सके। साहित्यिक-क्रिया कलाप आदत बन सके। उनकी इस सुधारवादी आदत से उनमें कुछ लोगों को गुण चाहे कुछ कम सामने आए, पर उनके विद्वान् का गुण अवश्य सामने आ रहा है। इसकी कितनी आवश्यकता है हिंदी को, हिंदी के देश भारत को! इसका आभास कराने के लिए भी मैंने डा० सुमन की इस सुधारवादी आदत को सामने रखा है। समवेततः डा० सुमन हिंदी की गलतियों और भूलों के न्यायालय के जागरूक न्यायाधीश हैं।

—१३/१४ गली कसेरान
सराय बारह सैनी
अलीगढ़ (उ० प्र०)
—२०२००१

अलीगढ़ जनपद

भूगोल

इतिहास

साहित्य

लोक-साहित्य

कला

अलीगढ़ जनपद
उ.
मापक
१० ५ ० १० २० ३०
किलोमीटर
जि ला बु लं द श ह र
जिला बदायूँ
जिला गुड़गाँव (हरियाणा)
जि ला ए टा
जि ला म थु रा
संकेत
राज्य सीमा
जिला सीमा
तहसील सीमा
परगना सीमा
जिला मुख्यालय
तहसील मुख्यालय
परगना मुख्यालय
पक्की सड़कें
रेलवे लाइन (बड़ी)
रेलवे लाइन (छोटी)
नदियाँ
नहरें
तालाब
किला
अस्पताल
थाना
विश्वविद्यालय
टप्पल
खैर
कोल
अलीगढ़
अतरौली
गोरथल
हरदुआगंज
छर्रा
दादों
बरला
अकराबाद
गभाना
इगलास
गोण्डा
गोरई
हसनगढ़
सासनी
बिजयगढ़
सिकन्दराराऊ
हाथरस
सादाबाद
मुरसान
हसायन
बरेली से
काली नदी
दिल्ली से
नीम नदी
नरौरा नहर
शाखा अनूपशहर
कासगंज को
कानपुर को
एटा को
शाखा कानपुर
शाखा इटावा
सेंगुर नदी
मथुरा को
हरिद्वार की गंगा नहर
करवन नदी
अलीगढ़ जनपद की स्थिति
३०० ० ३०० कि.मी.
डा॰ अम्बाप्रसाद 'सुमन' का जन्म-स्थान : रोखूपुर
By R.S.Pawar
७७° ३०'
७८°
७८° ३०'
२८° १५'
२८°
२७° ४५'
२७° ३०'
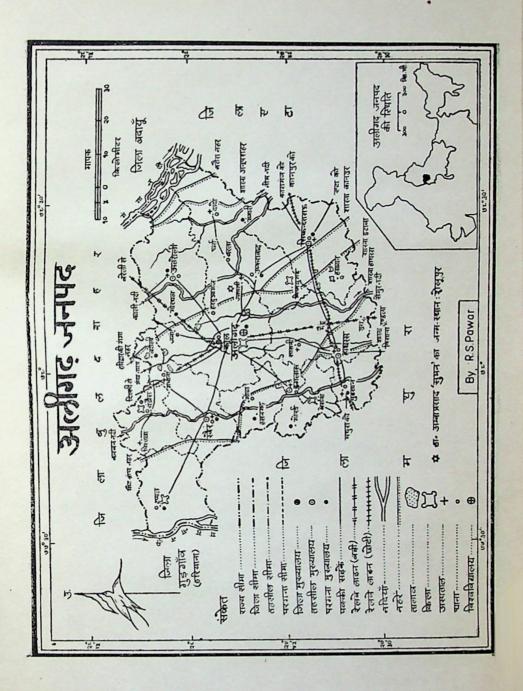
भौगोलिक परिवेश

—प्रो० राजेंद्रसिंह पवार

ऊपरी गंगा यमुना दोआब में स्थित अलीगढ़ जनपद आगरा संभाग का एक महत्वपूर्ण जिला है, जो उत्तर में बुलंदशहर, उत्तर-पूर्व में बदायूँ, पूर्व तथा दक्षिण-पूर्व में एटा, पश्चिम व दक्षिण-पश्चिम में मथुरा तथा पश्चिम में गुड़गाँव (हरियाना) जनपदों द्वारा सीमांकित है। यह गमनागमन मार्गों का केंद्र बिंदु है। दिल्ली से इसकी दूरी १२६ किलोमीटर है। भारतीय सर्वेक्षण विभाग के अनुसार जनपद का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल ५,०२४ वर्ग किलोमीटर है, जो राज्य का केवल १·७ प्रतिशत है। प्रशासनिक दृष्टि से यह जनपद ६ तहसीलों—कोल, खैर, इगलास, हाथरस, सिकंदराराऊ, अतरौली तथा १२ विकास खंडों में विभाजित है। क्षेत्रफल की दृष्टि से खैर सबसे बड़ी तहसील है, जबकि कोल तहसील की जनसंख्या सर्वाधिक है। यहाँ राजस्व ग्रामों की कुल संख्या १,७६९ है, जिसमें १,७१७ ग्राम आबाद हैं। जनगणना की वर्तमान परिभाषा (१९७१) के अनुसार यहाँ कस्बों की संख्या ६ है। जनपद में लगभग पौने आठ सौ ग्राम सभाएँ, १७१ न्याय पंचायतें तथा १,४९८ ग्राम पंचायतें हैं।

भू-वैज्ञानिक इतिहास

भू वैज्ञानिक दृष्टि से अलीगढ़ जनपद कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं रखता किंतु यह देश के उस उत्तरी मैदान का एक अंग है जिसका भू-वैज्ञानिक इतिहास बड़ा ही रोचक रहा है। आज से लगभग ३५ करोड़ वर्ष पूर्व (Carboniferous Period) जहाँ आज हिमालय का विस्तार है वहाँ टैथीज (Tethys) सागर था। पृथ्वी की आंतरिक शक्तियों के फलस्वरूप लगभग एक करोड़ वर्ष पूर्व (Pliocene Period) टैथीज का स्थान हिमालय ने ले लिया था, जिसके कारण प्रायद्वीपीय भारत और हिमालय के मध्य एक गहरी खाई बन गयी थी। यह खाई लगभग १० लाख वर्ष पूर्व (Pliestocene Period) हिमालय से निकलने वाली नदियों के तलघटीय निक्षेप द्वारा मैदान में बदल गयी। इसी कारण यहाँ सैकड़ों फीट की गहराई तक कठोर चट्टानें नहीं मिलतीं और साथ ही खनिजों का नितांत अभाव पाया जाता है, किंतु आर्थिक दृष्टि से यह मैदान महत्वपूर्ण स्थान रखता है। अलीगढ़ जनपद भी इसी मैदान का एक अंग है।

धरातलीय स्वरूप

दोआब में स्थित होने के कारण संपूर्ण जनपद एक समतल मैदानी भाग है,

जिसकी समुद्र तल से औसत ऊँचाई १८० मीटर है। गंगा और यमुना नदी के समीप की भूमि कुछ नीची है जो खादर कहलाती हैं। जनपद के पश्चिमी भाग में दो-तीन छोटे-छोटे टीलों तया 'खादर' को छोड़कर शेष भाग की भूमि ऊँची व चौरस है। यहाँ पथरीली भूमि नगण्य है। दोमट, बलुई, मटियार, भूर व ऊसर यहाँ की मुख्य मिट्टियाँ हैं। गंगा और यमुना जनपद की उत्तर-पूर्वी तथा पश्चिमी सीमा बनाती है। अन्य नदियों में करबन, सेंगुर, काली, रुतबा, चोया, नीम व बूढ़गंगा उल्लेखनीय हैं। इनमें गंगा, यमुना तथा काली सतत वाहिनी नदियाँ हैं। करबन नदी जनपद की सबसे लंबी नदी है। यहाँ कई छोटे-बड़े तालाब पाये जाते हैं, जिनमें प्रमुख हसायन, बकायन, पिछौती, सुहावली, अदौन, सपेहरा, सिकंदरपुर, मौरेना, ओंगर, लहटोई आदि ग्रामों के समीप स्थित हैं। जनपद से होकर उत्तर से दक्षिण कई नहरें निकलती हैं, जिनमें नहर गंगा (शाखा कानपुर व इटावा), माँट (शाखा हाथरस व विसाना), शाखा अनूपशहर तथा नरौरा मुख्य हैं। जनपद का सामान्य ढाल उत्तर से दक्षिण को है।

जलवायु

जवपद की जलवायु देश की विशाल मानसूनी व्यवस्था का अंग है तथा जलवायु के सभी तत्व भारतीय मानसून से निर्देशित होते हैं। सामान्य रूप से यहाँ की जलवायु स्वास्थ्यवर्द्धक एवं कड़ी कही जा सकती है, क्योंकि गर्मियों में यहाँ अत्यधिक गर्मी (अधिकतम तापमान ४४·३° सेंटीग्रेड) तथा सर्दियों में अत्यधिक सर्दी (न्यूनतम तापमान ३·७° सेंटीग्रेड) पड़ती है। गर्मियां प्राय: मार्च से आरंभ हो जाती हैं तथा मई-जून में कड़ी गर्मी तथा तेज आँधियों, जिन्हें स्थानीय भाषा में 'लू' कहते हैं, का प्रकोप रहता है। इस ऋतु का औसत तापमान ३८° सेंटीग्रेड रहता है। सामान्यत: जौलाई से वर्षा आरंभ हो जाती है, जो अक्टूबर तक रहती है। जनपद की वार्षिक वर्षा का औसत ६८० मिलीमीटर के आस-पास रहता है। नवंबर संक्रमण काल है जिसमें वायुमंडलीय दशाएँ अस्थिर रहती हैं। सूर्य के दक्षिणायन होने के साथ ही दिसंबर के अंत तक अधिक वायु भार का केंद्र राजस्थान और पंजाब पर बन जाता है, अतः वायु की दिशा पूर्व, दक्षिण-पूर्व और दक्षिण की ओर होती है। इस ऋतु का औसत तापमान १६° सेंटीग्रेड रहता है। प्राय: मौसम सूखा, आकाश स्वच्छ तथा हवा की गति मंद होती है। रात्रि का तापमान गिरने से कभी-कभी पाला तथा कोहरा गिरता है। चक्रवातों से इस ऋतु में हल्की वर्षा होती है, कभी-कभी ओले भी गिरते हैं तथा वायु की गति अधिक हो जाती है। इस चक्रवातीय वर्षा को स्थानीय भाषा में 'महावट' कहते हैं।

जनसंख्या

सन् १९७१ की जनगणनानुसार यहाँ की कुल जनसंख्या २१,११,८२९ है, जिसमें ११,५१,४६३ पुरुष तथा ९,६०,३६६ स्त्रियाँ हैं। यह राज्य की कुल जनसंख्या का २·३९ प्रतिशत है। जबकि जनपद का क्षेत्रफल राज्य के क्षेत्रफल का

केवल १·७ प्रतिशत है। अतः स्पष्ट है कि क्षेत्रफल की तुलना में यहाँ जनसंख्या अधिक है। जनपद की जनसंख्या का औसत घनत्व ४२० व्यक्ति प्रति वर्ग किलो-मीटर है, जो कि राज्य के औसत घनत्व (३०० व्यक्ति प्रति वर्ग कि० मी०) से बहुत अधिक है। क्षेत्रफल की दृष्टि से यह राज्य में २६वां स्थान रखता है, जबकि जन-संख्या की दृष्टि से इसका राज्य में ११वां स्थान है। राज्य की कुल जनसंख्या का ८२·१५ प्रतिशत (१५,३४,७६८ व्यक्ति) ग्रामीण हैं जो १,७१७ बसे हुए गांवों में रहती है। ग्रामीण जनसंख्या का घनत्व ३४९ व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर ग्रामीण क्षेत्र है जो कि राज्य के ग्रामीण घनत्व (२६० व्यक्ति) से अधिक है। सामान्य घनत्व की दृष्टि से यह राज्य में १५वां स्थान रखता है। जनपद में नगरीय क्षेत्रों की संख्या केवल ६ (अलीगढ़, हाथरस, सासनी, अतरौली, सिकंदराराऊ, खैर) है जिनकी कुल जनसंख्या ३,७७,०३१ व्यक्ति है, जिसका अनुपात राज्य की नगरीय जनसंख्या (१४·०२%) से अधिक (१७·८५%) है। स्त्री-पुरुष अनुपात की दृष्टि से जनपद में स्त्रियों की संख्या प्रति हजार पुरुषों पर ८३४ है, जो कि राज्य के अनु-पात (८७९ स्त्रियाँ) से कम है। जनपद की विभिन्न तहसीलों का, जनसंख्या की दृष्टि से, तुलनात्मक विवरण पृष्ठ २६० दी गयी तालिका से स्पष्ट है—

जनपद की १९०१ में कुल जनसंख्या १२,००,८२२ थी, जिसमें सन् १९११, '२१, '३१, '४१, '५१, '६१, व '७१ में क्रमशः —२९३, —८·९२, +१०·३६, +१७·१५, +१२·४५, +१४·३७ व +१९·६३ प्रतिशत की दशाब्दिक वृद्धि हुई है। सन् १९०१ से १९७१ तक कुल ७५·९ प्रतिशत वृद्धि होकर वर्तमान (१९७१) में जनपद की कुल जनसंख्या २१,११,८२९ हो गयी है। जनपद का लिंग अनुपात (Sex Ratio) क्रमशः घट रहा है, जो इस तथ्य से स्पष्ट है कि १९०१ में यह ८९१ था जो अब घटकर १९७१ में ८४३ रह गया है। जिले में अनुसूचित जातियों की संख्या २१·३ प्रतिशत (४,५०,५०९) तथा अनुसूचित जातियों की जनजनसंख्या केवल ४२० है। जनपद के शिक्षा के स्तर में क्रमशः वृद्धि हो रही है, सन् १९६१ में नगरीय तथा ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षित व्यक्तियों का प्रतिशत क्रमशः ३७·७ व १६·३ था जो १९७१ में बढ़कर क्रमशः ४१·२ व २१·३ प्रतिशत हो गया है। इस प्रकार जनपद में कुल शिक्षित व्यक्तियों का प्रतिशत अब २४·९ हो गया है। किंतु कार्यशील व्यक्तियों का प्रतिशत विगत दशाब्दी की तुलना में घट गया है। सन् १९६१ में कुल कार्यशील व्यक्ति ३१४ प्रति हजार थे जो १९७१ में घटकर २७३ व्यक्ति प्रति हजार रह गये हैं। इनमें कार्यशील पुरुष ४९० तथा स्त्रियां केवल १४ प्रति हजार हैं।

जैसा कि तालिका से स्पष्ट है, जनपद में ५ हजार से अधिक आबादी वाले ग्रामों की कुल संख्या १७ है, केवल दो गाँव ऐसे हैं जिनकी आबादी १० हजार से अधिक है। जिले के लगभग ६० प्रतिशत (१,००५) गाँव के मध्यम आकार के

तहसील	क्षेत्रफल (वर्ग कि० मी०)	जनसंख्या	घनत्व (प्रति वर्ग कि०मी०)	गांवों की संख्या		कस्बों की संख्या	५,००० से अधिक आबादी वाले गांव	रिहायसी मकानों की संख्या	परिवारों की संख्या
				आबाद	गैर आबद				
१. खैर	१,०४०·४	३,२५,०७४	३१२	२७८	५	—	४	५०,००८	५४,५९५
२. कोल	९१७·९	५,६९,२९७	६२०	३४०	१७	१	२	८४,६१५	९८,७५८
३. इगलास	५५२·२	१,९१,९७८	३४८	१८९	—	—	१	३०,४८२	३५,३३७
४. हाथरस	७५५·२	३,७०,४२३	४९०	३६५	१३	३	१	५७,९९७	६४,७१२
५. अतरौली	८९१·५	३,५३,२९८	३९६	२९८	११	१	३	५४,५९०	६३,५९६
६. सिकंदराऊ	८७२·८	३,०१,७५९	३४६	२४७	६	१	६	४३,१२५	५६,००६
योग	५,०२४०	२१,११,८२९	४२०	१,७१७	५२	६	१७	३,२०,७८७	३,७२,९७४

(जनसंख्या ५०० से २००० तक) हैं। २०० से कम आबादी वाले गाँवों की संख्या यहाँ केवल ९७ है।

कृषि एवं उद्योग

जनपद की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि है। शस्य-संयोजन (Crop-combination) की दृष्टि से 'बाजरा' प्रथम स्थान रखता है जो कि कृषि भूमि के १९·५ प्रतिशत भाग पर पैदा किया जाता है। बाजरे के अतिरिक्त गेहूँ तथा मटर क्रमशः दूसरा व तीसरा स्थान रखते हैं। अन्य महत्वपूर्ण फसलें चना, जौ, अलसी, मसूर (रबी) तथा चावल, गन्ना, ज्वार, मक्का, उर्द, मूँग, मोठ (खरीफ) आदि हैं। यहाँ गुलाब (फूल) की खेती बरवाना और हसायन में होती है, जिससे अर्क और इत्र बनाया जाता है। फलोत्पादन की दृष्टि से जनपद में आम, अमरूद व बेर मुख्य स्थान रखते हैं। किसानों को उत्तम किस्म के बीज उपलब्ध हो सकें इस हेतु यहाँ २४ गोदाम सहकारी समितियों द्वारा तथा ६ राज्य सरकार द्वारा कार्यरत हैं।

औद्योगिक दृष्टि से जनपद अधिक विकसित नहीं कहा जा सकता क्योंकि लघु उद्योगों के अतिरिक्त यहाँ कोई वृहत् उद्योग स्थापित नहीं है। प्रायः अलीगढ़ के ताले, दरियाँ, पीतल व बिजली का सामान; हाथरस में सूती वस्त्र, चाकू व पीतल के बर्तन; हसायन में इत्र व गुलाबजल; सासनी में काँच का सामान; सिकंदराऊ व छर्रा में दरियाँ, अतरौली में पीतल के बर्तन तथा छेरत में मक्खन बनाने से संबंधित अनेक इकाइयाँ स्थापित हैं।

ऐतिहासिक एवं धार्मिक स्थल

अनेक गौरव-गाथाओं से संबंधित इस जनपद में ऐसे कई स्थान हैं जिनका ऐतिहासिक एवं धार्मिक महत्व है। अलीगढ़ नगर में ही आज से लगभग ४०० वर्ष पूर्व पुराना किला, जामा मस्जिद, अचल ताल, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, गेसू खाँ (कब्र), खैरेश्वर महादेव, जवाहर पार्क आदि महत्वपूर्ण स्थल हैं। इनके अतिरिक्त टप्पल कस्बे में लगभग ८०० वर्ष पुराने किले के खंडहर, चंडौस में चौहान वंश के राजाओं के किले के खंडहर तथा विजयगढ़ में पुंढीर वंश के राजाओं के किले के खंडहर आज भी विद्यमान हैं। बेसवाँ कस्बे के पास 'धरनीधर' नामक एक तालाब है, जिसके बारे में किंवदंती है कि यह कभी ऋषि विश्वामित्र का हवनकुंड था। इनके अतिरिक्त भी जनपद में अन्य कई ऐतिहासिक महत्व के स्थान हैं।

—भूगोल-विभाग
सनातनधर्म महाविद्यालय,
मुजफ्फरनगर (उ० प्र०)

"ऐतिहासिक पृष्ठभूमि"

—डा. फूलबिहारी शर्मा

अलीगढ़ अथवा 'कोल' जनपद ब्रजमंडल का एक भाग है। 'कोल' इस क्षेत्र का प्राचीनतम नाम है। जो अलीगढ़ की मुख्य तहसील के नाम के रूप में अब तक प्रचलित है। मध्यकाल में इसके रामगढ़, मुहम्मदगढ़, साबितगढ़, अलीगढ़ नाम भी रखे गये जिनमें अंतिम नाम सर्वाधिक प्रचलित हुआ। 'कोल' नाम के संबंध में भाषाशास्त्र और जनश्रुतियों के सहारे कई अनुमान किये गये हैं। भगवान् राम के पुत्र कुश से इसका संबंध जोड़कर इसे 'कौशल' का विकृत रूप माना गया है। इसे 'ब्रजकोर' शब्द से व्युत्पंन भी माना गया है। इसे राजा कौशखि से संबंधित भी माना गया है। उक्त नाम के संबंध में कोहल ऋषि की भी चर्चा हुई है। जनमानस इसे कोलासुर से संबंधित मानता है। ये अनुमान हैं और पौराणिक या ऐतिहासिक अथवा अन्य सूत्रों से परिपुष्ट मत नहीं हैं।

इस क्षेत्र का 'कोल' नाम अपने मूल रूप में प्रचलित है और यह किसी शब्द का विकृत रूप नहीं है। अलीगढ़ के इतिहास की खोज का काम व्यवस्थित रूप से नहीं हुआ है और इस संबंध में प्रायः जो कुछ कहा जाता है उसके पीछे चिंतन कम और अनुमान अधिक होता है। पुराणों में हमारे देश का प्राचीनतम इतिहास काव्य-मय रूप में सुरक्षित है। उक्त परंपरा के अनुसार महाराज मनु से मानव-वंश चला। उनके ज्येष्ठ पुत्र इक्ष्वाकु ने अयोध्या पर तथा एक अन्य पुत्र नाभाग ने यमुना तट पर राज्य किया। त्रेता युग में चंद्रवंशी राजा ययाति के पाँच पुत्र हुए जिनमें से अनु ने गंगा-यमुना के प्रदेश के उत्तरी भाग पर शासन किया। 'कोल' इसी क्षेत्र में है। इसके पूर्व में गंगा और पश्चिम में यमुना बहती है। राजा ययाति की दसवीं पीढ़ी में—यानि त्रेता युग के मध्य में—'कोल नामक राजा हुआ। उसके पूर्वज अनेक पीढ़ियों से इस क्षेत्र पर शासन कर रहे थे, उसने भी शासन किया। प्राचीन जातियों के एक विशेषज्ञ ने उसे कोलों का आदि पुरुष माना है। कोल एक नदी विहीन क्षेत्र है, जिसे प्राचीन काल में अपवित्र माना जाता था। 'कोल' शब्द का अर्थ है 'बहिष्कृत' या 'पतित जाति का व्यक्ति'। इस नदी-विहीन क्षेत्र में कोल-किरात आदि जंगली जातियाँ बसी थीं। इस प्रकार यह कोल शब्द एक पौराणिक राजा, एक आदिम जाति और क्षेत्र विशेष से कालांतर में जुड़ गया। कोल यहाँ द्वापर युग में भी थे जब बलराम ने कोलासुर को मारा था। संभवतः आज के कोली उन कोलों की संतान हैं और अलीगढ़ में विशाल संख्या में हैं।

प्रागैतिहासिक युग का स्मरण कराने वाले कई स्थान अलीगढ़ में हैं। देवी दुर्गा ने जिस दुर्वर्ष राक्षस चंड का संहार किया था उसका निवास-स्थान 'चंडौस' (चंडवास) माना जाता है। 'मोरथल' (मुरस्थल) मुर राक्षस से संबद्ध है जिसे भगवान विष्णु ने मारकर 'मुरारि' नाम पाया। यहाँ पर कनिंघम ने खुदाई कराई थी और प्राचीन अवशेष निकाले थे। 'मुरसान' (मुर श्मशान) वह स्थान है जहाँ उस राक्षस की अंतिम क्रिया हुई। भगवान् राम की वानर-सेना के प्रसिद्ध सेनापति मैंद और द्विविद वानरों का संबंध मैंडू (मैंदपुर) और देदामई (द्विविदमयी) से है। त्रेता युग तक के इन उल्लेखों से यह माना जा सकता है कि उस समय असुर, वानर, कोल आदि अनार्य जातियों का यहाँ वास था।

द्वापर में यह क्षेत्र शूरसेन जनपद के यादवों के अधीन रहा और कृष्ण-बलराम की क्रीडाभूमि बना। बलराम ने इस क्षेत्र के कोल नामक असुर को मारकर जनजीवन की रक्षा की थी। हरदुआगंज का 'हरदुआ' भाग बलराम के सेनापति हरदेव के नाम पर बसा माना जाता है। यहाँ पर बलराम की दसवीं शताब्दी की मूर्ति है जो पुरातात्विक महत्व की है। ग्राम औंधुवा (उद्धवपुरा) कृष्ण के मित्र उद्धव का स्मरण कराता है और ग्राम 'सुदामा' उनके दीनबालसखा की स्मृतियाँ सँजोए है। हसायन कृष्ण की लीलाओं से जुड़ा 'हास्यवन' है और रुदायन रुद्रवन है।

गौतम बुद्ध के युग से हमारे देश के इतिहास के अधिक निश्चित प्रमाण मिलने लगते हैं। कनिंघम ने अलीगढ़ जिले में कई स्थानों पर खुदाई करायी थी और साँकरा, गोहनखेड़ा तथा लाखनूं में बौद्ध स्तूप होने की संभावना प्रकट की थी। बौद्ध-ग्रंथ 'अंगुत्तर निकाय' में उल्लखित सोलह महा जनपदों में शूरसेन महा जनपद भी है जो ब्रजमंडल का पुराना नाम है। सिकंदर के आक्रमण से पूर्व यह महापद्मनंद के साम्राज्य का एक अंग बन गया था और बाद में मौर्य साम्राज्य के अंतर्गत रहा। सन् १८५ ई० पू० में पुष्यमित्र शुंग ने अंतिम मौर्य सम्राट वृहद्रथ को मारकर मगध साम्राज्य पर अधिकार कर लिया। अलीगढ़ जिले में जहाँ-जहाँ खुदाई करायी गयी थी वहाँ लगभग सब जगह शुंग काल की सामग्री मिली। अलीगढ़ नगर में ऊपरकोट क्षेत्र के दक्षिणी भाग में शुंगकालीन पात्रों के अवशेष मिले। पुष्यमित्र के पुत्र अग्निमित्र के ताँबे के सिक्के उत्तरी पांचाल तक मिले हैं।

शुंगों के काल में शकों के आक्रमण प्रारंभ हो गये थे और धीरे-धीरे उन्होंने उत्तरी-पश्चिमी भारत पर अधिकार कर लिया। शक सम्राटों के भारतीय प्रांतों के शासक क्षत्रप कहलाते थे। मथुरा क्षत्रप का अधिष्ठान था। मथुरा के प्रारंभिक क्षत्रप हगामष और हगान के अनेक सिक्के मिले हैं। इनका उत्तराधिकारी महा क्षत्रप 'राजुल' हुआ। इसका पुत्र सुदास वि० सं० ७२ अर्थात् सन् १४ ई० में महा क्षत्रप हुआ। शक-कुषाण शासकों में सबसे प्रतापी कनिष्क हुआ। उसका भारतीय साम्राज्य पंजाब-सिंध से पाटलिपुत्र तक विस्तृत था और इस क्षेत्र में उसके अनेक लेख, सिक्के, मूर्तियाँ मिली हैं। कोल में भी उसके सिक्के प्राप्त हुए हैं। जिले में

शक-कुषाण काल की एक विशाल तथा भव्य बुद्धमूर्ति भी मिली है, जो शीर्ष-विहीन है और अलीगढ़ विश्वविद्यालय के संग्रहालय में है। अलीगढ़ में अनेक स्थानों पर शक-कुषाण युगीन सामग्री मिली है। कनिष्क के बाद वासिष्क, हुविष्क और वासुदेव ने राज्य किया। वासुदेव ने १५२ से १७६ ई० तक राज्य किया। उसके समय में कुषाण साम्राज्य मथुरा मंडल तक सीमित रह गया था। अलीगढ़ में कई स्थानों पर इस युग के सिक्के तथा पात्रों के अवशेष मिले हैं।

कुषाणों की शक्ति क्षीण होने पर इस क्षेत्र में नागों का प्रभाव बढ़ा। ईसा की तीसरी शताब्दी के अंत और चौथी शताब्दी के प्रारंभ में नागों ने उत्तर भारत के बड़े भाग पर अधिकार कर लिया। अहिच्छत्र (पांचाल) के अच्युत नाम, मथुरा के नागसेन और पद्मावती (नरवर, ग्वालियर) के गणपति नाग ने मिलकर महान् विजेता समुद्रगुप्त का प्रतिरोध किया था किंतु वें हार गये। समुद्रगुप्त के दक्षिण-विजय से लौटने पर फिर इन तीनों ने अन्य छह राजाओं को साथ लेकर संघ बनाया और समुद्रगुप्त को चुनौती दी। संघ के नये राजाओं में उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग का शासक मतिल भी संमलित था जिसकी मुहर बुलंदशहर में मिली है। चंद्रगुप्त द्वितीय के इंदौर (बुलंदशहर) में मिले ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि सम्राट ने अंतर्वेदी के 'विषयपति' के रूप में सर्वनाग को नियुक्त किया था। 'विषय' आजकल की कमिश्नरी के समान होता था। इंदौर ग्राम उस समय विषयपति की राजधानी था। सर्वनाग की नियुक्ति से पता चलता है कि नाग उस समय भी प्रभावशाली थे। उत्तर गुप्त का एक खंडित नारी-शीर्ष अलीगढ़ में मिला था जिसका केश-विंयास अत्यंत अलंकृत और सुदंर है।

गुप्तकाल के बाद यह क्षेत्र मौखरि शासक ईशानवर्मन के राज्य का अंग बना और सातवीं शताब्दी के प्रारंभ में हर्ष के साम्राज्य में संमिलित कर लिया गया। राजपूत युग में पहले तो यह क्षेत्र गुर्जर प्रतिहार राजपूतों के अधिकार में रहा जिनकी राजधानी कंनौज थी। इसके बाद दिल्ली के तोमर राजपूतों का उत्कर्ष होने पर कोल उनके अधिकार में चला गया। उस समय राजा डोर कोल का शासक था। अनंगपाल तोमर ने जब अपने दौहित्र पृथ्वीराज चौहान को उत्तराधिकारी बनाया तो कोल चौहानों के अधीन हो गया। लोक-काव्य आल्ह-खंड में उल्लेख है कि जब महोबा नरेश परमाल के सामंत आल्हा-ऊदल अपने भानजे का विवाह करने शंकरगढ़ (सांकरा) आये तब शंकरगढ़ नरेश ने डोर को बंदी बना रखा था। यदि आल्ह-खंड पर विश्वास किया जाए तो यह घटना ११८२ ई० से पहले की रही होगी, क्योंकि उस वर्ष पृथ्वीराज ने महोबा पर अधिकार कर लिया था। लोक विश्वास राजा डोर को नगर के ऊपरकोट के किले का निर्माता मानता है।

सन् ११९२ ई० में मुहंमद गौरी के हाथों पृथ्वीराज के मारे जाने पर मुस्लिम शासन का प्रारंभ हुआ। गौरी के भारतीय प्रदेश के अधिकारी कुतुबुद्दीन ऐबक ने ११९३ ई० में कोल को जीता। कोल के किले में उसे एक हजार घोड़े

तथा अन्य सामग्री मिली। सुल्तान नासिरुद्दीन के समय में सन् १२५४ ई० में बलबन ने कोल की प्रसिद्ध मीनार बनवायी जिसे अंग्रेजों ने १८६१ में तोड़ दिया था। ऊपर कोट पर राजपूतों का एक मंदिर था। सन् १९६१ ई० में इस मंदिर की मूर्तियाँ मिलीं। ये दसवीं और ग्यारहवीं सदी की हैं। सुल्तान बन जाने पर बलबन ने १२६५ ई० में दोआब के विद्रोही 'काफिरों' को दबाने के लिए अभियान चलाया और जलाली का किला बनाया। अलाउद्दीन खिलजी के समय में (१२९६–१३१६ ई०) कोल में लगान कानून बड़ी सख्ती से लागू किया गया था। उस समय किसानों से आधी उपज लगान में ले ली जाती थी। इस कठोरता के परिणामस्वरूप मुहंमद तुगलक के समय (१३२५–५१) में पूरे दोआब में किसान विद्रोह उठ खड़ा हुआ। उसी जमाने में मोरक्को का यात्री इब्नबतूता वहाँ आया। अपने वृत्तांत में उसने कोल, जलाली, दतावली व ताजपुर की चर्चा की है। ये सब कोल के निकटवर्ती स्थान हैं। जलाली में उसे विद्रोहियों ने पकड़ लिया था पर विदेशी यात्री जानकर छोड़ दिया। कोल के विद्रोहियों से मुहंमद तुगलक बड़ा क्षुब्ध था। उसने कोल के एक मुस्लिम विद्वान् शेख शम्सुद्दीन को विद्रोहियों का साथ देने के सदेह में बंदीगृह में डाल दिया था। जहाँ वह मर गया। उसके बेटों को उसने मृत्युदंड दिया था। लोदी सुलतानों के समय की एक विशिष्ट घटना कोल से संबद्ध है। जब १४८८ में बहलोल लोदी की मृत्यु हुई तो जलाली के निकट उसके पुत्र को सिकंदर लोदी के नाम से गद्दी पर बिठाया गया। जलाली के निकट उसके नाम पर बसा सिकंदरपुर गांव है।

पानीपत के युद्ध में बाबर के जीत जाने पर कोल का एक प्रभावशाली व्यक्ति शेख घूरन बाबर का समर्थक बन गया। बाबर ने कुचिक अली को कोल का सूबेदार बनाकर भेजा। सन् १५२८ ई० में बाबर कोल आया था और शेख घूरन के यहाँ ठहरा था। बाबर ने कोल में भवन भी बनवाया था। अलीगढ़ शहर का मोहल्ला बाबरी मंडी उसी के नाम पर बसा है। कोल के बाद बाबर अतरौली व सिकंदराराऊ गया। अकबर (१५५६ से १६०५ ई०) के समय के कई स्मारक अलीगढ़ में विद्यमान हैं जिनमें गेसू खां का मकबरा प्रभावशाली है। उसके समय में कोल में राजपूत जमींदारों का बोलबाला रहा। जहाँगीर के शासक-काल (१६०५ से १६२७ ई०) में कोल नील के व्यापार का केंद्र बना जो निर्यात किया जाता था। गाँव शाहगढ़ में निर्यात के लिए भारी मात्रा में शोरा तैयार किया जाता था। शाहजहाँ ने कोल के गाँव दोषपुर के शेख हातिम को २५ बीघा जमीन देने का फरमान जारी किया था। उसने अपने ज्येष्ठ और प्रिय पुत्र दारा को कोल का फोजदार नियुक्त किया था। गांव दारापुर का संबंध उसी से माना जाता है। औरंगजेब के शासन-काल (१६५८ से १७०७ ई०) में रीतिकाल के प्रसिद्ध कवि भूषण मेंडू के राजा अनिरुद्धसिंह के आश्रय में रहे और उसकी कीर्ति का बखान किया। मुहंमद शाह के समय में नाबित खां कोल का फौजदार व राजस्व अधिकारी बनाया

गया। कोल के अधिकारियों में वह सबसे प्रसिद्ध रहा। उसने कोल के ३ मील उत्तर में साबितगढ़ का किला बनाया। सन् १७२४ ई० में उसने जामा मस्जिद का निर्माण कराया जो आज भी एक सुदंर इमारत है। उसने एक तालाब भी बनवाया जो सुरंग द्वारा जामा मस्जिद से मिला था। उसने हरदुआगंज का गंज भी बसाया। सन् १७०३ ई० में साबित खाँ के मरने पर उसका पुत्र फतह खाँ राजस्व अधिकारी बना। उस समय कस्बा कोल एक खेत के घेरे में था। मामू-भाँजे की कब्रें तब शहर के बाहर उत्तरी किनारे पर थीं। अंबा औलिया की कब्रें जो मुस्लिम मुसाफिर खाने के पीछे हैं, उस समय इमली के जंगल से घिरी थीं। आज भी वहाँ इमली के पेड़ हैं।

उत्तरकालीन मुगल अत्यंत कमजोर हो गये थे और उनके सामंत आपस में लड़ते रहते थे। १८वीं सदी के मध्य में मुहंमद खाँ बंगश ने सिकंदराराऊ के क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। भरतपुर के जाट राजा सूरजमल ने बंगश को हराकर १७५३ ई० में कोल को जीता। उसने किले का विस्तार किया और इसका नाम रामगढ़ रखा। उसने छर्रा-ममौरी से पठानों को खदेड़ दिया और वहाँ गढ़ी बनाई। अहमदशाह अब्दाली ने १७६० ई० के हमले में कोल का आधा क्षेत्र लूट लिया और कस्बा बिलकुल तबाह कर दिया। अब्दाली और मराठों के बीच हुए पानीपत के तीसरे युद्ध में मराठे हार गये। इस हार का लाभ सूरजमल ने उठाया। उसने अपना क्षेत्र और बढ़ा लिया। उसने अचलेश्वर महादेव के प्राचीन मंदिर का जीर्णोद्धार कराया और इसे सुदंर रूप दिया। सन् १७६३ में सूरजमल के मरने पर कोल पर अधिकार करने को कई शक्तियों में टकराव हुआ। मुगल सेनापति मिर्जा नजफ खाँ ने अफरासियाब खाँ को भेजकर कोल पर अधिकार कर लिया और इसका नाम अलीगढ़ रखा। अफरासियाब खाँ के मारे जाने पर माधो जी सिंधिया ने कोल पर अधिकार कर लिया। सन् १७९१ में सिंधिया ने फ्रांसीसी सेनापति डिबाई को दोआब क्षेत्र की जिम्मेदारी सौंपी। डिबाई ने अलीगढ़ को अपना मुख्य कार्यालय बनाया। उस समय यूरोप के कई देशों के लोग नील का कारोबार करने के लिए अलीगढ़ जिले में आ गये थे। १७९७ में दूसरे फ्रांसीसी जनरल पैंरो ने सुरक्षा की कमान संभाली। सिंधिया तथा शाह आलम ने पैंरो को भमोला गाँव माफी में दिया था। फ्रांसीसी इंजीनियरों ने किले को वर्तमान रूप दिया था।

सन् १८०१ से अलीगढ़ के क्षेत्र में अंग्रेज भी पैर बढ़ाने लगे और उन्होंने जलाली, अकराबाद, सिकंदराराऊ पर अधिकार कर लिया था। सासनी को जीतने के लिए उन्हें मुरसान-नरेश भगवंत सिंह से कड़ी टक्टर लेनी पड़ी। तीन महीने के संघर्ष और अंग्रेज सेनापति वलेपर की मृत्यु के बाद ही सासनी पर अधिकार हो सका। भगवंत सिंह की वीरता के गीत आज भी गाये जाते हैं। इसके बाद कचौरा विजयगढ़ अंग्रेजों ने जीते। द्वितीय मराठा युद्ध शुरू होने पर जनरल लेक एक विशाल सेना लेकर १८०३ में कोल के मराठा दुर्ग को जीतने के लिए चला। शहर

पर उसने आसानी से अधिकार कर लिया लेकिन किला जीतने में बड़ी कठिनाई हुई। उसके पत्रों से किले की असाधारण मजबूती और दुर्ग रक्षकों के दृढ़ संकल्प का पता चलता है। उसने लिखा है कि एक-एक इंच पर अंग्रेजों को संघर्ष करना पड़ा। जनरल पैरो शहर कोल के पतन के बाद ही किला छोड़कर चला गया था। सहायक दुर्ग रक्षक बाजीराव युद्ध में मारा गया था। इस प्रकार १८०३ ई० में दौलत राव सिंधिया से अंग्रेजों ने कोल छीन लिया।

इंदौर नरेश यशवंत राव होल्कर ने भी अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया था। वह मराठा-मंडल का सबसे भयंकर योद्धा था। और अंग्रेज सेनाधिकारी उसके नाम से कांपते थे। होल्कर ने कोल पर धावा बोल दिया। नगर-निवासियों ने होल्कर का स्वागत किया। पूरे जिले में उस समय विद्रोह फैला हुआ था। १० सितंबर १८०४ ई० को कोल में अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह भड़क उठा, जिसे कठिनाई से दबाया जा सका। जिले का पश्चिमी भाग होल्कर के कब्जे में था और उत्तर पूर्वी भाग ठाकुर नाहर अली खाँ और ठाकुर दूंदे खाँ के अधिकार में था। सन् १८०७ ई० तक जनरल लेक कठिनाई से शांति स्थापित कर सका। इसके बाद १८१६ ई० के अंत में एक विशाल सेना इकट्ठी करके हाथरस, मुरसान की जाट रियासतों की ओर अंग्रेज बढ़े। राजा दयाराम ने कई महीनों तक दृढ़ता से अंग्रेजों का प्रतिरोध किया जिसके कारण इंगलैंड में भी खलबली मच गयी थी। अंत में अंग्रेजों की विशाल सेना ने हाथरस किला जीत लिया; लेकिन राजा बचकर निकल गया। इसके बाद मुरसान अंग्रेजी क्षेत्र में मिला लिया गया। सन् १८३६ में अलीगढ़ जिले की वर्तमान सीमाओं का निर्धारण हुआ।

मेरठ से १८५७ की क्रांति शुरू होने पर अलीगढ़ में भी विद्रोह भड़क उठा। विद्रोह की तैयारी के सूचक चिह्न रोटी और कंबल पहले ही बाँटे जा चुके थे। विद्रोहियों ने कलक्टर के बँगले में आग लगादी। २० मई १८५७ को जब नारायण नामक एक ब्राह्मण सिपाही को विद्रोह फैलाने के आरोप में फाँसी दी जा रही थी तो ६वीं रेजीमेंट ने खुला विद्रोह कर दिया। जो भी अंग्रेज दिखाई दिया वह मार दिया गया और खजाना लूट लिया गया। जुलाई १८५७ की शुरू में अलीगढ़ में विद्रोहियों का शासन स्थापित हो गया। महबूब खाँ को तहसीलदार तथा हसन खाँ को कोतवाल बनाया गया। ये जिले के जाट जमींदारों के संपर्क में रहे। इस विद्रोह को दबाने के लिए मेजर मांटगोमरी अगस्त के अंत में हाथरस से कोल को चला। शहर के दक्षिणी छोर पर मानसिंह के बाग के निकट विद्रोहियों और अंग्रेजों की टक्कर हुई। विद्रोही हार गये और अंग्रेजों ने फिर कोल पर अधिकार कर लिया। खैर में राव भूपालसिंह चौहान ने २० मई को तहसील पर अधिकार कर लिया था। अंग्रेजों ने राव साहब और उनके १६ साथियों को मृत्युदंड दिया। इगलास में गहलऊ के अमानीसिंह ने पूरे क्षेत्र में आतंक मचा दिया था। उसके लोक गीत आज भी प्रचलित हैं। अमानीसिंह को फाँसी दे दी गयी थी। अकराबाद के विद्रोही

जमींदार मंगलसिंह और महताब सिंह को अंग्रेजों ने मार दिया। कोल के विद्रोहियों को भी फांसी दी गयी। पुरानी कोतवाली के पास 'फाँसी वाला कुआ', पुलिस क्लब के पास बरगद का पेड़, वे स्थान हैं, जहाँ अनेक लोग फांसी पर लटकाये गये थे। सन् १८५७ में हाथरस तहसील में शांति रही थी। उस समय हाथरस, गभाना, छतारी, भीकमपुर के राजाओं और नवाबों ने अंग्रेजों का साथ दिया था। जिन जमींदारों ने अंग्रेजों का विरोध किया था उनकी जमीने छीन ली गयीं; जिनका क्षेत्रफल लगभग २२००० एकड़ था।

इस प्रकार कोल का यह अति संक्षिप्त ऐतिहासिक परिचय है। अलीगढ़ का पूर्ण इतिहास तो काफी विस्तृत है।

—हिंदी-विभाग
अलीगढ़ विश्वविद्यालय, अलीगढ़

अठारहवीं तथा उंनीसवीं सती के साहित्यकार

—डा० गोपाल बाबू शर्मा

इतिहास, धर्म और संस्कृति के साथ-साथ हिंदीं-भाषा तथा साहित्य के क्षेत्र में भी अलीगढ़ जनपद का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। अलीगढ़ में साहित्य-रचना की सुनिश्चित परंपरा १८वीं शताब्दी से प्रारंभ होती है, यद्यपि इससे पूर्व १६वीं शताब्दी में सुप्रसिद्ध संगीतकार स्वामी हरिदास ने ब्रज भाषा में श्रेष्ठ काव्य की रचना की। स्वामी हरिदास का जन्म अलीगढ़ जनपद के हरिदासपुर नामक गाँव में ही हुआ था।

१८वीं शताब्दी में जिन साहित्यकारों ने अपनी काव्य-रचना से अलीगढ़ जनपद को गौरवान्वित किया, उनके नाम हैं—कवि श्री बख्तावर, संत तुलसी साहब और जैन कवि श्री दौलत राम जी। कवि श्री बख्तावर को जन्म देने का सौभाग्य हाथरस नगरी को प्राप्त है। हाथरस के तत्कालीन राजा ठाकुर दयाराम इनके आश्रय-दाता तथा गुरु थे। इन्होंने 'सुनिसार' नामक काव्य ग्रंथ का प्रणयन किया। इस ग्रंथ में बताया गया है कि संसार में और कुछ नहीं, केवल शून्य अर्थात् परमतत्व ही सार है। यह ग्रंथ अभी तक अप्रकाशित है। संत तुलसी साहब १८वीं शताब्दी के सर्वाधिक महत्वपूर्ण कवि हैं। इन्होंने अपना अधिकांश जीवन हाथरस में ही बिताया। इनके द्वारा रचित ग्रंथों की संख्या चार है—१. घट रामायण, २. रत्न-सागर, ३. शब्दावली तथा ४. पद्मसागर। ये सभी ग्रंथ बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद से छप चुके हैं। जैन कवि श्री दौलतराम जी का जन्म भी हाथरस में ही हुआ था। इस ग्रंथ के अतिरिक्त दौलत राम जी ने अनेकानेक भावपूर्ण स्फुट पदों की भी रचना की।

१९वीं शताब्दी में अलीगढ़ जनपद ने हिंदी जगत् को अनेक कवि और लेखक दिये। संत तुलसी साहब के शिष्य श्री सूर स्वामी ने ब्रज-भाषा में अध्यात्म संबंधी स्फुट पद-रचना की। हाथरस के कवि श्री बल्देवदास जौहरी के लिखे अनेक ग्रंथ बताए जाते हैं। लेकिन प्रामाणिक रूप से इनके दो ग्रंथ हैं—(१) श्रीकृष्ण जन्म खंड (२) रामचंद्र हनुमान की नामावली। 'श्रीकृष्ण जन्म खंड' की रचना सन् १८४६ ई० में हुई। यह श्री ब्रह्मवैवर्त पुराण के चतुर्थ खंड का हिंदी पद्य में भाषानुवाद है। यह महत्वपूर्ण ग्रंथ सन् १८६७ ई० में प्रथम बार आगरा से लीथो टाइप में प्रकाशित हुआ था। ६५६ पृष्ठों का यह ग्रंथ अब दुर्लभ हो गया है।

ठाकुर गिरिप्रसाद वर्मा अलीगढ़ जनपद के अंतर्गत बेसवाँ के रईस और ताल्लुकेदार थे। कहा जाता है कि संस्कृत के प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् श्री मैक्समूलर से आपका घनिष्ठ परिचय था। आपने 'श्री वेदार्थ प्रदीप गिरधर भाष्य' की रचना की। यह एक वृहद् गद्य-टीका—ग्रंथ है और लीथो टाइप में मुद्रित है। इसमें ११८२ पृष्ठ हैं।

भारतेंदु-मंडल के लेखक बाबू तोताराम वर्मा ने हिंदी भाषा तथा साहित्य की जो सेवा की, वह सदैव स्मरणीय रहेगी। बाबू तोताराम वर्मा हिंदी के बड़े भारी प्रचारक और उसके प्रबल समर्थक थे। भारतेंदु जी के सदृश आप भी यह मानते थे कि देश की उंतति के लिए देश-भाषा हिंदी की उंनति होना परमावश्यक है। यही कारण था कि आपने हिंदी के लिए डट कर कार्य किया। जहाँ उन्होंने 'स्त्री-धर्म बोधिनी', 'नीतिरत्नाकर', विवाह-विडंबन नाटक' आदि कृतियों द्वारा स्त्री-शिक्षा, मानवोत्थान तथा समाज-सुधार का मार्ग प्रशस्त किया, वहाँ जोसेफ एडीशन के नाटक ग्रंथ 'ट्रेजेडी आफ केटो' के हिंदी अनुवाद द्वारा देश-प्रेम की भावना को जागरित किया। उस युग में जबकि हिंदी-साहित्य में स्वातंत्र्य-भावना उदय हुई थी और राष्ट्रीयता का प्रसार अंग्रेजी राज्य की संगीनों के मध्य हो रहा था, बाबू तोताराम जी द्वारा अंग्रेजी की ही एक कृति को साधन बनाकर अंग्रेजों के निरंकुश शासन के प्रति तीव्र विरोध की भावना प्रकट करना, उनकी असाधारण दूरदर्शिता का परिचायक था।

हिंदी के प्रचार-प्रसार में सासनी के मुंशी नवलकिशोर जी का नाम भी उल्लेखनीय है। मुंशी जी ने लखनऊ में अपना मुद्रणालय स्थापित किया।' अवध-अखबार' और—'अवध-रिव्यू' नामक पत्र निकाले तथा अपने जीवन-काल में लगभग चार हजार पुस्तकें प्रकाशित कीं। उन्होंने स्वयं कई पुस्तकों की आलोचनाएँ एवं भूमिकाएँ भी लिखीं। सासनी के ही पं० व्रजवल्लभ मिश्र तथा दुलारेलाल भार्गव ने भी हिंदी-साहित्य-रचना में अपना महत्वपूर्ण योग दिया।

कवि श्री नाथूराम शंकर शर्मा तथा पं० सत्यनारायण कविरत्न, तो ऐसे साहित्यकार हैं, जिनके कारण अलीगढ़ जनपद सदैव अपने को धन्य मानता रहेगा। शंकर जी एक उच्चकोटि के प्रतिभाशाली आशुकवि थे। उन्होंने व्रजभाषा तथा खड़ी बोली दोनों को ही अपने काव्य का माध्यम स्वीकार किया। घनाक्षरी छंद के तो वे द्विवेदी युगीन बेजोड़ रचनाकार थे। शंकर जी के एक मित्र पं० राधावल्लभ शर्मा शेखूपुर निवासी थे। शंकर जी तथा डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' के पितामह श्री राधावल्लभ जी का पत्र-व्यवहार घनाक्षरी छंदों में हुआ करता था। वे घनाक्षरी छंद डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' के गाँव शेखूपुर में एक बही में सुरक्षित हैं। शंकर जी की उत्कृष्ट काव्य-सर्जना से प्रभावित होकर विद्वानों ने उन्हें 'कविता-कानन-केसरी', 'भारत-प्रज्ञेंदु', 'कविता-कामिनी-कांत' आदि अनेक उपाधियों से विभूषित किया था।

व्रजभाजा के प्रसिद्ध कवि श्री सत्यनारायण 'कविरत्न' अलीगढ़ जनपद की सिकंदराराऊ तहसील के अंतर्गत सराय नामक गाँव में जन्मे थे। 'हिंदी उत्तर राम-

चरित नाटक', 'देशभक्त होरेशस', 'मालती-माधव', 'हृदय-तरंग' आदि उनकी महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं। भवभूति कृत 'उत्तर रामचरित' का हिंदी अनुवाद श्री कविरत्न जी की अत्यंत उत्कृष्ट रचना है। मूल ग्रंथ के श्लोकों का ब्रजभाषा-पद्यानुवाद कहीं तो इतना उच्च और कवित्वपूर्ण है कि अनुवादक मूल स्रष्टा से भी कुछ आगे दृष्टिगत होता है। सत्यनारायण जी का स्वर अत्यंत मधुर था। अपनी मादक-स्वर लहरी के कारण वे 'ब्रजकोकिल' कहे जाते थे।

श्रीमुकुंदराय, श्री वासुदेव वासम, श्री स्वामी निर्भयानंद, श्री छोटे लाल जैन, श्री ब्रजदुलारी, श्रीरामचंद्र माहेश्वरी, श्रीश्याम द्विज, श्री कर्णसिंह 'कर्ण' आदि कवियों ने भी अपनी काव्य कृतियों के सुमनों से हिंदी-मंदिर को सुवासित किया है।

विजयगढ़-वासी दीवान रूपकिशोर जैन ने कहानी, उपन्यास, नाटक आदि विभिन्न क्षेत्रों में लिखकर अपनी अनेक मौलिक और अनूदित कृतियों से हिंदी-साहित्य को अलंकृत किया। अलीगढ़ नगर के साहित्यकारों में श्री प्यारेलाल वृष्णि का नाम भी उल्लेखनीय है। इन्होंने गद्य-पद्य दोनों में समान रूप से अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है।

अलीगढ़ जनपद ने साहित्यिक संस्थाओं तथा पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से भी हिंदी की महती सेवा की है। बाबू तोताराम जी के प्रयत्नों से अलीगढ़ में 'भारतवर्षीय नेशनल एसोसिएशन' के तत्वावधान में सन् १८८९ ई० में सार्वजनिक 'लायल लाइब्रेरी' का निर्माण हुआ। इसकी प्रथम मंजिल में ही उस समय ३९८८६ रु० व्यय हुए। 'मालवीय पुस्तकालय' के रूप में यह संस्था आज भी कार्य कर रही है।

भाषा-संवर्द्धिनी सभा का महत्व तो इसी से जाना जा सकता है कि इसके अध्यक्ष राजा लक्ष्मणसिंह थे। इस सभा ने अनेक हिंदी पुस्तकों का प्रकाशन किया। श्री संनूलाल गुप्त कानूनगो द्वारा लिखित 'स्त्री-संबोधिनी' जैसी विख्यात पुस्तक की रचना भाषा संवर्द्धिनी सभा की प्रेरणा से हुई थी, बाद में यह पुस्तक सभा की ओर से पुरस्कृत तथा प्रकाशित भी की गयी।

अलीगढ़ से पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध अर्थात् भारतेंदु-युग से प्रारंभ हुआ। बाबू तोताराम वर्मा द्वारा प्रकाशित तथा संपादित 'भारत-बंधु' साप्ताहिक का अपना विशेष स्थान रहा है। इस पत्र का प्रकाशन १८७७ ई० में आरंभ हुआ। अपने तेरह वर्षीय जीवन-काल में इस पत्र ने हिंदी की उंनति में बड़ा प्रशंसनीय कार्य किया। 'भारत-बंधु' के अतिरिक्त १९वीं शताब्दी में मासिक 'मंगल-समाचार', 'द्विज पत्रिका', 'हिंदी पंच', तथा साप्ताहिक 'प्रताप' भी अलीगढ़ से प्रकाशित हुए।

—हिंदी-विभाग
श्री वार्ष्णेय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
अलीगढ़—२०२००१ (उ० प्र०)

बीसवीं शती के कवि और संगीतकार

—डा० आदित्य प्रचंडिया 'दीति'

बीसवीं शती के अलीगढ़ जनपद के कवियों और संगीतकारों का संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत करना हमारा अभिप्रेत हैं—

चंपाबाई (जन्म सन् १८५६ ई०—निधन सन् १९२४ ई०)

कवयित्री चंपाबाई का जन्म खिरनीगेट अलीगढ़ में खंडेलवाल जैन परिवार में श्री मोहनलाल जैन के यहाँ हुआ था। आपका दिल्ली निवासी लाल सुंदरलाल टोंग्या के साथ विवाह हुआ, किंतु तीन वर्ष की अल्पावस्था में आप विधवा हो गयीं। कवयित्री चंपाबाई ने 'चंपा शतक' का प्रणयन किया। समूचा शतक-काव्य पदों में रचा गया है। इन पदों का प्रतिपाद्य-विषय आध्यात्मिक है।

गोकुलचंद्र शर्मा (जन्म सन् १८८८ ई०—निधन सन् १९५८ ई०)

सासनी के समीप स्थित ग्राम 'हरी का नंगला' या 'हरिया नंगला' के निवासी श्री भूपालदेव के यहाँ श्रीमती रामेश्वरी देवी की कोख से स्वनामधन्य पं० गोकुलचंद्र शर्मा का जन्म हुआ। कविवर शर्मा छत्तीस वर्षों तक डी० एस० कालेज संस्था में हिंदी-संस्कृत विभाग के अध्यक्ष रहे। पंडित गोकुलचंद्र शर्मा मानवतावादी कवि थे। सांस्कृतिक काव्य-सृष्टि के परिपोषक, स्वाभिमानी व्यक्ति, राष्ट्रीयता से अनुप्राणित, खड़ी बोली के हिमायती थे। आपने प्रणवीर प्रताप, गाँधी गौरव, तपस्वी तिलक, अशोक वन, नामक चार खंड-काव्य, एक मुक्तक संग्रह 'मानसी' तथा तीन कविता-संग्रह पद्य प्रदीप, धरती के ध्रुव तारे, मंगल-मार्ग आदि का प्रणयन किया। आपने एक महाकाव्य 'महाभारत' की भी सर्जना की जो अपूर्ण और अप्रकाशित है। आपने बाल्मीकि रामायण के अरण्य कांड, किष्किंधा कांड का ब्रजभाषा में अनुवाद भी किया, जो अप्रकाशित है। डा० सियाराम उपाध्याय ने 'द्विवेदी युगीन पृष्ठ-भूमि में श्री गोकुलचंद्र शर्मा का योगदान' विषय पर शोध प्रबंध रचकर सन् १९७३ ई० में पी०-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की।

अलीगढ़ जिले की कोल तहसील के कस्वा अकराबाद के मूल निवासी पं० गंगाप्रसाद जी 'अजल' हिंदी-उर्दू के प्रसिद्ध कवि थे। अजल जी फारसी और उर्दू के भी अच्छे शायर और आलिम थे। ब्राह्मण वंश में उत्पंन होने के कारण हिंदी के प्रति भी इनका बहुत झुकाव था। आपने हिंदी की कविताएँ भी लिखीं। 'कला में अजल' आपकी प्रसिद्ध कृति है। ब्रज भाषा में श्री गंगाप्रसाद 'अजल' की मुक्तक कविताओं का संग्रह तीन भागों में प्रकाशित है। उसमें अधिकतर दोहे और घनाक्षरी

छंद हैं। उन संग्रहों में श्री अंब्रा जी की कविताएँ और उनके अज्ञान में अजल जी की कविताएँ भी संगृहीत हैं।

हरिशंकर शर्मा (जन्म सन् १८९० ई०—निधन सन् १९६९ ई०)

द्विवेदी युगीन पं० नाथूराम शंकर शर्मा 'शंकर' के सुपुत्र पं० हरिशंकर शर्मा का जन्म अलीगढ़ जनपद के हरदुआगंज कस्बे में हुआ था। पं० हरिशंकर शर्मा संपादकाचार्य कहलाते थे। आपने 'आर्य मित्र' पत्र का संपादन वर्षों किया था। हास्य रस के प्रसिद्ध गद्य लेखक होने के साथ-साथ पंडित जी खड़ी बोली हिंदी के अच्छे कवि भी थे। इनका एक कविता-संग्रह (संभवतः घास-पात) बहुत प्रसिद्ध हुआ। डा० बनारसीदास चतुर्वेदी (फिरोजाबाद) और पं० हरिशंकर शर्मा की बड़ी मित्रता थी। दोनों ही साहित्यकारों ने श्री पद्मसिंह शर्मा से बड़ी प्रेरणा ली थी। श्री चतुर्वेदी तथा श्री शर्मा जी ने श्री पद्मसिंह शर्मा के साहित्य के प्रति असीम श्रद्धा व्यक्त की थी। पं० हरिशंकर शर्मा का जीवन प्रायः लोहा मंडी, आगरा में ही व्यतीत हुआ। इनकी काव्य-कृतियों में 'महर्षि महिमा' और रामराज्य पर्याप्त प्रसिद्धि पा चुकी हैं।

यज्ञदत पुरोहित 'यज्ञेश' (जन्म सन् १८९३ ई०—निधन सन् १९६७ ई०)

जयगंज अलीगढ़ में जन्मे श्री 'यज्ञेश' जी ने संस्कृत क्वींस कालिज की शास्त्री उपाधि परीक्षा और हिंदी साहित्य संमेलन से साहित्य-रत्न परीक्षा उत्तीर्ण की। अलीगढ़ विश्वविद्यालय के पूर्व संस्कृत विभागाध्यक्ष पं० रामस्वरूप शास्त्री आपके गुरु थे। अध्यापकी के साथ-साथ आप पौरोहित्य कर्म भी करते थे। 'यज्ञेश' जी हाथरस के कवि संमेलन में 'समस्या सम्राट्' की उपाधि से संमानित हुए। आपको सन् १९५१ ई० में अतरौली के कवि-संमेलन में प्रथम पुरस्कार के लिए 'अमर शहीद' शील्ड भी प्राप्त हुई। आपके जीवन का उत्तरार्ध जयगंज अलीगढ़ में स्थित मुरली मनोहर मंदिर में भक्ति और पौरोहित्य कर्म करते बीता। आप मूलतः संस्कृत कवि थे। आर्या, अनुष्टप, द्रुत विलंबित, भुजंग प्रयात और शार्दूल विक्रीडति छंद आपके प्रिय छंद रहे हैं। यज्ञेश जी चंग पर ख्याल गाया करते थे। आपका व्यक्तित्व हास-परिहास से संपृक्त था तथा स्वर में माधुर्य का समावेश था। आपने हिंदी, उर्दू कविताओं के अतिरिक्त 'घनदासः' नामक संस्कृत प्रहसन भी रचा है। आपकी रचनाओं का प्रकाशन आपके पौत्र श्री सतीश कुमार वशिष्ठ करा रहे हैं।

पं० यज्ञदत्त शर्मा 'यज्ञेश' के ही जोड़ीदार तथा प्रसिद्ध लोक कवि श्री रोशनलाल शर्मा 'औघड़' का नाम प्रसिद्ध है। इनका जन्म खाईडोरा, जयगंज में हुआ था। ये ज्वाला प्रसाद भगत जी के शिष्य थे और झूलना, रसिया, कवित्त और ख्याल रचते थे। औघड़ जी कई अखाड़ों के उस्ताद थे। पं० रोशनलाल शर्मा का निधन अपने छोटे भाई पं० बद्रीप्रसाद एवं पं० बिशंभर दयाल के यहाँ खाईडोरा, अलीगढ़ में हुआ। इनके शिष्यों में आज-कल ख्याल-गायकों में जवाहरलाल (सराय खिरनी) जीवित हैं, जो ख्यालों के दंगलों में जाया करते हैं। हाथरस का खिच्चू

आटे वाला लोक-कवि बहुत प्रसिद्ध हो गया है। खिच्चू आटे वाले रसियों के प्रसिद्ध गायक और सर्जक थे। यह औघड़ जी के समकालीन थे।

खिच्चू आटे वाले के समकालीन एक प्रसिद्ध लोक-गायक गनेसा थे, जो जिकड़ी भजनों के सर्जक भी थे। यह जाति के सारस्वत ब्राह्मण थे और तहसील इगलास में धाना गाँव के निवासी थे।

ठाकुर जगनसिंह सेंगर (जन्म सन् १९०३ ई०, निधन सन् १९७५ ई०)

सेंगर जी का जन्म सिकंदराराऊ तहसीलांतर्गत ग्राम 'राजनगर' में हुआ। आपकी शिक्षा हाथरस में हिंदी मिडिल तक हुई। तत्पश्चात् म्यूनिस्पिल बोर्ड, अलीगढ़ के शिक्षा-विभाग में अध्यापक हुए। यहाँ आपने संस्कृत और हिंदी का विधिवत् स्वाध्याय किया। सन् १९३३ ई० से 'शिक्षक बंधु' मासिक पत्र का दीर्घकाल तक आपने संपादन किया। सेंगर जी अच्छे व्यंग्यकार थे। आपकी प्रतिभा, परिपक्व और पैनी लेखनी से प्रसूत 'किसान सतसई', सेंगर शिक्षक सतसई, दयानंद दर्शन, मनियाडर मुक्तावली, झाँकी, मुरली, पिंगल पराग, गूढ़ार्थ चंद्रिका, आदर्श निबंधावलि सशक्त प्रकाशित रचनाएँ हैं। 'किसान सतसई', उत्तर प्रदेश सरकार तथा ब्रज साहित्य मंडल से पुरस्कृत कृति है। आपने 'आदर्श अभिनव मंजरी' कविता-संग्रह का तथा 'आदर्श अंत्याक्षरी चंद्रिका' का सकुशल संपादन भी किया है।

काका हाथरसी (जन्म सन् १९०६ ई०)

चौहत्तर वर्षीय हास्य सम्राट् श्री प्रभुदयाल गर्ग 'काका हाथरसी' कवि संमेलन के अखिल भारतीय पर्याय बन चुके हैं। आपके कई काव्य-संग्रह प्रकाशित हैं। आपके व्यंग्य गुदगुदाते ही नहीं, अपितु मन की मलिनता का प्रक्षालन भी करते हैं। वस्तुतः हिंदी की हास्य-व्यंग्य कविता को मंच पर स्थापित करने का श्रेय काका हाथरसी को ही है। काका हाथरसी ने २० अगस्त १९८० को स्टेट बैंक ऑफ इंडिया हाथरस में एक लाख रुपया जमा कर दिया है, जिससे 'काका हाथरसी पुरस्कार' अब सन् १९८१ ई० से दस हजार रुपये का हो जाएगा। ३१ मार्च सन् १९८० को सरस्वती महाविद्यालय हाथरस में आयोजित समारोह में उत्तर प्रदेश के मंत्री श्री ब्रह्मदत्त जी ने काका जी को 'चाँदी का शंख' और मान-पत्र देकर संमानित किया। घुमक्कड़ जीवन के अर्जित ज्ञान और अनुभव की संजीवनी सँजोये काका जी संन्यास की ओर उन्मुख हैं।

नवाबसिंह चौहान 'कंज' (जन्म सन् १९०९ ई०)

पूर्व संसद सदस्य श्री नवाबसिंह चौहान 'कंज' का जन्म 'जवाँ' अलीगढ़ में एक संपन्न कृषक-परिवार में हुआ। 'कंज' जी इंटर तक पढ़े और वक्त का तकाजा था कि आप सक्रिय राजनीति में उतर आये। राष्ट्रीय आंदोलन में आप तीन बार जेल गये। आप आठवीं कक्षा से ही कविताएँ लिखने लगे थे। पं० गोकुलचंद्र शर्मा आपके गुरु थे। पं० गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' तथा महाकवि नाथूराम शंकर शर्मा

'शंकर', 'कंज' जी की काव्य सर्जना में प्रेरक रहे। आप राज्य-सभा, लोक-सभा और विधान-सभा के सदस्य रहे। कविवर चौहान मूलतः किसान हैं अतएव किसनई उनकी जीविका का साधन है।

'कंज' जी की खड़ी बोली तथा व्रजभाषा दोनों पर समान अधिकार है। आपका कविता-संग्रह 'बुझा न दीप प्यार का' खड़ी बोली और व्रजभाषा की छिहत्तर कविताओं का सशक्त काव्य-संग्रह है। प्राचीन गाथाओं को आपने अपनी कविताओं में प्राकृतिक दृश्यों के साथ सफलता-पूर्वक उतारा है। आपने लगभग अर्धशतक संगीत रूपक भी रचे हैं, जिनका आकाशवाणी दिल्ली से समय-समय पर प्रसारण होता रहा है।

रविचंद्र शास्त्री 'नीरव' (जन्म सन् १९११ ई०—निधन सन् १९५९ ई०)

गीतकार 'नीरव' का जन्म अलीगढ़ के बड़ौदा ग्राम में हुआ। आप अपने पिता श्री पं० ताराचद्र शास्त्री की इच्छानुसार 'नरवर' में शास्त्री तक पढ़े। तत्पश्चात् बीकानेर से आप आयुर्वेदाचार्य हुए। सन् १९३५ ई० में आयुर्वेद के प्रयोगात्मक अनुभव हेतु कलकत्ता अपने चाचा जी के यहाँ आपका प्रवास रहा। आप पं० गोकुलचंद्र शर्मा के ज्येष्ठ जामाता थे। सन् १९५१ ई० में 'नीरव' जी बंबई वासी हुए। आप कवि संमेलनों और गोष्ठियों में अपनी काव्य-प्रतिभा द्वारा लोकप्रिय रहे। लोक-प्रियता का प्रमाण यह है कि आपके नाम से ही बंबई की एक गली का नाम 'नीरव गली' पड़ गया है। गीतकार नीरव के वेदना, सीप, मरघट, प्रकाशित काव्य-संग्रह हैं। **टीस, रजकण और विराट् नगर** का प्रकाशन 'नीरव प्रकाशन समिति' : बंबई कर रही है। 'वंदना' काव्य-रचना तो महाराष्ट्र सरकार द्वारा पुरस्कृत भी है।

अंबादत्त शर्मा 'अंब' (जन्म सन् १९११ ई०—निधन सन् १९८० ई०)

हरदुआगंज में जन्मे अंब जी पं० नाथूराम शर्मा 'शंकर' के प्रमुख शिष्य थे। पुस्तक-विक्रेता अंब जी 'कवि संमेलन' मासिक और 'राजनीति' साप्ताहिक पत्रों के संपादक रहे। विधवा बहिन लीलावती द्वारा पालित-पोषित अंब जी ने जीवन के आरंभ में वैद्यक व्यवसाय को अपनाया था। समस्या-पूर्ति के माहिर अंब जी का प्रकाशित काव्य-संग्रह 'समय की रागनी' एक उत्कृष्ट काव्य-कृति है।

डा० नगेंद्र (जन्म सन् १९१५ ई०)

प्रसिद्ध मूर्धन्य विद्वान् और विख्यात समालोचक डा० नगेंद्र का जन्म अतरौली में हुआ था। इनके पिता पं० राजेंद्र नगाइच आर्य समाज के प्रसिद्ध विद्वान् तथा लेखक थे। डा० नगेंद्र प्रारंभ में कवि के रूप में ही हिंदी साहित्य में प्रविष्ट हुए थे। डा० नगेंद्र की शिक्षा चंदौसी और आगरा में हुई थी। अपने समय में डा० नगेंद्र की 'छंदमयी' नाम की कविता-कृति ने बहुत ख्याति प्राप्त की थी। आपने हिंदी के आलोचना शास्त्र को व्यापक और पुष्ट बनाया है। आपकी लेखनी सतत क्रियाशील रही है।

पदमचंद्र जैन 'भगत जी' (जन्म सन् १९१५ ई०—निधन सन् १९७९ ई०)

भगत जी का जन्म अलीगढ़ के संभ्रांत छावड़ा गोत्रीय श्री अमोलकचंद्र जैन के यहाँ हुआ था। आपके आगरा के तत्कालीन सुधी कवि श्रीमान् सूरजभान 'प्रेम' गुरु थे। समाज सेवी भगत जी पी० पी० प्रोडक्ट्स प्रतिष्ठान के नियामक श्री प्रकाशचंद्र जैन के समधी थे। 'पदम शतक' आपकी प्रकाशित प्रभावक आध्यात्मिक काव्य-कृति है। इसमें गजल, कव्वाली, पद, भजन इत्यादि बड़े लोकप्रिय छंद भेद हैं तथा सांस्कृतिक मैत्री के द्योतक हैं।

अंबाप्रसाद 'सुमन' (जन्म सन् १९१६ ई०)

प्रसिद्ध भाषाविद्, आलोचक और सशक्त कवि सुमन जी का जन्म अलीगढ़ जिले के 'शेखूपुर' ग्राम में हुआ। आप पं० गोकुलचंद्र शर्मा और डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के शिष्य रहे। आप सन् १९४० ई० से पूर्व प्रतिष्ठित मंचीय कवि रहे। 'उद्गार' और 'अंतर्धारा' नाम से आपके स्फुट कविताओं के दो काव्य-संग्रह हैं। इन संकलनों में प्राचीन और अर्वाचीन धाराओं का समावेश है। डा० सुमन जी को कविता का वरदान अपने पितामह पं० राधावल्लभ जी से मिला था। पं० राधावल्लभ कविवर श्री नाथूराम शंकर शर्मा (हरदुआगंज निवासी) के मित्र थे। पं० राधावल्लभ शर्मा और पं० नाथूराम शंकर शर्मा में पत्र-व्यवहार कविता में भी हुआ करता था, विशेषतः घनाक्षरी छंदों में।

इनके अतिरिक्त अलीगढ़ के सर्व श्री मिश्रीलाल एडवोकेट 'विद्यानंद', खैर के गिरीशचंद्र 'सखा', सिकंदराराऊ के गजराज सिंह 'सरोज' और बाबूलाल 'प्रेमी', अलीगढ़ निवासी पं० इंद्रमणि जैन 'इंद्र', श्री हरिप्रसाद पाठक (नंगलागढ़), श्री बल्लभ जी (सासनी), निरंजनलाल 'लठ्ठ', शांति स्वरूप 'शांत', निर्भय हाथरसी, डा० छैलबिहारी गुप्त 'राकेश', ब्रजभाषा कवि गंगाप्रसाद 'गंग', बाबूलाल 'कुसुम', डा० भगवानसहाय पचौरी, डा० गिरधारी लाल शास्त्री, डा० शिवशंकर शर्मा 'राकेश', डा० विश्वनाथ शुक्ल, मधुर शास्त्री, रमेश रंजक, डा० कमलसिंह, सुरेशचंद्र 'पवन', डा० गोपाल बाबू शर्मा, डा० श्रीराम शर्मा, प्रकाशचंद सनाढ्य, शंकर द्विवेदी, डा० अशोक शर्मा, इनायतपुर बझेड़ा निवासी आनंदपालसिंह 'एकलव्य' (महाकाव्य स्रष्टा), महावीर द्विवेदी, प्रदीप प्रशांत, सुरेश कुमार, बिशनकुमार शर्मा (अनुरागी), श्याम बेबस, रमेश राज, संजीव प्रचंडिया 'सोमेंद्र' आदि अन्य उल्लेखनीय कवि हैं। जनपद के प्रसिद्ध संगीतकार श्री रवींद्र जैन फिल्मी गीतिकार हैं। अलीगढ़ के स्वर्गीय संगीतज्ञों में विश्व-रत्न श्री १०८ स्वामी हरिदास जी महाराज का नाम कौन नहीं जानता? वे अलीगढ़ के निकट हरिदासपुर के निवासी थे। उस ग्राम का नाम स्वामी हरिदास जी संगीताचार्य के नाम पर पड़ा था। हरिदास जी महाराज तानसेन और बैजूबावरा के गुरु थे।

इनके अतिरिक्त अलीगढ़ के अन्य स्वर्गीय संगीतज्ञों में श्री भारतेन्दु और

श्री नाथूराम प्रसिद्धि पा चुके हैं। अलीगढ़ के वर्तमान संगीतज्ञों में सर्व श्री मंगलसैन, सुरेशचंद्र, रमन, मथुरानाथ शुक्ल आदि प्रसिद्ध हैं। तबला वादकों में श्री किशनपाल और बाइलिन वादकों में श्री सुरेश डाक्टर और डा० विश्वनाथ शुक्ल विख्यात हैं। रसिया की गायकी में सोनपाल का नाम उभर रहा है। डा० श्रीराम शर्मा ने अपने विद्यार्थी-जीवन में जिकड़ी भजनों की मंडली में अनेक दंगलों में झंडा गाड़ा है। जिकड़ी भजनों पर डा० शर्मा का शोध-कार्य भी है। अलीगढ़ जिले में तोछीगढ़ गाँव के वोहरे स्व० दुर्गाप्रसाद भी रसिया-गायकों में प्रसिद्ध थे। अब वहाँ आपकी शिष्य मंडली उस परंपरा का निर्वाह कर रही है।

—जैन शोध अकादमी
पुराना हाथरस का अड्डा,
आगरा रोड, अलीगढ़।

'बीसवीं शती के गद्यकार'

—डा० वेदप्रकाश 'अमिताभ'

आधुनिक हिंदी गद्य को अलीगढ़ जनपद की देन असाधारण और अविस्मरणीय है। कुछ गद्यकारों ने जहां उच्च कोटि का सर्जनात्मक साहित्य लिखा है, वहीं कुछ विद्वान् शोध और समीक्षा के क्षेत्र में अपनी ठोस उपलब्धियों के लिए स्मरणीय हैं। श्री बाबू तोताराम, श्री गोकुलचंद्र शर्मा, श्री जैनेन्द्रकुमार, श्री धनीराम 'प्रेम', श्री हरिशंकर शर्मा, डा० दीनदयालगुप्त, डा० नगेंद्र, डा० सरनाम सिंह शर्मा 'अरुण', ला० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, डा० राकेश गुप्त, डा० अंबाप्रसाद 'सुमन', डा० गोवर्द्धन नाथ शुक्ल, डा० ओमप्रकाश आदि लब्ध प्रतिष्ठ लेखकों के अतिरिक्त डा० शिवशंकर शर्मा 'राकेश', डा० गिरिधारीलाल शास्त्री, डा० विश्वनाथ शुक्ल, डा० हरिचरण शर्मा, डा० कमलसिंह, डा० कुँवरपालसिंह, डा० राजपाल शर्मा, डा० सुरेंद्र सुकुमार, डा० श्रीराम शर्मा, डा० राजेंद्र गढ़वालिया या, श्री हरीमोहन, श्री प्रभाकर शर्मा, श्रीमूलचंद्र गौतम आदि ने भी हिंदी गद्य की समृद्धि में यथाशक्ति योग दिया है और दे रहे हैं।

अलीगढ़ जनपद के बीसवीं शती के गद्यकारों में सबसे पहले बाबू तोताराम का उल्लेख होना चाहिए। वैसे उनका निधन बीसवीं शती के शुरू (दिसंबर १९०२) में हो गया था। लेकिन वे अंतिम सांस तक हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए समर्पित थे। अतः उनकी चर्चा अनुपयुक्त नहीं है। बाबू तोताराम के संबंध में आचार्य शुक्ल ने लिखा है। "हिंदी का हर प्रकार से हित साधन करने के लिए, जब भारतेंदु जी खड़े हुए थे, उस समय उनका साथ देने वालों में ये भी थे। उन्होंने **'भाषा संवर्द्धिनी'** नाम की एक सभा स्थापित की थी। ये **'हरिश्चंद्र चंद्रिका'** के लेखकों में से थे"[1] उन्होंने स्वयं भी 'भारतबंधु' नाम का पत्र निकाला था। उनका भारतबंधु प्रेस आज भी मदारदरवाजा अलीगढ़ में है। वे उस समय के सहज गद्य लिखने वालों में अग्रणी थे। उनका 'हरिश्चंद्र मैगजीन' में छपा 'अद्भुत अपूर्वस्वप्न' (लेख) बहुचर्चित रहा। 'कीर्तिकेतु' हिंदी के प्रारंभिक नाटकों में गिना जाता है। स्त्री सुबोधिनी और 'केटो वृत्तान्त' नाटक (अंग्रेजी से अनुवाद) उनकी अन्य कृतियां हैं।

गोकुलचंद्र शर्मा मूलतः कवि थे, लेकिन **'निबंधादर्श'** और **'अभिनव रामायण'** से सिद्ध होता है कि वे अच्छा गद्य भी लिखते थे। **'निबंधादर्श'** के कुछ

---

१. हिंदी साहित्य का इतिहास, तेहरवां संस्करण, पृ० ४५५।

निबंधों में ललित निबंध के तत्व देखे जा सकते हैं। **'अभिनय रामायण'** नाट्य कृति है। इसके लेखन के पीछे यह लेखकीय विश्वास सक्रिय है कि पाठकगण रामचरित से प्राप्त मूल्यों को जीवन का अंग बनाएंगे: "रामचरित से प्राप्त जीवन-सौंदर्य की समुज्ज्वलता में वे शक्ति का अर्जन करें, शील को आश्रय लें, मर्यादा पुरुषोत्तम के चरित्र में उन्हें मानवता की पूर्णता का परिचय मिले और वे मनुष्य बनें, मनुष्यता के उपासक बनें, यही उसकी हार्दिक कामना है"[२] पंडित गोकुलचंद्र शर्मा के प्रेरणादायी आशीर्वाद का ही फल है कि हिंदी में डा० दीनदयाल गुप्त और श्री लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, अंबाप्रसाद 'सुमन', गिरिधारी लाल शास्त्री आदि-सेवा के क्षेत्र में आये। पंडित जी द्विवेदी युग के विख्यात और मान्य हिंदी-साहित्य-सेवियों में थे। पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध ने अपने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में पं० गोकुलचंद्र शर्मा की साहित्य-सेवा का विस्तार से उल्लेख किया है। हिंदी में कुछ नाटक श्री बनारसीदास करुणाकर के भी प्रसिद्धि पा चुके हैं।

खैर के पं० बद्रीप्रसाद गौड़ वकील ने बिहारी सतसई पर एक अच्छी टीका लिखी थी, जो प्रकाशित नहीं हुई। लेकिन वह हिंदी टीका रत्नाकर जी के "बिहारी-रत्नाकर' से पहले लिखी गयी थी। खैर के पं० गिरीशचंद्र 'सखा' भी अच्छे लेखक थे।

हिंदी कहानी की नींव ईसाई मिशनरियों द्वारा रखी गयी। प्रसाद और प्रेमचंद ने उसे कथ्यगत समृद्धि और कलात्मक परिपक्वता प्रदान की। अलीगढ़ को यह गौरव प्राप्त है कि हिंदी कहानी के विकास और मँजाव में उसके दो कहानीकारों ने महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक योग दिया है। पेशे से चिकित्सक डा० धनीराम प्रेम' ने सन् १९२९-३० के आस-पास **'चाँद'** से (मासिक) में **'डोरा'** तथा कुछ अन्य अच्छी कहानियाँ लिखीं। वे हर तरह से 'प्रेमचंदस्कूल' के कहानीकार हैं। सत्येंद्र शरत् के शब्दों में "वे हिंदी कथा साहित्य के नींव के पत्थर थे और उनका योगदान सदैव स्मरणीय रहेगा।"[३] प्रेमचंदोत्तर हिंदी कहानी को एक नयी दिशा देने वाले जैनेंद्रकुमार की उपलब्धियाँ सर्व विदित हैं। उनके सुनीता त्याग पत्र, जयवर्द्धन आदि उपन्यासों से हिंदी उपन्यास में मनोविज्ञान का विधिवत् प्रवेश माना जाता है। बकौल प्रभाकर माचवे, "जैनेंद्र की प्रतिभा में गोर्की, और प्रेमचंद की जीवन और साहित्य को एक रस करने की क्षमता, शरत् का प्रसाद गुण, रविबाबू की कल्पना और सूझ, मोपासाँ के वर्णन की सजीवता और चैखव का सूक्ष्म सहृदय-मनोलोक का अध्ययन आदि एक साथ उपस्थित हैं।"

अलीगढ़ के वर्तमान युवा कहानीकारों में श्री सुरेंद्रकुमार और श्री राजेंद्र गढ़वालिया ध्यान आकर्षित करते हैं। श्री सुरेंद्रकुमार की **'अक्रन्दण'**, **'होरी टोटा'**,

२. गोकुलचंद्र शर्मा अभिनंदन ग्रंथ, पृ० ८५ से उद्धृत
३. सारिका, १६ जनवरी, ८० ई० पृ० ७

'लेंस के आर-पार', **'उसका फैसला'** और श्री राजेंद्र गढ़वालिया की **'तीन औरतें'**, **'नवें कालम का भूत'**, **'ट्रेनिंग'** आदि कहानियाँ समीक्षकों और पाठकों द्वारा सराही गयी हैं। श्री मोहनप्रदीप, श्री गिरिजाकिशोर अग्रवाल, क्षमाशर्मा ने भी कुछ कहानियाँ लिखी हैं।

श्री हरिशंकर शर्मा, श्री अक्षयकुमार जैन, श्री यशपाल जैन, आदि ने हिंदी गद्य की नयी विधाओं—रेखाचित्र, संस्मरण, यात्रा वृत्त, जीवनी आदि को बहुत ऊपर उठाया।

श्री हरिशंकर शर्मा बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। आप हिंदी के हास्य और व्यंग्यकारों में प्रसिद्ध हैं। आपकी दो कृतियाँ **'चिड़ियाघर'** और **'पिंजरापोल'** अधिक ख्याति प्राप्त हैं। श्री शर्मा का गद्य बहुत ही प्रांजल किंतु सहज था। डा० बच्चन सिंह ने उनके संस्मरण-रेखाचित्रों को पं० पद्मसिंह शर्मा से प्रभावित माना है।[४]

श्री अक्षयकुमार जैन 'नवभारत टाइम्स' के संपादकीय के जरिये जाने जाते रहे। **'जेल से जसलोक तक'** लिखकर भी उन्हें प्रतिष्ठा मिली। **'मेरी राजस्थान यात्रा'** और **'ब्रिटेन में चार सप्ताह'** उनके प्रसिद्ध यात्रावृत्त हैं। श्री यशपाल जैन के यात्रा-विवरण **'पड़ोसी देशों में'** संगृहीत हैं। यात्रावृत्त लेखकों में श्री यशपाल जैन विशेष उल्लेखनीय हैं। **'लोहे की दीवार के दोनों ओर'** **'राहबीती'** नाम के यात्रा-वृत्त प्रसिद्ध हैं। **राहबीती** में पूर्वी देशों का सशक्त चित्रण है।

मुख्यतः समीक्षक के रूप में ख्याति प्राप्त डा० नगेंद्र, डा० अंबाप्रसाद 'सुमन', डा० सरनामसिंह शर्मा 'अरुण' ने थोड़ा बहुत सर्जनात्मक गद्य-साहित्य भी लिखा है। डा० नगेंद्र कृत **'चेतना के बिंब'** और **'तंत्रालोक से यंत्रालोक तक'** में उनके रेखाचित्र और यात्रा-संस्मरण संगृहीत हैं। सुमन जी ने 'आदर्श विभूतियाँ' कृति में महापुरुषों के जीवन के प्रेरक प्रसंगों को रेखांकित किया है और 'अछूत और हम' विवेचन प्रधान सामाजिक कृति है। सरनाम सिंह शर्मा ने नाटक, निबंध, और संस्मरण विधाओं को अपनी प्रतिभा का संस्पर्श दिया है। **'तपस्विनी'**, **'दीननरेश'**, **'इंसान की राह'** उनके अच्छे नाटक हैं। उन्होंने निबंध अधिक नहीं लिखे, लेकिन एक समर्थ निबंधकार की संभावना उनमें निश्चय ही थी। आपके एक निबंध पर टिप्पणी करते हुए डा० लक्ष्मीकांत शर्मा ने लिखा है : **'फड़ी आँख'** जैसा व्यक्तित्व-संपन्न निबंध पढ़कर आत्मा फड़क उठी, ऐसा लगा, जैसे प्रतापनारायण मिश्र की आत्मा स्वर्ग में भी सिहर रही होगी। यह बड़ा सजीव निबंध है, इसका मर्मघाती व्यंग्य और विनोदपूर्ण शैली मुझे बड़ी प्रिय लगी।" **'पंखों के सेतु'** शिवशंकर शर्मा 'राकेश' के ललित निबंधों का एक छोटा-सा संग्रह है जिसमें मूलतः कुछ रेडियोवार्ताएँ और कुछ संस्मरणात्मक लेख ही हैं जिन्हें लेखक ने ललित निबंध कहा है।

---

४. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० ४११

साहित्यशास्त्र, साहित्येतिहास और भाषाशास्त्र जैसे शास्त्रीय विषयों के जितने प्रकांड पंडित और सुधी विद्वान् अकेले अलीगढ़ ने दिये हैं, शायद ही किसी जनपद ने दिये हों।

डा० नगेंद्र न केवल शुक्लोत्तर रस-चिंतन के प्रमुख स्तंभ हैं, अपितु खड़ी बोली की कविता के मर्म को बुझाने के लिहाज से उनकी व्यावहारिक समीक्षाओं का ऐतिहासिक महत्व भी है। प्रत्येक नये विषय पर अधिकार पूर्वक लिखना नगेंद्र की निजी विशेषता है। **'नयी समीक्षा', 'बिंब', 'शैली विज्ञान'** और **'मिथक'** पर लिखी कृतियाँ इस कथन की गवाही देती हैं। भारतीय काव्यशास्त्र और पाश्चात्य सौंदर्य शास्त्र के उचित तालमेल से बनी उनकी समीक्षा-दृष्टि में प्रायः संतुलन बना रहता है। **रस सिद्धांत', 'आस्था के चरण', 'काव्य बिंब'** आदि कृतियाँ आपके गौरव को प्रत्येक भाषा के साहित्य में ऊँचा उठा रही हैं। हिंदी की रस शास्त्रीय समीक्षा में डा० नगेंद्र जी का 'रस सिद्धांत' ग्रंथ शीर्षस्थ माना जाता है। वे हिंदी गद्य के प्रसिद्ध शैलीकार हैं।

डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय अलीगढ़ जिले के साहित्यकारों में विशेष उल्लेखनीय व्यक्ति हैं। आपने 'हिंदी साहित्य' (१८५० ई०–१९०० ई०) **'आधुनिक साहित्य की भूमिका,' 'द्वितीय महायुद्धोत्तर हिंदी साहित्य का इतिहास'**, आदि कृतियाँ लिखी हैं। आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य के विवेचन में डा० वार्ष्णेय का कार्य उल्लेखनीय है।

अलीगढ़ जनपद के साहित्यकारों में पत्र-साहित्य के क्षेत्र में कार्य करने वालों में डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का नाम प्रसिद्ध है। डा० वार्ष्णेय द्वारा संपादित सन् १९५९ में 'प्राचीन हिंदी पत्र-संग्रह' प्रकाशित हुआ था। इसी विधा में अलीगढ़ जनपद में दूसरा उल्लेखनीय नाम डा० सुमन का है, जिन्होंने मौलिक तथा नूतन शैली में एक विशाल पत्रात्मक ग्रंथ रचा है 'संस्कृति, साहित्य और भाषा'। अलीगढ़ जनपद में पत्र-साहित्य के क्षेत्र में डा० वार्ष्णेय अग्रणी माने जा सकते हैं। गाँव पड़ील के डा० जयदेव कुलश्रेष्ठ का पी-एच० डी० का शोध प्रबंध जायसी पर लिखा गया। अलीगढ़ जनपद के शोध पंडितों में जायसी पर सबसे पहला कार्य डा० कुलश्रेष्ठ का है। आप अलीगढ़ के राजकीय इंटर कालेज में बहुत दिनों तक अध्यापक रहे थे।

डा० छैल बिहारी लाल गुप्त (डा० राकेश गुप्त) ने मनोविज्ञान के प्रकाश में रस सिद्धांत का अध्ययन हिंदी जगत् को प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त अनेक ग्रंथों में आपने भारतीय काव्यशास्त्र के कई गंभीर और जटिल मुद्दों पर खुलकर विचार किया है। डा० राकेश गुप्त की प्रसिद्ध ग्रंथ-कृतियाँ हैं— **'साइकोलोजीकल स्टडी इन रस', 'स्टडी ऑफ नायक-नायिका भेद'** और 'साहित्यानुशीलन'। इसके अतिरिक्त उन्होंने सन् १९७७-७८-७९ ई० की उत्कृष्ट हिंदी कहानियों के संकलनों का भी संपादन किया है।

डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' में नगेंद्र के-से पांडित्य के साथ डा० वासुदेवशरण अग्रवाल की शब्द वेधिनी प्रतिभा का अद्‌भुत योग है। उनकी अब तक प्रकाशित सत्रह कृतियों में '**कृषक जीवन संबंधी ब्रजभाषा शब्दावली भाग १–२; 'रामचरित-मानस : वाग्वैभव, 'रामचरित मानस-भाषारहस्य', हिंदी और उसकी उपभाषाओं का स्वरूप' तथा 'मानस शब्दार्थ तत्व'** विशेष उल्लेखनीय हैं। 'रामचरितमानस: वाग्वैभव' को उत्तर प्रदेश सरकार-पुरस्कार (लखनऊ) और श्री रामकृष्ण हरजीमल डालमिया- पुरस्कार (दिल्ली) प्राप्त हुए हैं। उत्तर प्रदेश राज्य ने सुमन जी की अन्य तीन कृतियों को भी पुरस्कृत किया है—(१) **कृषकजीवन संबंधी ब्रजभाषा शब्दावली (२) 'हिंदी और उसकी उपभाषाओं का स्वरूप' (३) 'रामचरित मानस-भाषा-रहस्य।'** डा० सुमन की १७ कृतियों में ४ कृतियाँ तो इतनी विशाल हैं कि उन्हें पुस्तक नहीं, ग्रंथ ही कहा जाएगा।

डा० नगेंद्र ने डा० सुमन की सारस्वत-साधना को उत्तमांश रूप में घोषित करते हुए '**रामचरित मानस : वाग्वैभव**' की भूमिका में लिखा है। "मानस सौंदर्य के इस परीक्षण में डा० सुमन की पैठ गहरी है। प्रत्येक सिद्धांत का स्वरूप-स्थापन और उसका प्रतिपादन रामचरित मानस के उपर्युक्त उदाहरणों द्वारा ऐसी सरल, स्वच्छ और प्रसंन शैली में किया गया है कि पाठक को सहज ही विषय की स्पष्ट अवगति हो जाती है।" डा० सुमन का '**कृषक जीवन संबंधी ब्रजभाषा शब्दावली**' ग्रंथ ठोस शोध-कार्य का आदर्श प्रस्तुत करता है। ब्रज के कृषक जीवन में बैठकर उनकी शब्दावली के विस्तृत भंडार को एकत्र करना साधारण कार्य नहीं है, उसके साथ-साथ उन शब्दों की व्युत्पत्ति का कार्य उसे और भी महत्वपूर्ण बना देता है। परम साहित्य स्रष्टा एवं मूर्धन्य विद्वान् डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के निर्देशन में लिखा हुआ शोध-ग्रंथ 'कृषक जीवन संबंधी ब्रजभाषा शब्दावली' ऐसी रचना है, जिसने बीसियों शोधार्थियों के लिए आदर्श प्रस्तुत किया है। यह ऐसा जनपदीय ब्रजभाषा शब्द-भंडार है, जिसे डा० विद्‌यानिवास मिश्र ने भी अपनी '**हिंदी शब्द संपदा**' पुस्तक का आधार बनाया है। डा० सुमन के अनेक शोध-पत्र और ढेरों भाषिक एवं साहित्यिक समीक्षाएं उनकी प्रतिभा और अध्यवसाय का सबूत हैं।

इनके अतिरिक्त श्री दीनदयाल गुप्त और डा० गोवर्धननाथ शुक्ल आदि विद्वानों ने हिंदी साहित्य की विभिन प्रकृतियों और प्रमुख कवियों के संबंध में खोज-पूर्ण सामग्री प्रस्तुत की है। '**अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय**' में डा० दीनदयाल गुप्त ने पहली बार 'अष्टाछाप' के जीवन और साहित्य का विस्तृत विवेचन किया है। डा० गुप्त के कार्य को डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल ने '**कविवर परमानंददास और उनका साहित्य**' के द्वारा आगे बढ़ाया है। '**हिंदी कृष्ण भक्ति काव्य पर श्रीमद्‌भगवत का प्रभाव**' (डा० विश्वनाथ शुक्ल) '**हिंदी साहित्य में योग भावना**' (डा० शिवशंकर शर्मा राकेश); '**हिंदी कृष्ण भक्तिकाव्य की पृष्ठभूमि**' (डा० गिरिधारीलाल शास्त्री)

'चांदायन की भाषा' (डा० राजेंद्र गढ़वालिया), **'हिंदी साहित्य पर संस्कृत का प्रभाव'** (डा० सरनाम सिंह शर्मा) आदि शोध-प्रबंध हिंदी साहित्य के इतिहास में अनेक अज्ञात तथ्यों और नयी मान्यताओं का समावेश करते हैं। संस्कृत और हिंदी के प्रमुख आचार्यों के आधार पर **'अलंकारों के स्वरूप-विकास का शास्त्रीय अध्ययन'** (श्री ओमप्रकाश कुलश्रेष्ठ) भी एक उल्लेखनीय शोध-प्रबंध है। बीरपुरा के डा० भगवान सहाय पचौरी (जिलाविद्यालय निरीक्षक) ने व्रजभाषा काव्य का अच्छा विवेचन किया है।

अलीगढ़ में इस समय शोध और आलोचना साहित्य का प्रणयन करने वाले लेखकों की संख्या दो दर्जन से भी अधिक है। इनमें से श्री हरिचरण शर्मा (नयी कविता नये धरातल); 'नयी कविता : परिवेश और प्रकृति' डा० कमलसिंह (गोरखनाथ की भाषा का अध्ययन), डा० राजपाल शर्मा (हिंदी वीर काव्य में सामाजिक जीवन), डा० रघुवर दयाल वार्ष्णेय (हिंदी कविता नये पतिमान), डा० कुँवर पालसिंह (हिंदी उपन्यास : सामाजिक चेतना), डा० श्रीराम शर्मा (लोक साहित्य : सिद्धांत और समीक्षा), प्रभाकर शर्मा (नरेश मेहता काव्य : विमर्श और मूल्यांकन) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त श्री मोहन प्रदीप, श्री रामस्वरूप शर्मा, श्री अशोकशर्मा, श्री रमेशचंद्र शर्मा, श्री हरिमोहन शर्मा, श्री बिशन कुमार शर्मा, मूलचंद्र गौतम आदि की तर्क पूर्ण समीक्षाएँ अनेक साहित्यिक गुत्थियों को सुलझाने में सहायक सिद्ध होती हैं। अलीगढ़ से समय-समय पर प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं ने गद्य लेखन के लिए वातावरण और उत्साह बनाने में रचनात्मक भूमिका निभायी है। इन पत्रिकाओं में **'लय'** (सं० नीरज) **'विश्व साहित्य'** (सं० हरीश रायजादा), **'शिलापंख'** (सं० डा० गढ़वालिया), संक्रांति (सं० डा० अशोक शर्मा आदि) और रंजनी (सं० सुरेश कुमार) आदि हैं।

अलीगढ़ जनपद की महिला साहित्यिकारों में डा० (श्रीमती) किरण कुमारी गुप्ता की सेवाएँ उल्लेखनीय हैं। इनका जन्म खैर में हुआ था। यह लाला छोटे लाल की पुत्री है। आजकल आगरा में हैं।

जो गद्यकार उपर्युक्त विवेचन में स्थान नहीं पा सके हैं, उनमें पत्रकार योगेंद्रकुमार 'लल्ला' और कवि काका हाथरसी मुख्य हैं। श्री लल्ला ने जहाँ लेख लिखे हैं, वहीं श्रीवर काका जी ने प्रहसन लिखकर पाठकों का पर्याप्त मनोरंजन किया है। कुल मिलाकर हिंदी-गद्य को अलीगढ़ जनपद का योगदान साधारण नहीं है। विशेषतः शोध समीक्षा के क्षेत्र में यहाँ के लेखकों ने नये प्रतिमान स्थापित किये हैं।

—प्राध्यापक
हिंदी-विभाग
धर्म समाज डिग्री कालिज,
अलीगढ़ (उ० प्र०)

प्रसिद्ध लोकगीत

—डा० राजेंद्र रंजन

अलीगढ़ जनपद के प्रसिद्ध लोकगीतों में जिकड़ी भजन और लावनी बहुत अधिक महत्व रखते हैं। जनपद के फूलडोलों में आप जिकड़ी भजनों का रसास्वादन कर सकते हैं। फूलडोल अलीगढ़ जनपद का लोकपर्व है। गांवों में फूलडोल का अनोखा ही रूप सजता है। यद्यपि फूलों का डोल तो नहीं बनता फिर भी इन्हें फूल-डोल का मेला ही कहा जाता है। रुदायन गांव के एक लोकगीत-प्रिय पं० मिश्रीलाल जी ने बताया कि 'हमारे यहाँ तो बसंत की प्रफुल्लता ही फूल है और उसकी अभि-व्यक्ति ही डोल अर्थात् फूलों का दोला या झूला है। फूलडोल का यह मेला होली के बाद दौज से प्रारंभ हो जाता है, जिससे आस-पास के गांवों की सभी 'चौपइयों' का संमेलन होता हैं। वे अपने-अपने गांव के शास्त्रज्ञान तथा साहित्य और गायन के अभ्यास का परिचय देती हैं। अबूझ प्रश्नों का तांता लग जाता है—

"अजब अनोंखौ लखै बीर जाय त्रेद बखानें।
सुर किंनर बलवान सकल भय जाकौ मानें।
बीर बड़ौ बलवाव विकट भेस बंकावली
जाय जानत सकल जहान
सौ लै देउ नाम सभा में जो होय इरादौ ज्ञान कौ
भाखौ नर नाम बली कौ।"

"बताओ वह कौन-सा वीर है, जिसके अठारह पैर हैं, छत्तीस भुजा हैं, पेंतीस नेत्र हैं, पेंतालीस मुख हैं, सूँड़ है, तीनों लोकों और चौदहों भुवनों में उसका अदल बन रहा है ?" यदि आप नहीं बता सकते तो गायक आगे कहता है—

"जो तुम पै नहिं बतै कुमर जी ढप ढोलक धरि जाओजी।
सो पूछत आज सभा में तुम सों बासी कौन थली कौ
भाखौ नर नाम बली कौ।"

दूसरी 'चौपई' ने एक और ही प्रश्न उठा दिया—

"का दिन भये ब्रह्म बताना ?"

फूलडोल में इन लोकगीतों में लोक और शास्त्र दोनों का संगम मिलता है। कहीं योग-दर्शन आता हुआ दीखेगा तो कहीं वेदांत और सांख्य एक पंक्ति में बैठे

हुए मिलेंगे। पुराण, भागवत, महाभारत और वैराग्य के गूढ़ज्ञान से लेकर पिंगल, व्याकरण, राष्ट्रीय आंदोलन और सामाजिक जीवन का दैनिक अनुभव इन भजनों के विषय हैं।

'घूत पोंगरा' के भजन गाकर कोई आपको हँसा देगा तो कोई पुत्र वियोग आदि की गाथाएँ सुनाकर आपकी हिलकी बँधा देगा। भगवान राम के राज्य में पिता के सामने पुत्र की मृत्यु नहीं होती थी किंतु जब द्विप ब्राह्मण का पुत्र भगवान को प्यारा हो गया तो उसकी माँ की कैसी स्थिति हुई—

गाह्यौ—छाती ते चिपटाय कुमर की सूरति निरखै
नैनन नीर चुचाय सीस धुन-धुन के बिलखै
ये गैया तुल्य रँभाय छाती फाटी जात है
सुत मोऊ ऐ संग लगाय सो नाहक
पुत्रवती मोइ करके
आज निपूती कर चल्यौ।
टेक—बिलखै धनि कहत न आवै।

फूलडोल में एक 'चौपई' दूसरी 'चौपई' के भजनों को काटती है, भजनों में अंकट दोष निकालती है। समस्याएँ रखी जाती हैं, उनकी पूर्ति की जाती है और प्रमाण माँगा जाता है। प्रमाण प्रस्तुत करने के लिए ये चौपइयाँ गीता, भागवत, महाभारत की पुस्तकों को छिपा-छिपा कर ले जाती हैं। दस-दस बीस-बीस हजार की संख्या में ग्राम जन इस समारोह में उपस्थित होते हैं और उत्सुकता से प्रतीक्षा करते हैं कि कौन से गाँव की चौपई साफा या कलसे का इनाम जीत कर ले जाती हैं।

पहले तो फूलडोल का यह मेला सहजपुरा, लुटसान, जसराना, सासनी और अन्य अनेक गांवों में होता था पर हरियानगला की चौपई के गायक बोहरे शादीलाल के शब्दों में—"अब गाँवों में भी कलयुग घुस आया। पहले सस्ता जमाना था, चोरी-चकारी का डर नहीं था, लोग थोड़े में गुजारा कर लेते थे। कभी-कभी तो बेर खाकर ही सारा दिन बिता देने पर चार कोश चलकर पाली गांव में फूलडोल का मेला जरुर देखते परंतु अब तो दिन में भी खूँटे से पौहे खुल जाते हैं। अब वह बात कहां रही?"

रसियाई के इन भजवों की परंपरा में सोंनई के हरना-हरफूला का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। इस परंपरा में फरौली के पं० राम प्रसाद, बिहारीलाल व्याहुल्ला, भोजराजद्विज, रुदायन के बोहरे रतीराम, गंगादास, खुस्याली सिंह, हेमराज, बदरी प्रसाद नगलागढ़ू के सीताराम, समामई के शिवलाल और खजानी ठाकुर के नाम भी लिये जा सकते हैं।

फूलडोल में भजनों से पहले साखी गायी जाती है, जैसे—

"हमारें दुरगे सी आई महमान कहाँ तौ दैउँ तोय बैठना ।
मेरे कंठ बिराजौ मैया आय हिरदे में दैउँ तोय बैठना ।"

फूलडोल में 'दुबानी' भी गायी जाती है और 'पतोला की होरी' का भी गायन होता है । दुबानी का उदाहरण है—

"बरनी कर सोलह सिंगार रे जाइ बरना ऐं राजी करलै
सालू ओढ़ सर्म की चोली दया कौ हार पहर अलबेली
बहुत दिना पीहर में खेली अब तू पिया की ओर निहार रे
जाइ बरना ऐ राजी कर लै ।"

दूसरा प्रसिद्ध लोकगीत है लावनी । आज जो स्थान कवि संमेलन, नाट्यमंच और सिनेमा ने ले लिया है, एक समय वह स्थान लावनी का था । लोक में लावनी के दंगल होते थे, जिनमें गांव और शहर के, हिंदी और उर्दू के, हिंदू और मुसलमान सभी समान भाव से रुचि लेते थे । लावनी पर अन्य लोकगीतों जिकड़ी, ढोला, रसिया का भी प्रभाव रहा और नगर की शेरोशायरी का भी । पद्माकर और बिहारी जैसे रीति कवियों से भी लावनी ने विषय-वस्तु ग्रहण की और तुलसी तथा कबीर जैसे भक्तों और निर्गुणियों को भी लावनी ने अपना आदर्श माना । अलीगढ़ जनपद में लावनी के समानांतर शहरों और कस्बों में ख्याल की गायकी भी चलती रही है ।

लावनी के उद्भव की कहानी साह अली और तुखन गिरि नाम के नाथ संप्रदायी योगियों से जोड़कर कही-सुनी जाती है । ये दोनों लावनी गा-गाकर धर्म का प्रचार किया करते थे । इनकी ख्याति सुनकर चंदेरी राजा ने इन्हें दरबाद में बुलाया और इनके गायन पर प्रसंन होकर उसने तुखन गिरि को अपने मुकुट का तुर्रा और साह अली को कलगी उपहार में दी । आगे चलकर इनसे 'तुर्रा' और 'कलगी' नाम से दो संप्रदायों का विकास हुआ ।

यद्यपि लावनी के पुराने आचार्य पं० रूपकिशोर के समान अनेक लावनी-गायकों ने शुद्ध ब्रजभाषा में भी रचनाएँ की हैं, फिर भी सामान्य रूप से खड़ी बोली, ब्रजभाषा और उर्दू का मिला-जुला रूप ही लावनी-साहित्य में परिलक्षित होता है । लावनी का भाषा-आदर्श मानों भाषा-विवादों पर हँसता है । लावनी आम जनता की गायकी है और आमजनता की बोलचाल की भाषा ही उसकी भाषा है । वह आचार्यों के परिनिष्ठित व्याकरण के बंधन में कैद नहीं है । वह तो जल-प्रवाह की भाँति मुक्त और वेगवती है । कहीं-कहीं तो लावनी की भाषा का यह मिला-जुला रूप कितना आकर्षक बन जाता है, देखिये—

तकूँ हूँ मारग में बन बियोगन,
खबर हमारे न कंत की है ।

तड़प रहे हैं ये प्रान पी बिन,
अनीति ता पै बसंत की है।
तजी है प्रीतम नें प्रीत मेरी,
सखी ये लीला लिखंत की है।
लगन बुझाऊँ मैं मन की कैसे,
लगी ये अगिनी इकंत की है।

यद्यपि लावनी-गायकी के मंच में समाज के हर वर्ग ने रुचि ली है फिर भी लावनी-गायकी की परंपरा का प्रमुख उत्तराधिकारी नगर का श्रमिक समाज रहा है। यह वर्ग जहाँ एक ओर गाँव के लोक-मानस से जुड़ा था तो दूसरी ओर नगर के अभिजात वर्ग में भी इसका प्रवेश था। इस वर्ग ने एक ओर कलावंतों के बड़े ख्याल, छोटे ख्याल, ठुमरी, दादरा और ध्रुपद सुने थे तो दूसरी ओर आल्हा-ढोला, रसिया और जिकड़ी के स्वरों का प्रसाद भी इसने पाया था। यही कारण है कि संगीतशास्त्र विधिवत् शिक्षा प्राप्त न करते हुए भी उसके पास एक गायन-शैली थी--वह भी अपनी भाषा के साथ मिली-जुली। उसके पास न वीणा थी न तानपुरा, न तबला था न मृदंग, फिर भी सुकुमार स्वर मनोहर कंठ उसे ईश्वर के वरदान के रूप में मिला था। उसका गायन न तीन ताल, एक ताल या झपताल से बँधा था, न झमार और चौताल से। किंतु दाँये हाथ की थपकी और बाँये हाथ की उंगलियों में थिरकती हुई अँगूठियों के बीच गूँजते हुए चंग ने लावनी में ताल की जो प्रतिष्ठा की, वह कम आकर्षक नहीं है।

लावनी अपने समय में इतनी लोकप्रिय थी कि हिंदी के युग-प्रवर्तक भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र ने भी लावनी लिखीं और उन्हीं की मंडली के पं० प्रतापनारायण मिश्र लावनी-अखाड़े में गायन करते थे। हिंदी के साथ ही भारतेंदु ने संस्कृत में भी लावनी लिखी, जो हरिश्चंद्र मैगजीन में प्रकाशित हुई—

कुंजं कुंजं सखि सत्वरं
चल चल दयितः प्रतीक्षते त्वां तनोति बहु आदरं
सर्वा अपि संगनताः
नो द्रष्ट्वा त्वां तासु प्रिय सखि हरिणाऽहं प्रेषिता।

यद्यपि लावनी का उद्भव नाथ जोगी निर्गुणियों के अखाड़ों में हुआ। परंतु अपनी विकास-परंपरा में जब यह गायकी जन-जीवन से जुड़ी तो देश की राजनीतिक और सामाजिक प्रगति से इसका सीधा संपर्क हो गया। कोई भी राजनीतिक या सामाजिक आंदोलन लावनी की नजर से बच नहीं पाया। इसका कारण है—लावनी की निरंतर प्रगतिशीलता। वह जिस समाज की गायकी है, राष्ट्र के अंतर्गत चलने वाले प्रत्येक संघर्ष में उस समाज का मुख्य योगदान रहता है, इसलिए सामयिक समस्याओं से वह गायकी भी अछूती नहीं रह सकती। राष्ट्रपिता के निधन पर लावनी-गायक ने कितना शोक और आक्रोश व्यक्त किया था—

शेर— माहात्मा को अपने निसाना बना के।
किया अंग छलनी तमंचा चला के।।
रहे हाथ जोड़े खड़े वो सभा में।
हरे राम हरे राम की रट लगा के।।
खबर किसी को हुई न इसकी जो बार थे इस बेखबर के।
हिला न जालिम का किसलिए दिल हुए न टुकड़े रिवालवर के।।
न टूटे हाथ वो सितमगर के चलायी थीं गोलियाँ जी भर के।

लावनी में निर्द्वंद्व मन की सहज अभिव्यक्ति होती है। कृष्ण पिछली रात राधा के द्वार पर पहुंचे और किवाड़ खटखटाने लगे। श्रीकृष्ण और राधा का संवाद होने लगा—

"हे प्राव प्रिया उठ खोलौ कवक किवारे
तुम को हौ पिछली रात पुकारन हारे
हे प्यारी हम तो हैं घनस्याम पियारे
तौ बरसौ बन-बागन में गरज सहारे
हम हैं बनवारी वन में करौ गुजारे
तुम को हौ पिछली रात पुकारन हारे
हम रागी हैं अनुरागी पुरुष बिचारे
तौ राग अलापौ द्वार बजा इक तारे।"

लावनी में मुक्तक के साथ प्रबंध काव्य को भी स्थान मिला, जैसे—ध्रुव चरित्र, प्रहलाद चरित्र, सुदामा चरित्र, शीरी फरहाद, लैला-मजनू आदि। हरनंद जी ने लावनी में भरतपुर की लड़ाई का अच्छा वर्णन किया है।

आज के इस घोर मशीनी युग में सिनेमा के बढ़ते हुए प्रभाव ने लोकगीतों को भारी धक्का दिया है किंतु लोकगीतों की जड़ें इतनी गहरी हैं कि ये प्रभाव तो ग्रहण करते जाएंगे किंतु अपनी परंपराएं नहीं छोड़ सकते। लोकगीतों के प्रेमीजन आज भी अलीगढ़ जनपद के जिकड़ी भजनों तथा लावनी-गायकी का आनंद ले सकते हैं।

—हिंदी-प्रवक्ता
के० एल० जैन इंटर कालेज,
सासनी (अलीगढ़)

अलीगढ़ के चित्रकारों के बीच

—प्रो० शुकदेव श्रोत्रिय

पश्चिमी उत्तर प्रदेश के नगरों में कला-चेतना का जो अभाव देखा जाता है, अलीगढ़ उसका अपवाद है। चित्रकारों से प्रत्यक्ष भेंट तथा चित्रों के आकर्षण में मैं बंधा पहुँचता हूँ अलीगढ़। श्री वार्ष्णेय कालेज चित्रकला विभागाध्यक्ष डा० गोपाल मधुकर चतुर्वेदी के निवास पर चिक पर हाथ जाते ही उनका स्वागत-स्वर सुनता हूँ 'आओ भाई' और उनके साथ निकल पड़ता हूँ अलीगढ़ के चित्रकारों से भेंट-वार्ता के लिए।

मैं और मधुकर जी पहुँचते हैं डा० वर्मा के निवास पर। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के इतिहास-विभाग-प्राध्यापक, अकादमी आफ फाइन आर्ट कलकत्ता तथा अमृतसर से पुरस्कृत डा० सोम प्रकाश वर्मा इतिहासविद हैं। मुगल इतिहास एवं कला में आपकी गहरी पैठ है। अकबर कालीन कला एवं भौतिक संस्कृति पर उनका एक ग्रंथ प्रकाशित हुआ है तथा मुगल काल के चित्रकारों के विस्तृत परिचय पर उनका एक बृहद् ग्रंथ प्रकाशित होने जा रहा है। परिचय और बातचीत से हटकर मेरी निगाह घूमती है कक्ष की दीवारों पर लगे अनेक चित्रों पर। डा० वर्मा के चित्रों में उनकी कला यात्रा की प्रेरणा-स्रोत प्रकृति के अनेक मूर्त एवं प्रतीक रूपायित किये गये हैं। प्रयोगवादी लैंडस्केप से कोलोग्राफ (कोलाज तथा ग्राफिक्स को मिलाकर दिया गया नाम) तक उनके चित्रों का केंद्र बिंदु लैंडस्केप है। प्रकृति के रूपों की घुमावदार संरचना वाले उनके प्रारंभिक दृष्यांकनों में शिथिलता एवं बिखराव है। दूसरा क्रम उन दृश्यों का है जिसमें प्रकृति का रूपांकन कपड़े की घुमावदार पर्तों में रहस्यात्मक प्रतीक-रूपों में किया गया है। दोनों शैलियों में प्राकृतिक रूपों की संयोजना मौलिक है किंतु प्रकृति के उपादानों के सादृश्य लगाने का मोह वर्ण-योजना में गतिरोध पैदा करता दिखायी देता है। उनके कुछ चित्र सूर्य के वर्णपट के विविध रंगों के तानों की बुनावट में चित्रित हुए हैं।

उनकी नवीनतम रचनाएँ कोलोग्राफ हैं। यहाँ डा० वर्मा के रूप अमूर्तता की ओर अधिक बढ़ गये हैं। इन चित्रों में उनका झुकाव नंदतिक मूल्यों की ओर अधिक बढ़ गया है। रूपों के त्रिआयामी प्रभावों में रहस्य, भ्रम, सामंजस्य गुणों की सृष्टि हुई है। ये काले सफेद तथा बहुवर्णीय भी हैं। निश्चित ही उनके ये चित्र अन्य रचनाओं से कहीं ऊंचे हैं।

डा० वर्मा के साथ बात चलती है समर्थ चित्रकारों द्वारा धन एवं यश के लिए अपनाये जाने वाले हथकंडों पर, जिसके उत्प्रेरक हैं समीक्षक। सभी का मत था कि कला-समीक्षकों से अपने चित्रों की प्रशंसा लिखवाने के लिए कोई भी मूल्य चुकाना स्तुत्य नहीं है फिर भी डा० वर्मा का मत था कि उनसे संबंध बनाने में व्यावहारिकता रहनी चाहिए, जबकि डा० मधुकर जी का मत था कि हमें अपनी रचनाओं को अपनी शक्ति के भरोसे जूझने देना चाहिए। अलीगढ़ के चित्रकारों पर बात करते डा० वर्मा स्व० सज्जाद हुसैन की याद करते हैं जिनके रचित पोर्ट्रेट मुस्लिम विश्वविद्यालय, नेत्र चिकित्सालय, तिब्बिया वूमन कालेज आदि में लगे हुए हैं। श्री सज्जाद हुसैन पाकिस्तान चले गये थे जहाँ उनकी मृत्यु हो गयी थी।

बातचीत को रोककर हम तीनों पहुँचते हैं श्री अजमतशाह के निवास पर। रामपुर (उ० प्र०) में जन्मे श्री शाह ने ललित-कला महाविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की तथा १९५४ ई० से अनेक सामूहिक एव एकल प्रदर्शनी आयोजित कर चुके हैं। अनेक बार पुरस्कृत एवं प्रशंसित श्री शाह वूमैन कालेज चित्रकला-विभाग में रीडर के पद पर कार्य कर रहे हैं।

बरामदे में दस्तक देते हुए निगाह घूमती है सामने फैले किचिन गार्डेन में और श्री शाह खुदाई छोड़कर हाथ से मिट्टी पोंछते खिली मुस्कान से स्वागत करते हैं। ड्राइंग रूम में परिचय होता है अजमत साहब तथा उनके भाई श्री ताहिर साहब से। अजमत साहब वरिष्ठ कलाकार हैं और सीधे-सादे ढंग से कला को समर्पित हैं। मेरा एक प्रश्न बातचीत में गरमी लाता है "शाह साहब आप अपनी एक लेटैस्ट पेंटिंग दिखाने की कृपा करें।" अजमत साहब मितभाषी हैं किंतु उनकी आँखें और मुस्कान ही भाषा बन जाती हैं किंतु श्री ताहिर ने जो स्वयं एक अच्छे मूर्तिकार भी हैं, मेरी बात को बीच में लपक कर मुझ पर एक सवाल ठोक दिया 'लेटैस्ट से आपका क्या मतलब है ? मैं बहस से अधिक चित्र देखने को उत्सुक था अतः यह कहकर टाल गया कि लेटैस्ट मैंने इसलिए कहा था कि ताजा चित्र निकाल कर दिखाने में सुविधा रहेगी। श्री ताहिर बहस में अधिक उलझाने के प्रयास में थे। उनकी हर बात स्वीकार करते हुए चित्र दिखाने को मेरे निवेदन पर श्री शाह के कुछ चित्र मेरे सामने आते हैं।

सामने मेरे है चित्र, फूले-पीले अमलतास के वृक्ष के नीचे नारी आकृतियाँ अंकित हैं। इस तैल-चित्र में पीले रंग की तानें, हल्की बैंगनी छायाओं के विरोध में अत्यंत ताजी एवं चमकदार हैं। एक-एक ब्रुश-आघात स्पष्ट रँगे कांच के टुकड़ों जैसा। सामने आता है दूसरा चित्र पर्वतीय नारियाँ। गहरे हरे वैल्वेट पेपर पर बना हुआ। पेस्टल रंगों का वैल्वेट पेपर पर अत्यंत सफलता से अजमत साहब ने किया है। इसी बीच एक मुग्ध बाला का पोर्ट्रेट सामने आता है, भूरे वैल्वेट पेपर पर यौवन की लालिमा से युक्त, मदालस आँखों और रक्ताभ ओठों के अधखुलेपन से प्राणवान।

वास्तव में अजमत साहब रंगों के जादूगर हैं। सजीव पोर्ट्रेट में उनको कमाल हासिल है। किंतु संयोजन चटकीले होकर भी पुनरावृत्ति मात्र लगते हैं। उनमें सजावटी प्रभाव अधिक है जो मार्ग उन्होंने पकड़ा था अब भी वह उसी पर घूम रहे हैं आज भी श्री शाह वही दे रहे हैं जो बरसों पहले दे चुके थे।

नारी-सौंदर्य श्री शाह के चित्रों की विषय वस्तु का केंद्र रहा है। उनकी नारी आकृतियों के अनेक संयोजनों में कुल्लू तथा रोहतांग दर्रे के चेहरों का प्रभाव है।

चाय आ चुकी है और श्री ताहिर के नाटकीय अंदाज में सुनाये गये लतीफों से ठहाके लगाते हुए हम विदा होते हैं। शाम हो चुकी है डा० वर्मा के घर एक और रचनाकार आ मिलते हैं श्री मंजूर जो, प्रयोगवादी हैं विशेषकर मूर्तिकार हैं। डा० वर्मा दिखाते हैं श्री शमसुल हसन निर्मित दो चित्र, जो मुगल मिनियेचर्स को तैल-पद्धति से कैनवास पर बड़ा करके बनाये गये हैं, 'फूल' तथा 'जेब्रा' जिसके मूल चित्रकार मो० नादिर तथा मंसूर थे।

बात चलती है 'उत्कर्ष फनकार सोसायटी' के विषय में। अलीगढ़ जनपद के चित्रकारों ने अपने इस संयुक्त मंच का गठन १९६८ ई० में किया था और इस सोसायटी के माध्यम से अनेक ग्रुप-प्रदर्शनी आयोजित कीं तथा 'रसज्ञा' नामक कला-पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया। सोसायटी के नाम को लेकर बात चलती है। मेरा मत था कि यह नाम विचित्रता का बोध कराता है। डा० वर्मा भी सहमत थे कि इसका पुनः नामकरण किया जाय।

रात को मधुकर जी के निवास पर चर्चा का विषय आ जाता है 'समीक्षा-वाद' जिसके मधुकर जी विशेष स्तंभ हैं। समीक्षावाद का जन्म दो वर्ष पहले हुआ था इसकी पहली प्रदर्शनी १९७९ ई० में आइफैक्स में हुई तथा दूसरी नवंबर १९८० ई० में जहाँगीर आर्ट गैलरी बंबई में हुई। समीक्षावाद के प्रकाशित साहित्य तथा चित्रों से कुछ मुख्य मुद्दे सामने आते हैं, पाश्चात्य शैलियों का बहिष्कार, अमूर्त तथा प्रतीकात्मक चित्रण को नकारते हुए आधुनिक कला को उद्देश्यहीन एवं व्यक्तिगत भावना तथा अपने चारों ओर के वातावरण अर्थात् समाज एवं राजनीति की समीक्षा अपने चित्रों में प्रस्तुत करना। श्री रामचंद्र शुक्ल (अध्यक्ष फैकल्टी आफ विजूअल आर्ट बनारस हिंदू विश्वविद्यालय) ने समीक्षा का अर्थ समालोचना या टिप्पणी दिया है और उस अर्थ में जीवन की समीक्षा चित्रों में है, ऐसा स्वतः मान लिया गया है। किंतु अकेला 'समीक्षा' शब्द वह मनचाहा अर्थ नहीं रखता जो इन कलाकारों का मंतव्य है। ऐसे सटीक व्यंग्य-भरे चित्र तो 'व्यंग्यवाद' नाम से जाने जा सकते हैं।

पाश्चात्य शैली का पूर्ण बहिष्कार करते हुए प्रायः सभी चित्र तैल माध्यम में रचित हैं जो विरोधाभास है। विषय वस्तु को अधिक प्रधानता देते हुए समीक्षवाद के चित्रकार कलात्मक मूल्यों की श्रेष्ठता के लिए चित्र-रचना को महज विलासिता मानते हैं। समाज-सुधार के इस आंदोलन के चित्रों में व्यंग्य के लिए अनेक प्रतीक

अपनाए गए हैं जिनके लिए दर्शक स्पष्टीकरण चाहता है और इस प्रकार यह चित्र आधुनिक प्रतीक-चित्रों से अधिक दूर नहीं जाते। नकारते हुए भी अनेक चित्र अति यथार्थवादी प्रभाव छोड़ते हैं यथा केसरी कुमार (मिर्जापुर) का 'चक्रव्यूह' रामचंद्र शुक्ल (वाराणसी) का 'रिंग मास्टर' बालादत्त पांडेय (इलाहाबाद) का 'ग्रहण ग्रस्त शिक्षा' आदि। रात को देर तक बंबई प्रदर्शनी में दर्शकों की लिखी प्रतिक्रियाओं को देखता हूँ। समाज की कुरीतियों पर कुठाराघात करने वाले चित्रों को देखकर जनमानस का हर्षित होना स्वाभाविक है।

पाँच जनवरी के सवेरे पहुँचता हूँ हरिनगर डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' के निवास पर। वह जा चुके हैं विश्वविद्यालय। अतः धर्मसमाज कालेज के चित्रकला-विभाग में पहुँचता हूँ, जहाँ मिलते हैं डा० गिरिराज किशोर अग्रवाल (विभागाध्यक्ष) तथा प्राध्यापक श्री जगदीश बहादुर जौहरी। विभाग द्वारा आयोजित अनेक प्रदर्शनी तथा वार्ताओं का विवरण देते हुए डा० अग्रवाल सुनवाते हैं वह टेप-भाषण, जो श्री रमेश चंद्र शर्मा (निदेशक मथुरा संग्रहालय) द्वारा विभाग में सोंख के उत्खनन से प्राप्त सामग्री की प्रदर्शनी के आयोजन पर दिया गया था। डा० अग्रवाल तथा श्री जौहरी 'उत्कर्ष फनकार सोसायटी' के प्रमुख स्तंभ हैं। विभाग में डा० अग्रवाल का कोई चित्र देखने को न मिल सका। कला शिक्षा क्षेत्र में उन्होंने अनेक इतिहास तथा समीक्षा-ग्रंथों की रचना की है। डा० अग्रवाल से बिदा होकर पहुँचता हूँ श्री जौहरी के साथ उनके निवास पर।

श्री जौहरी 'वाश' के सिद्ध-हस्त कलाकार हैं। श्री जगदीश बहादुर जौहरी अपने चित्रों में विभिन रंगतों की चमक को रत्नों की भाँति बनाये रखने में अपना जौहरी नाम सार्थक करते हैं। मैंने विगत २५ वर्ष पहले बने उनके कई चित्र देखे थे। आज भी कामायनी के भाव अंश 'मनु और श्रद्धा' शीर्षक वाला चित्र मेरी आँखों में साकार हो जाता है। सामने है खैयाम की रुबाई पर आधारित उनका चित्र, जिसमें रक्ताभ बैंगनी वर्ण की आभा छा रही है। दो प्रयोगवादी चित्र सामने आते हैं 'आत्म-दर्शन' तथा 'जीव और ब्रह्म' दोनों में उनकी सर्जन-क्षमता के नये आयाम दिखाई देते हैं। श्री जौहरी से बिदा लेता हुआ पुनः हरि नगर डा० सुमन के निवास पर पहुँचता हूँ।

अत्यंत आत्मीय रस-पगे डा० सुमन के निवास पर अधिक देर न रुक सका इसका मुझे खेद रहा। कुछ देर डा० सुमन से वार्तालाप करके डा० सुमन से साथ बाजार से कुछ आवश्यक सामग्री एकत्र करता हुआ पहुँचता हूँ मधुकर जी के निवास पर। सुमन जी बिदा लेते हैं और मैं चलता हूँ मधुकर जी के साथ उनके चित्रकला-विभाग की ओर।

डा० मधुकर जी ने फाइन आर्ट कालेज लखनऊ से डिप्लोमा प्राप्त किया है तथा आगरा विश्वविद्यालय से पी० एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। उन्होंने देहली, बंबई, कलकत्ता आदि अनेक महानगरों में अपने चित्रों की प्रदर्शनी की तथा

आल इंडिया प्रदर्शनी में पुरस्कृत हुए हैं। 'रसज्ञा' पत्रिका का संपादन श्री मधुकर द्वारा किया जा रहा है। उन्होंने अपने विभाग को अपनी सेवा एवं योग्यता से संपन्न किया है। यहाँ उनके समीक्षावादी तथा बंगला देश सीरीज के चित्र देखने को मिलते हैं। समीक्षावादी चित्रों में व्यंग्य तो अवश्य है किंतु एक चित्र के रूप में वह प्रभावित नहीं करते। यहाँ चाक्षुष सौंदर्य नहीं अपितु समाज राजनीति पर ऐसे व्यंग्य हैं जिनका प्रभाव कुछ क्षणों के बाद अवसरवादिता के अनंत प्रवाह में विलीन हो जाता है। बंगला देश के चित्रों में अत्यंत सशक्त रंग-योजना एवं चित्र-संयोजन का उत्कृष्ट रूप देखने को मिलता है। विशेषकर पीले तथा कोबाल्ट ब्ल्यू की तानें अत्यंत प्रभावित करती हैं।

यहीं चित्रकार दीर्घा में श्री खलीक अश्फाक श्री विमलेन्दु राय चौधरी, श्री मगन [illegible] (आगरा), श्रीमती भाटी (मुरादाबाद) के चित्र देखने में आते हैं। श्री खलीक अश्फाक लखनऊ आर्ट कालेज से डिप्लोमा प्राप्त हैं तथा दृश्यांकन, पोर्ट्रेट विशेषकर पुष्प चित्रण में विशेषज्ञ हैं।

शाम को पुनः डा० वर्मा को साथ लेकर निकलता हूँ। यह निवास है श्री बिमलेन्दुराय चौधरी का। श्री चौधरी ने कलकत्ता से ललित कला डिप्लोमा किया तथा इटालियन स्कालरशिप पर विदेश यात्रा की। आइफैक्स, ललित कला अकादमी देहली, कलकत्ता तथा अन्य नगरों में आपकी प्रदर्शनी हुई हैं। श्री चौधरी एक ओर नीले रंग में प्रेमी युगलों को साकार करते हैं दूसरी ओर नीले सलेटी रंगों में निराशा-क्षोभ की भावनाओं को उजागर करते हैं। उनके संयोजन प्रतीकात्मक हैं, जो रंग और रूप के माध्यम से बहुत कुछ कहने में समर्थ हैं। उनके एक संयोजन में नारी-आकृति दूर क्षितिज तक एक दृश्य की भाँति फैली है उसके हाथ की पकड़ में क्षितिज है तथा दोनों पाँव अग्रभूमि तक आ गये हैं। चित्र में एकांत बियाबान और संनाटा है। नीला घूसर, उनका प्रिय रंग है। जल रंग तथा इंक में बने बंगला देश विषय पर उनके चित्र अत्यंत मार्मिक हैं।

उन्हें धन्यवाद देकर डा० वर्मा के निवास पर लौटता हूँ। डा० वर्मा परिचय देते हैं कुछ चित्रकारों का जिनसे भेंट संभव न हो सकी। इनमें श्री समीम, शमसुल हसन, असगर अब्बास अल्वी, कु० मलिका अली की चर्चा हुई।

रात होने लगी है डा० वर्मा से स्नेहभरी बिदा लेता हूँ। डा० मधुकर जी के आतिथ्य एवं सौहार्द में सबसे अधिक उनके बच्चों की आदर संमान-भावना से अविभूत मैं लौटता हूँ मुजफ्फरनगर। मेरी स्मृतियों की धरोहर हैं अनेक कलाकार मित्रों की मुस्कानें, उनकी आँखों की हृदयस्पर्शी आत्मीयता और चित्रों के इंद्रधनुषी रंगों से सजा अलीगढ़।

—अध्यक्ष, चित्रकला-विभाग
सनातनधर्म कालेज
मुजफ्फरनगर (उ० प्र०)
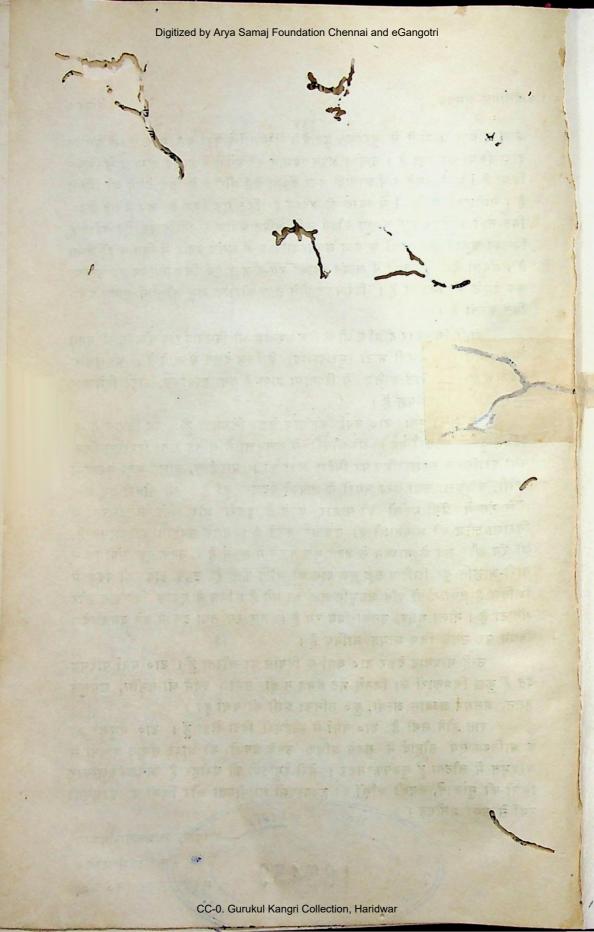
मंत्री—
श्री आनंदपालसिंह 'एकलव्य'
इनायतपुर बझेड़ा, डा० अहमदपुर
जिला—अलीगढ़ (उ० प्र०)

मंत्री—
कु० मधु शर्मा, रिसर्च स्कालर
८/७, हरिनगर, अलीगढ़
(उ० प्र०)

कोषाध्यक्ष—
डा० (श्रीमती) शारदा शर्मा
ए—८७ विवेक बिहार
दिल्ली रोड़, सहारनपुर
(उ० प्र०)

आय-व्यय-निरीक्षक—
श्री वेदप्रकाश
१६५४, लक्ष्मीबाई नगर,
नयी दिल्ली—११००२३

डा० अंबाप्रसाद 'सुमन'
(अपने परिवार एवं शिष्यों के साथ)